"स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में नैतिक मूल्य"

MORAL VALUES IN THE POST INDEPENDENT HINDI DRAMAS

THESIS
Submitted to the
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
ए. जे. एब्रहाम
A. J. ABRAHAM

Dr. N. RAMAN NAIR
PROFESSOR AND HEAD OF THE DEPARTMENT

Supervising Teacher :
Dr. P. A. SHEMIM ALIYAR
READER. DEPARTMENT OF HINDI

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

1991

C E R T I F I C A T E

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by A.J. ABRAHAM under my supervision for Ph.D.(Doctor of Philosophy) and no part of this has hitherto been submitted for a Degree in any University.

Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
KOCHI, Pin 682 022

Dr.P.A.SHAMIM ALIYAR
Reader

Date: 03.04.1991

विषय - सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय - एक 12 - 82

नैतिकमूल्य - पहचान और परख

मूल्य - नैतिक मूल्य - नीति - नीति-
सिद्धान्त - आनन्दवाद - पूर्णतावाद -
कर्तव्य सिद्धान्त - भारत में नीति चिन्तन
पुरुषार्थ - धर्म - अर्थ - काम - मोक्ष -
मोक्ष सम्बन्धी विविध विचार - मूल्य
एवं नैतिक मूल्य में अन्तर - नश्वर जीवन
से अनश्वरता की ओर संकेत - नैतिक
मूल्यों की महत्ता - मूल्य सम्बन्धी
विविध विचार - नैतिक मूल्यों के बदलते
परिप्रेक्ष्य - मूल्य दृष्टि के विविध स्वर
भौतिकवादी मूल्य दृष्टि - मार्क्सवादी
मूल्य दृष्टि - विज्ञान और मानव मूल्य
मूल्य विघटन विभिन्न क्षेत्रों में -
राजनीतिक क्षेत्र में मूल्य च्युति -
आर्थिक क्षेत्र में मूल्य शोषण - धार्मिक
क्षेत्र में मूल्य-स्खलन - पारिवारिक क्षेत्र
में मूल्य विघटन ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय - दो 83 — 136

बदलते पारिवारिक स्वरूप

विवाह अमीरों का एक तमाशा -
दहेज प्रथा - नारी जीवन में
अभिशाप - नारी - शोषण - आपसी
समझौते का अभाव - पारिवारिक
रिश्ते में फरेब और बेईमानी -
प्राप्त के प्रति ऊब और अप्राप्य के
प्रति आकर्षण - महानगरीय परिवेश में
मानवीय रिश्तों का उथलापन -
विवाह सम्बन्धी बदलते दृष्टिकोण -
शादी पूर्व यौन - सम्बन्ध का
अभिशाप - शादी से नफरत करती
नयी पीढ़ी -

अध्याय - तीन 137 — 209

राजनैतिक क्षेत्र में मूल्य विघटन

स्वातन्त्र्योत्तर राजनैतिक परिस्थितियाँ
भारत-विभाजन - गान्धीजी की हत्या
चुनाव - पंचवर्षीय योजनायें - आपात काल
1947 से 1990 तक के शासन की करवटें
चरित्रहीन राजनीतिज्ञ -

पृष्ठ संख्या

नेताओं की अवसरवादिता - दल बदल
राजनीति - चुनावी हथकंडे - गान्धी
वाद का हनन - प्रजातंत्र का खोखलापन -
राजनीतिज्ञों की यंत्रणाओं की शिकार
बननेवाली आम जनता - आम जनता
की मोहनिद्रा - कायर आम जनता -
युद्ध की विभीषिकाओं से संत्रस्त आम
जनता - उन्नत-कुल-जात नेताओं की
यंत्रणायें - व्यापक जन संघर्ष ।

अध्याय - चार 210 - 247

आर्थिक धरातल पर मूल्य विघटन

अर्थ सम्बन्धी विचार - आर्थिक समानता
का संकल्प - अर्थ विषमता - अभावग्रस्तता
से आहत आम जनता - अर्थलोलुप ठेकेदार
अर्थाभाव और मृत्यु - रोजी रोटी की
तलाश - बेकारी की समस्या - बसेरे
की तलाश - अर्थ के पीछे अन्धी दौड
रिश्वत - आत्म निर्मित अर्थाभाव -
फिजूलखर्च - अर्थ केन्द्रित मानव -
रिश्ता ।

पृष्ठ - संख्या

अध्याय - पाँच 248 - 284

धर्म के क्षेत्र में मूल्य विघटन

धर्म की आवश्यकता - धर्म निरपेक्षता
और भारत का संविधान - धर्म के
नाम झगडा ? अस्पृश्यता - मुँह में
राम - बगल में छुरी - मेमने के वेष
में भेडिये - धर्म, पार्टी की बपौती ?

अध्याय - छः 285 - 296

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची 297 - 318

1. नाटक
2. हिन्दी किताबें
3. Encyclopedia - 32
4. English General Books
5. Sanskrit
6. डिक्शनरी
7. मलयालम
8. पत्र-पत्रिकाएँ

---0---

पुरोवाक्

पुरोवाक्

साहित्य की जड़ें अनुभवों में होती है और अनुभवों की जड़ें अपने परिवेश में। लेखक और परिवेश का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। परिवेश के प्रति लेखक की प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति ही रचना है। आज़ादी के बाद के सामाजिक परिवेश के जीवन मूल्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे। मूल्य मूढ़ता की एक विषम स्थिति पूरे समाज में व्यापती चली गई। मानव मूल्यों की खोज के स्थान पर उस की नफरत की जाने लगी। मनुष्य केलिए मनुष्य के भीतर जो ममता, प्यार, सहानुभूति के भाव थे, वे लुप्त हो गये। विज्ञान के जादू से देश का पारस्परिक दूरी घट गई। पर आदमी और आदमी के बीच की दूरी बढ़ती रही।

जीवन के हर क्षेत्र की स्वार्थ लिप्सा ने भारतीय संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्तों और मान्यताओं का हनन किया। मूल्यों के नाम पर प्रतिष्ठित खोखली आस्थाओं और आदर्शों की विसंगतियों को संवेदनशील लेखकों ने सब से अधिक अनुभव किया। युग के विसंगत परिवेश और उस में छटपटाते मनुष्य की पीडा को स्वर देना नाटककारों ने अपना कर्तव्य समझा। इस विसंगतिमयी परिवेश का तीखा एहसास कई बार मुझे भी हुआ था। इसलिए मैं ने शोध केलिए नैतिक मूल्य को ही चुन लिया। नाटक के प्रति

विशेष रुचि होने के कारण इस विधा पर ज़ोर दिया । जहाँ तक मुझे ज्ञात है, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों पर नैतिक मूल्य सम्बन्धी शोध कार्य बहुत कम ही हुए हैं । इस विषय को विभिन्न पार्श्वों में उलट पुलट कर देखने की भरसक कोशिश मैं ने की है ।

यह शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में नैतिक मूल्य की पहचान और परख की गई है । मूल्य, नीति, नैतिक मूल्य, नीति सिद्धान्त, पुरुषार्थ, नैतिक मूल्यों के बदलते परिप्रेक्ष्य, मूल्य विघटन के विविध क्षेत्र आदि विषयों का विवेचन किया गया है । दूसरे अध्याय में पारिवारिक सम्बन्धों के बदलते स्वरूप की छानबीन की गई है । तीसरा अध्याय राजनैतिक क्षेत्र में आये मूल्य विघटन प्रस्तुत करता है । चौथे अध्याय में आर्थिक क्षेत्र के मूल्य पतन पर काफी प्रकाश डाला गया है । पाँचवें अध्याय में धर्म क्षेत्र में आये मूल्य स्खलन को शब्दबद्ध किया गया है । उपसंहार में मूल्य विघटन से समाज में उपजनेवाली विभीषिकाओं की ओर संकेत करते हुए नैतिक मूल्यों की महत्ता को साबित किया गया है ।

यह शोध प्रबन्ध कोचिन "विज्ञान व प्राद्यौगिकी विश्वविद्यालय" के हिन्दी विभाग की रीडर डॉ॰पी॰ए॰ शमीम अलियार के विद्वत्तापूर्ण निदेशन में संपन्न हुआ है । उनके आत्मीयतापूर्ण व्यवहार एवं सतत् प्रेरणा के कारण ही यह कार्य पूर्ण हो सका है । इस केलिए मैं उनका आभारी हूँ ।

इस विभाग के अध्यक्ष प्रोफसर डॉ• एन• रामन नायर से भी समय समय पर मुझे प्रोत्साहन मिला है । उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

इस विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा मिसस तम्पुरान के प्रति भी धन्यवाद प्रकट करता हूँ ।

ए•जे• एब्रहाम

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान व
प्राद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोच्ची पिन 682022
तारीख़ 3•4•1991

अध्याय - एक

नैतिक मूल्य - पहचान और परख

नैतिक मूल्य - पहचान और परख

समाज को प्रगति, सुरक्षा और शान्ति की ओर अग्रसर करनेवाले मूल सिद्धान्त हैं "नैतिक मूल्य" । किसी भी समाज की सुरक्षा और प्रगति श्रेष्ठ मानव-मूल्यों पर आश्रित होती है । मानव समाज में परस्पर-व्यवहार के मापक के रूप में नैतिक-मूल्य स्वीकारे गये हैं जो जीवन के उन्नयन के प्रधान कारण हैं । मूल्य और नैतिक मूल्य दोनों अलग-अलग विषय होते हुए भी कुछ एक साम्य दोनों में हैं ।

मूल्य

"मूल्य" शब्द की परिकल्पना व्यापारी चीज़ों के भावों से है। "अर्थशास्त्र के सब से प्रधान शब्द मूल्य ही है ।[1] एक चीज़ के बदले उसके मूल्य के रूप में जो राशि दी जाती है उसे हम गणित-शास्त्र की संख्याओं के रूप में आँक सकते हैं । अर्थशास्त्र की दृष्टि से जैव-वस्तुओं की प्राप्ति का माध्यम-मात्र है मूल्य । याने - "जैव वस्तुओं का मूल्य उन पर किये जानेवाले आग्रह और उसके अभाव के कारण,

---

1. "Value is the most important word in the whole science of economics".
   Encyclopedia Americana, Vol.27, Page 867

होता है[2]।" मूल्य एक "धारणा" या "अनुभूति" है । इस के अनुसार गुण-दोष-विवेचन मूल्य के अन्तर्गत आता है । मूल्य का विवेचन "एन्सैक्लोपीडिया ब्रिटानिका" यों करता है "किसी वस्तु, पदार्थ या विषय में किसी प्रकार के गुणविवेचन का निर्धारण करना मूल्य है । ऐसे मूल्यांकन में सहजोपलब्ध चाह या प्रवणता अन्तर्निहित रहती है । अतः मूल्य एक सहजोपलब्ध विश्वास या धारणा है[3]।" हमारे दैनिक जीवन में व्यापारी-मूल्य का अपना महत्व है । भोजन की चीज़ें, कपड़े, विविध प्रकार के द्रव्य आदि खरीदने केलिए रुपए, सोने, चाँदी आदि देने पड़ते हैं । याने व्यापारी के हाथ से चीज़ें उपभोक्ता के हाथ तक पहुँचाने का माध्यम है रुपया । "मूल्य" शब्द के द्वारा अलग-अलग प्रकार की तीन बातें सूचित की जाती हैं जिन के बारे में "अमरिकाना" नामक किताब में ऐसी सूचना मिलती है - "सार्वजनिक अर्थव्यवस्था के अनुसार "मूल्य" शब्द से तीन पृथक् विषय सूचित करते हैं । वे हैं - सहजोपयोगिता, पैदावार-व्यय और क्रय-शक्ति[4]।" अर्थशास्त्रियों ने "मूल्य" शब्द को व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त करने लायक एक अंगीकृत शब्द के रूप में मान्यता दी है । यह एक प्रधान तथ्य है कि उपयोग और कालक्रम के अनुसार "मूल्य" परिवर्तित होता रहता है । इस का एक स्थिर रूप या स्थिर भाव नहीं है । याने मूल्य निश्चित नहीं, अनिश्चित है । "व्यापारी जगत् में रुपए या

---

2. "Value depends upon two things, namely desirability and scarcity". Encyclopedia Americana,Vol.27,p.867

3. "Value is a determination or quality of an object which involves any sort of appreciation or interest. Such appreciation, however, involves feeling and ultimately desires or tendencies underlying the feelin Therefore value is the feeling". Encyclopaedia Britanica, Vol.22, p.962.

4. "There are three distinct things signified by the term value, all of which are the subject of discussion in political economy inherent utility, cost of production and purchasing power." The Americana Vol.19

धन के बदले हम काम या नौकरी रख सकते हैं। तब हम नौकरी के भाव के रूप में रुपए देते हैं। अत: मूल्य रुपया या भाव के रूप में परामर्शित होता है।[5]" किसी वस्तु या चीज़ का दाम या मूल्य कभी भी एक-सा नहीं रहता है। याने वस्तुओं के बढ़ने अथवा घटने के अनुसार मूल्य बदलता रहता है। अत: हम कह सकते हैं कि - "व्यापारी चीज़ों के अधिक उत्पादन से दाम का कम हो जाना और उपभोक्ताओं की संख्या बढने व आवश्यकताएं बढने से दाम बढ़ जाना, यह व्यापारी नियम है। तब मूल्य का हेरफेर हो जाता है।[6]"

नैतिक-मूल्य

नैतिक मूल्यों का सम्बन्ध समाज से है। इसलिए इसे एक समाज सम्बन्धी विषय भी कह सकते हैं। हमारी पूर्व-पीढ़ी के सदस्यों से देखे, सुने, अनुभव किये कार्यों के अनुसार भले-बुरे का मूल्यांकन करना स्वाभाविक है। दूसरे शब्दों में कहने पर पूर्व-पीढी के लोगों के मूल्य संकल्प ने नव-पीढ़ी के मूल्य-बोध को जन्म दिया है। आज हम जो कुछ करते हैं, दिखाते हैं, बर्ताव करते हैं, एक हद तक वे अपने पूर्वजों से अर्जित हैं। एक प्रत्येक जन समूह की संस्कृति, सिद्धान्त आदि को हम अच्छे मानते हैं तो उस का श्रेय उनकी पूर्व पीढ़ी को है। ज़ाहिर है कि "मूल्य एक अर्जित संपत्ति" है। जैसे, सोना, भवन, खेत आदि

---

5. "As wealth and services are exchanged the amount of other things which any commodity or service will procure is known as it value and value expressed in money is price."
The Americana, Vol.19

6. "Market value is sometimes distinguished from value in use, or the utility of a commodity for satisfying a human want, which is subjective."
The Columbia Encyclopedia, Vol.5, p.2226

हमारी दृश्य भौतिक संपत्ति हैं, वैसे ही सभ्यता, आदत, बर्ताव आदि व्यक्ति के अपनाये अदृश्य गुणों को हम नैतिक-मूल्य शब्द से अभिहित कर सकते हैं। ऐसे श्रेष्ठ गुणों का अभाव जिस समाज में दिखाई पड़ता है, उस समाज को हम "मूल्य-हीन समाज" कह सकते हैं।

नीति

नैतिक-मूल्य की चर्चा के सिलसिले में "नीति" की चर्चा भी समीचीन लगती है। "अपना कार्य दूसरे को दोष पहुँचाये बिना सुचारु रूप से चलाने की कुशलता को "नीति" कहते हैं[7]।" "नीति" शब्द अंग्रेज़ी के Ethics का समानार्थक शब्द है, जिस का अर्थ है - "आचरणशास्त्र, नीतिशास्त्र, नैतिक-नियम" आदि[8]। Ethics शब्द ग्रीक भाषा के ETHOS शब्द से लिया गया है, जिस का अर्थ "बर्ताव, आचरण आदि है[9]।" नीतिशास्त्र या Ethics, दर्शन-शास्त्र की एक शाखा है, जिस में भलाई, गुण, कर्तव्य जैसी मानव धारणाओं का मूल्यांकन होता है[10]। नीति-शास्त्र में नैतिक-मूल्य, कर्तव्य, मानव के आदर्श-चरित्र और उसके परिणामों का प्रतिबिम्ब हम पाते हैं। "जब मानव अपने हरेक कार्य के पीछे छिपे हुए उद्देश्य और अपने कार्यों के परिणामों के सम्बन्ध में सोचने लगा तो नीतिशास्त्र का उदय हुआ[11]।"

---

7. हिन्दी-मलयालम कोश अभयदेव, पृ.776
8. बृहद् अंग्रेज़ी हिन्दी कोश डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.472
9. Modern Reference Encyclopedia, Vol.7, p.210
10. "Ethics, the branch of philosophy concerned with the study of those concepts which we use to evaluate human activities, in particular the concept of goodness and obligation."
    The new caxton Encyclopedia, Vol.7, p.2245
11. "Ethics developed when men began to study the motives behind their actions and the results of them."
    New standard Encyclopedia, Vol.5, p.218

"नीतिशास्त्र" को "नैतिक दर्शन-शास्त्र" (Moral philosophy) भी कहते हैं । इस में नैतिक-दृष्टि से ऐसा विवेचन होता है कि जीवन में अच्छा क्या है, बुरा क्या है, उचित क्या है अनुचित क्या है आदि[12] । भला-बुरा, ठीक-गलत आदि की धारणाएँ समाज में पुराने जमाने से चली आयी थीं । प्रत्येक काल के चिन्तक इस विषय पर शिक्षा-निरीक्षण करते आये हैं । "मनुष्य के प्रत्येक कार्यव्यापार के पीछे के उद्देश्यों एवं फलों के बारे में जब उसने अध्ययन शुरू किया तब नीतिशास्त्र का विकास हुआ[13] ।" ऊपर हम ने देख लिया कि नीतिशास्त्र में भलाई-बुराई या गुण-दोष का विश्लेषण होता है । इस भलाई-बुराई-विश्लेषण में "विवेक" का महत्त्वपूर्ण स्थान है । नीतिशास्त्र में विवेक की आज्ञा, जो सर्वोपरि नैतिक-कानून माना जाता है, को नैतिक कार्य-व्यापार के मूल सिद्धान्त के रूप में माना गया है[14] ।"

नीतिशास्त्र के अनुसार भलाई-बुराई के विवेचन-बोध देनेवाले कई सिद्धान्त हैं । उनमें प्रमुख हैं - अनुभूतिवाद -Empiricism, युक्तिवाद या हेतुवाद Rationalism और अन्तर्प्रेरणावाद Intuitionism. "जीवन-यापन और आचरण में अपने अनुभव के द्वारा बुराई से भलाई का बोध करानेवाला सिद्धान्त है अनुभूतिवाद । युक्तिवाद से, भले-बुरे के विश्लेषण के कारणों का बोध होता है । भलाई बुराई के विश्लेषण में मनुष्य को शीघ्रबोध मिलनेवाला सिद्धान्त है अन्तर्प्रेरणावाद[15] ।"

---

12. "Ethics, also called Moral philosophy, the branch of philosophy that is concerned with what is morally good and bad, right and wrong."
The New Encyclopaedia Britanica, Vol.4, p.578

13. "Ethics has developed as man has raflected on the intentions and consequences of his acts. From this reflection on the nature of human behaiour,theories of conscience have developed,giving direction to much ethical thinking".
The Columbia Encyclopedia, Vol.2, p.674

14. "In ethics, posited categorical imperative, as basis of moral action.".
Collins Concise Encyclopedia, p.304

15. New Standard Encyclopedia, Vol.5, p.218

नैतिक आचरण के पीछे कुछ प्रेरणाएं निश्चय ही अनिवार्य हैं। उन्हें कुछ लोग देवी - प्रेरणा मानते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो देव-शक्ति पर या धर्म पर विश्वास नहीं करते हैं क्योंकि उन्हें ऐसी कोई प्रेरणा या शक्ति महसूस नहीं है। धर्म पर विश्वासी या ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त भक्त लोग यह मानते हैं कि उन्हें धार्मिक-नियमों का पालन करना है क्योंकि वे नियम ईश्वर के दिये हुए वचन ही हैं। दैव-शक्ति के विरोधी लोग स्वप्रेरणा से प्रेरित हैं। चाहे स्वप्रेरणा हो या दैव-प्रेरणा, व्यक्ति के द्वारा किये जानेवाले आचरण, समाज-कल्याणकारी रहना चाहिए। समाज-कल्याणकारी अचरणों को समाज से अंगीकार या मान्यता मिलती है। ऐसे आचरणों को समाज-सम्मत-नैतिक भलाई या नैतिक-लाभ से अभिहित किये जा सकते हैं।

नैतिकता-सम्बन्धी सिद्धान्तों में आनन्दवाद (Hidonism), पूर्णतावाद (Perfectionism)कर्तव्य सिद्धान्त (theories of obligation) आदि प्रमुख हैं।

आनन्दवाद

आनन्दवादी खुशी, ऐश्वर्य, आमोद-प्रमोद आदियों को जीवन में प्रमुखता देते हैं। "आनन्दवाद के अनुसार मानव जीवन की केन्द्रीय सार्थकता आनन्द है।"[16] ईसा पूर्व 341-270 में जीवित प्राचीन ग्रीक दार्शनिक एपिक्युरस (Epicurus) आनन्दवाद के प्रवक्ता थे।

---

16. "Hidohism, in philosophy, the doctrine that pleasure is the central significance in human existence." New Standard Encyclopedia, Vol.7, p.H.122

उनके विचार में - "चरम अच्छाई या श्रेष्ठ नैतिकता आनन्द ही है । शरीर की पीडा और मन में उदित संदेह से स्वतंत्र या मुक्त होना आनन्द है । देवी-देवताओं का भय व मृत्यु-भय ये सब से बडी बुराइयाँ हैं ।[17] आनन्द सम्बन्धी एपिकुरस की चिन्ता-धारा - "खाना, पीना और मज़ा करना" - सदियों से युवामानस में नवोन्मेष की वर्षा करती आयी है । "किसी वस्तु का इन्द्रियजन्य अनुभव के द्वारा ही उस की यथार्थता हम समझ सकते हैं । सत्य की जानकारी भी उन केलिए इन्द्रियानुभव के द्वारा स्वीकार्य था ।[18]" आनन्द की पहचान विवेक के द्वारा होनी चाहिए । इस विषय में वे आगे व्यक्त करते हैं - "शारीरिक और मानसिक पीडा रहित चरम आनन्द की पहचान विवेक के द्वारा संभव होती है और विवेकी मनुष्य धर्म, संयम और मित्रता का परिपोषण करता है । ऐसा मनुष्य अनजान वस्तुओं के भय से बच भी सकता है ।[19]" एपिकुरस के विचारवाले यह भी मानते हैं "सभी आनन्दानुभूति अच्छी है और सभी दु:खपूर्ण कार्य बुरा भी । लेकिन उन्होंने यह भी सूचित किया है कि सभी खुशीदायक वस्तुओं को स्वीकारना नहीं चाहिए और सभी दु:खप्रद बातों को छोडना भी नहीं चाहिए ।[20]"

---

17. "Epicurus taught that pleasure is the chief good. He defined pleasure asthe 'freedom of the body from pain and the soul from anxiety.' The chief evil is fear of the gods, and fear of death."
New Standard Encyclopedia Vol.5, p.E.190

18. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग - 3, पृ.13

19. "The greatest good pleasure, is to be realised through prudence, the wise avoidance of physical pain and spiritual anxiety. The prudent man cultivates justice, temperance and friendship. He also cultivates a knowledge of science to end fear of the unknown."
New Standard Encyclopedia, Vol.5, p.191

20. "Epicurus held that all pleasant sensations are good and all unpleasant ones are evil, but he also held that not all pleasures are to be chosen nor all pains avoided."
The Encyclopedia Americana, Vol.10, p.613

आनन्द कई प्रकार के होते हैं। आनन्द की प्राप्ति केलिए मनुष्य कई प्रकार के माध्यम अपना सकते हैं। शरीर का आनन्द, मन का आनन्द, आत्मा का आनन्द, बुद्धि का आनन्द इन में किसी भी प्रकार के आनन्द की प्राप्ति केलिए मनुष्य अपनी इच्छा व रुचि के अनुसार जी सकते हैं। तब यह समस्या उठती है कि आनन्द व्यक्ति-केन्द्रित हो जाता है। "व्यक्ति-केन्द्रित आनन्द स्वार्थवाद या अहंवाद (Egoism) होता है जिस में व्यक्ति अपने ही आनन्द की खोज में है।"[21] स्वार्थ-सुखान्वेषक अपने सुख की यात्रा में परोपद्रवी और कभी कभी अपने लिए भी नाशकारक हो जाते हैं। उदाहरण केलिए आनन्द की खोज में नशीले मादक द्रव्यों के सेवक अपने और समाज के बिगाड़क बन जाते हैं। अतः यह कहना पड़ता है कि - "उपयोग के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य बढ़ता या घटता रहता है। उदाहरण केलिए दवा, शराब आदि का उचित उपयोग करने पर उनका अपना मूल्य है। लेकिन उनके अनुचित सेवन से मनुष्य केलिए हानिकारक निकलते हैं।"[22] आनन्दवाद के नाम पर शराब-सेवन का विकृत रूप आज भी समाज में है। लेकिन "आनन्दवाद के समर्थक एपिकूरियन दार्शनिकों ने नैतिक आनन्दवाद (Ethical Hidonism)-में विश्वास किया था कि जीवन की सबसे बड़ी मूल्यवान चीज़ आनन्द ही है।"[23] आनन्द सम्बन्धी विचारों के पोषक, राजा सोलमन ने अपनी राय इस प्रकार व्यक्त की है कि - "मनुष्य केलिए आनन्द करने और जीवन भर भलाई करने के सिवाय, और

---

21. "Egoism holds that the individual should seek his own happiness."
New Standard Encyclopedia, Vol.5, p.E.219

22. "A thing may have great value and still be used in ways which harm mankind. For example, drugs and alcohol posses great utility. They are of benefit to man when used properly. But they become harmful when people misuse them or become addicted to them."
The World Book Encyclopedia, Vol.19, p.212

23. "Ancient philosophers as Epicurus believed in ethical hedonism that is, that pleasure is the only moral good."
New Standard Encyclopadia, Vol.7, p.H.122

कुछ भी अच्छा नहीं है ।[24]" आनन्दवादियों की जड सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में आते आते और भी पल्लवित होने लगीं और उससे नवकुसुम सौरभ फैलाने लगे जिस का रूप है मनोवैज्ञानिक आनन्दवाद (Psychological Hedonism)। अंग्रेज़ी दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक आनन्द-वादियों ने यह समर्थन किया "आनन्द के सिवा और कुछ चाहने में, मनुष्य असमर्थ है ।[25]" आनन्दवाद का आधुनिक रूप है, उपयोगितावाद (Utilitarianism)। उपयोगितावाद के दो प्रमुख प्रवर्तक थे जरमी बनताम {1748-1832} और जोण स्टुवर्ट मिल {1806-1873} उनके विचार में - "बहुत अधिक लोगों को परमानंद प्रदान करने के उद्देश्य से नैतिक अवधारणा स्थापित हुई है; लेकिन आनन्द का अर्थ परिमाण सम्बन्धी हो जाने पर वह संदेहास्पद बन जाता है ।[26]" उपयोगितावाद के अनुसार "समाज के बहुत अधिक सदस्यों को बहुत अधिक आनन्द प्रदान करना चाहिए ।[27]"

---

24. "I know that there is no good in them, but for a man to rejoice, and to do good in his life." The Thompson Chain Reference Bible, Forth improved edition, p.633.

25. "English philosophers of the 17th and 18th Centuries developed psychological hedonism, the theory that humans are incapable of desiring anything other than pleasure." New Standard Encyclopaedia, Vol.7, p.H.122

26. "In the utilitarianism of Jeremy Bentham and John Stuart Mill, the conception of the moral objectives is formulated as the greatest good of the greatest number; but it is doubtful if the meaning of the good is clarified by this quantitative formulation.". Modern Reference Encyclopedia, Vol.7, p.211

27. "Utilitarianism defines the 'Summum bonnum' as 'the greatest good for the greatest number." New Standard Encyclopedia, Vol.5, p.219

आनन्दवाद सम्बन्धी भारतीय विचारों का विश्लेषण समीचीन लगता है । तैत्तिरीयोपनिषद् में ऐसा परामर्श मिलता है "जो परब्रह्म परमात्मा के आनन्द को जाननेवाला ज्ञानी महापुरुष होता है वह कभी किसी से भय नहीं करता है ।[28]" याने आनन्द आत्मा का ही लक्षण है । वह नित्य है । "जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, प्रत्येक अवस्था में आनन्द कुछ-न-कुछ अनुभव होता है । सुषुप्ति में विषयों का अभाव रहता है, फिर भी आनन्द का अनुभव होता है, क्योंकि सोकर जागने के बाद सबके अनुभव में ऐसा ही आता है । जाग्रत् और स्वप्न में सुख तथा दुःख रहते हैं, यद्यपि उनके मूल में आनन्द ही रहता है । सुषुप्ति में सुख दुःख का द्वन्द्व दब जाता है और आनन्द मात्र का अनुभव होता है । अतः आनन्दवाद वर्तमान है और वह अपरोक्ष अनुभव है, वैषयिकज्ञान नहीं ।[29]"

सुख और आनन्द दोनों एक नहीं है । सुख का सम्बन्ध शरीर से है तो आनन्द का सम्बन्ध आत्मा से है । इन दोनों का विश्लेषण "हिन्दी साहित्यकोश" में इस प्रकार मिलता है "सुख का सम्बन्ध शरीर और इंद्रियों से है, आनन्द का आत्मा से । सुख विषय या ज्ञेय है, आनन्द अविषय विषयी या ज्ञाता । सुख लौकिक है, आनन्द अलौकिक या लोकोत्तर । सुख आनन्द निर्भर है, आनन्द स्वयं आत्मनिर्भर है । सुख प्रेय की प्राप्ति है और आनन्द श्रेय की ।

---

28. "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति ।"
- ईशादिनो उपनिषद् व्याख्याकार - हरिकृष्णदास - गोयन्दाका, पृ.33।

29. हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1, पृ.88

अभ्युदय सुख का क्षेत्र है और निःश्रेयस आनन्द का । सुख का सत्गुण से विरोध हो सकता है, पर आनन्द का नहीं । जिसे आनन्द का सच्चा आस्वादन होता है, उस को अन्य सब कुछ फीका लगता है । आनन्द का स्वाद गूंगे का गुड़ चखना है, आनन्द अनुभवैकगम्य है । आनन्द आत्मा का स्वभाव है । आत्म ज्ञान न रहने से आनन्द का भी ज्ञान नहीं होता । आनन्द लाभ का वही साधन है, जो आत्म लाभ का है । ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग, भक्ति मार्ग, प्रपत्ति-मार्ग, पुष्टिमार्ग और योगमार्ग इस को प्राप्त करने के साधन हैं । आनन्द की उपलब्धि ही मोक्ष है[30] ।"

पूर्णतावाद

समाज-सम्मत नैतिक अच्छाइयों में दूसरा स्थान पूर्णतावाद (Perfectionism) का है । इसके अनुसार "जहाँ तक हो सके कठिन परिश्रम के द्वारा मनुष्य को अपने सभी प्रकार की शक्ति लगाकर पूर्णता की ओर बढ़नी चाहिए[31] ।" लेकिन आनन्दवाद के जैसे पूर्णतावाद में भी यह सन्देह पैदा होना स्वाभाविक है कि पूर्णता किस बात में वांछनीय है ? शरीर की पूर्णता, मन की पूर्णता, आत्मा की पूर्णता या बौद्धिक पूर्णता अथवा और किसी बात में पूर्णता ? मानव-जीवन का लक्ष्य भी पूर्णता की ओर प्रयाण है । जितने अधिक मिलने पर भी, और अधिक पाने की लालसा से वह आगे दौड़ता है । प्रत्येक मनुष्य पूर्णता के प्रयाण में अपनी अभिरुचि के अनुसार के काम में लगा रहता है । मकान बनाना,

30. हिन्दी साहित्य कोश - भाग - 1, पृ.88

31. "Perfectionism holds that man should strive for the fullest possible development of all his capacities". New Standard Encyclopedia Vol.5/ p.E.219

उसके साथ भौतिक संपत्तियाँ अधिक कमाना, घर के चारों ओर किला बनाना, कुत्तों को पालना, बाहर के लोगों को, यहाँ तककि भिखारियों तक को चार दिवारियों के अन्दर घुसने न देना, भोग-विलास में दिन-रात लगे रहना - इन कार्यों में पूर्णता माननेवाले लोग होते हैं। इनके विचार में ये पूर्ण हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सभी लोग इस महत्वाकांक्षा की भावना से बुरी तरह ग्रस्ति हैं। बहुत से ऐसे लोग भी हैं जो अपनी जिन्दगी की सुख-सुविधाएं न्योछावर करते हुए भी दूसरों के दु:ख-दर्द को दूर करने में जीवन की पूर्णता महसूस करते हैं। इसलिए पूर्णतावाद भी सन्देहास्पद है कि व्यक्ति को अपनी पूर्णता की दौड करनी है अथवा दूसरों को भी अपने साथ पूर्णता की दौड में साथ देना है या समूचे मानव-वर्ग के हितार्थ काम करना ज़रूरी है।

कर्तव्य-सिद्धान्त

समाज-सम्मत नैतिक अच्छाइयों में तीसरा स्थान कर्तव्य सिद्धान्त - Theory of Obligation - का है। व्यक्ति को, अपने लिए और समाज केलिए निभाने लायक कई कर्तव्य हैं। उन फर्जों को निभाये बिना रहना खतरनाक है। कर्तव्यच्युत लोग समाज केलिए बोझ है। कर्तव्य से सम्बन्धित है, नैतिक भलाई। इम्मानुवल कान्ट (1724-1804) ने इस विषय पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा था "कर्तव्य करने केलिए मनुष्य को एक शुद्ध मन की ज़रूरत है। यदि मन अच्छा है तो ज़रूर वह कर्तव्यनिष्ठ बन जाएगा।"[32] कर्तव्य-सिद्धान्त के अनुसार

---

32. "Kant held a theory of value according to which the only thing good in itself and without qualifications is a good will. That will is good which acts out of a sense of duty."
The Encyclopedia Americana, Vol.10, p.616

एक वस्तु की अच्छाई या बुराई उसके परिणाम के अनुसार निश्चित कर सकता है । कर्तव्य-सिद्धान्त की चर्चा में "द एनसैक्लोपीडिया अमरिकाना" का मत ऐसा है - "कर्तव्य-सिद्धान्त उद्देश्यवाद से संबंधित है । एक आचरण की अच्छाई या बुराई की परिकल्पना उसके परिणाम के अनुसार कर सकते हैं ।"[33] कर्तव्य-सिद्धान्त की आधार शिला व्यक्ति का विवेक है । इस विवेक के अनुसार व्यक्ति और कई व्यक्तियों का समूह मिल कर कर्तव्य निभाते हैं । "नैतिक-सिद्धान्त में व्यक्ति अपने लिए एक आचरण-स्तर निर्मित करता है और कभी कभी एक प्रत्येक जनविभाग उसके सदस्यों केलिए जिम्मेदारी के रूप में काम करते हैं ।"[34] यह सिद्धान्त व्यष्टि और समष्टि दोनों की भलाई पर बल देता है । इसलिए ही कुछ लोग ऐसे होते हैं जो कर्तव्य को अधिक महत्व देते हैं । "एक व्यक्ति, अपने द्वारा किये जानेवाले कार्य, अपनेलिए अहित कर जानकर भी, विवेक की आज्ञा मान कर करने को विवश हो जाता है । ऐसे लोगों केलिए कर्तव्य निष्ठा ही चरम आदर्श होते हैं ।"[35] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कर्तव्य-सिद्धान्त का समाज में अपना महत्व है ।

उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों - आनन्दवाद, पूर्णतावाद, कर्तव्य सिद्धान्त - के विश्लेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि की भलाई केलिए कर्तव्य सिद्धान्त ही अधिक लाभदायक और अनुकरणीय होगा ।

---

33. "Theories of obligation may be teleological, that is, the rightness or wrongness of an action is held to be determined solely by its consequences actual or expected."
The Encyclopedia Americana, Vol.10, p.610

34. "Moral Principles may be viewed either as the standard of conduct which the individual has constructed for himself or as the body of obligations and duties which a particular society requires of its members."
The Columbia Encyclopedia Vol.2/ p.674

35. "Duty is the only moral good for some people. This doctrine holds that a person should follow the dictates of his conscience instead of giving primary consideration to the consequences, possibly unpleasant to him, of his conduct."
New Standard Encyclopedia Vol.5, p.219

भारत में नीति-चिन्तन

अति प्राचीन काल से, भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीति-संबंधी विचार-धाराओं का सोता लगातार प्रवहित रहता था और आज प्रवहित रहता है भी । वैदिक काल के ग्रन्थों में अतिथि-सत्कार,[36] सखा की सहायता, सत्य की प्रशंसा[37] असत्य की निन्दा, पापी को दण्ड, धर्मी को पुरस्कार आदि नीतियाँ प्रतिपादित हैं । ब्राह्मण-ग्रन्थों की नीतियाँ भी वैदिक कालीन नीतियों से मिलती जुलती है । सत्य, पुरुषार्थ आदियों का महत्व ब्राह्मणकालीन नीतियों हैं । उपनिषदों के काल में आते आते भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता को महत्वपूर्ण स्थान देने लगा । इस काल में परलोकानन्द की इच्छा प्रबल थी । "मनुस्मृति" में धर्माधर्म का विवेचन, सदाचार, ब्रह्मचर्य, कर्तव्य पालन, काम-क्रोधादि-जन्य-दोष, साम-दान-भेद-दण्ड, सत्व-तम-रज गुण आदि नीति-सम्बन्धी विचार-विश्लेषण मिलते हैं । रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में अपने अपने जमाने के जीवन-सम्बन्धी श्रेष्ठ आदर्श उपलब्ध हैं ।

---

36. न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात् । आराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्नं राद्धम् । मुखतोऽस्मा अन्नं राध्यते । एतद्वै मध्यतोऽन्नं राद्धम् । मध्यतोऽस्मा अन्नं राध्यते । एतद्वा अन्ततोऽन्नं राद्धम् । अन्ततोऽस्मा अन्नं राध्यते । य एवं वेद ।
- ईशादि नौ उपनिषद्, पृ.346

37. "सत्यमेव जयति नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ।।
- ईशादि नौ उपनिषद् व्याख्याकार - हरिकृष्णदास गोयन्दका
पृ.222

जीवन को नश्वर से अनश्वर बनाने की प्रेरणा भारतीय-चिन्तन की खूबी है । धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के मार्ग से अग्रसर होते जीवन-विचार से आज समूचे विश्व के लोग आकर्षित हो गए हैं । सात-समुद्र की सीमाओं को लांघ कर हमारे आदर्श आज विश्व-शांति के सन्देशवाहक बन गए हैं । "नीति" की स्थूल परिभाषा "हिन्दी साहित्य कोश" में इस प्रकार मिलती है "समाज को स्वस्थ एवं सन्तुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति करने केलिए जिन विधि निषेध मूलक सामाजिक, व्यावहारिक, आचारिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि नियमों का विधान देश, काल और पात्र के सन्दर्भ में किया जाता है, उसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं ।"[38] अब हमें पुरुषार्थों पर विशद चर्चा अनिवार्य है ।

पुरुषार्थ

भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थों - for ends-[39] की गणना आदर्श-जीवन से प्रेरित हुई है । इस विषय में "हिन्दी कामसूत्र" में इस प्रकार परामर्श हुआ है - "भारतीय-सभ्यता की आधार शिला

---

38. हिन्दी साहित्य कोश भाग - I, तृ.सं., पृ.353

39. "One of the main concepts which underlies the Hindu attitude to life and daily conduct is that of the four ends of man - Purushartha - The first of these is characterized by considerations of righteousness, duty and virtue. This is called dharma, There are other activities, however, through which a man seeks to gain something for himself or pursue his own pleasure. When the object of this activity is some material gain, it is called artha; when it is love or pleasure, it is Kama. Finally, thre is the renunciation of all these activities in order to devote oneself to religious or spiritual activities with the aim of liberating oneself from the wordly life; this is moksha".
Social Change in India : B. Kuppuswamy, p.68

चतुर्वर्ग - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - हैं । हमारे अन्तर्गत शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये ही चार अंग अनन्त कामनाओं एवं आवश्यकताओं के केन्द्र माने जाते हैं । इन के सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से हुआ करती है । शरीर के पोषण और संवर्द्धन केलिए अर्थ की, मनस्तुष्टि केलिए काम की, बुद्धि केलिए धर्म की और आत्मा की शान्ति केलिए मोक्ष की आवश्यकता पड़ती है । ये आवश्यकताएं अनिवार्य हैं, अपरिहार्य हैं । क्योंकि बिना भोजन-वस्त्र के शरीर कृश और निष्क्रिय बन जाता है । बिना काम (स्त्री) के मन कुण्ठित और निकम्मा बन जाता है, बिना धर्म (सत्य, न्याय) के बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बिना मोक्ष के आत्मा पतित बन जाती है ।[40]" जीवन को सोद्देश्य और सार्थक बनाने केलिए पुरुषार्थों की जानकारी आवश्यक है । अतः अब हम चार पुरुषार्थों पर संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे ।

धर्म

"धर्म" जीवन-रूपी सौध की नींव है[41]।" धर्म का सम्बन्ध भूलोक और परलोक दोनों से है । याने धर्म, भूमि में आरंभ होकर स्वर्ग तक फैलनेवाला विषय है । मनुष्य और पशु में कई बातों में समानताएं हैं, पर धर्म की चिन्ता मानव को जानवर से उन्नत साबित करती है । पशु से उन्नत मनुष्य अपने प्रयत्नों तथा शक्तियों को उचिततम दिशा में लगाकर अपने जीवन को अधिक से अधिक सफल और समुन्नत बनाता है । डॉ॰ देवराज इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - "मनुष्य की

---

40. हिन्दी कामसूत्र श्रीदेवदत्त शास्त्री, पृ॰3, प्रकाशन 1964

41. विश्व विज्ञान कोश (मलयालम) भाग - 8, पृ॰ 399, वर्ष 1972

नैतिक तथा धार्मिक खोज, अन्तिम विश्लेषण में, जीवन-विवेक की खोज है । मनुष्य यह जानना चाहता है कि जीवन को उचित ढंग से चलाने या व्यतीत करने का मार्ग कौन-सा है।[42]" धर्म सम्बन्धी धारणा से प्रेरित विवेकी मनुष्य अपने सहजीवियों से और आत्मा दोनों से नाता जोड़ते हुए इहलोक जीवन मंगलमय बना सकता है ।

धर्म शब्द के कई अर्थ होते हैं - कर्तव्य, फर्ज, आदत, सदाचार आदि ।[43] सुकृत, पुण्य, न्याय, स्वभाव, आचार आदि अर्थ भी अमरकोष के अनुसार हैं।[44] धर्म से प्रेरित मनुष्य कर्तव्यनिष्ठ, सदाचार-प्रिय, सुकृत करनेवाला, पुण्य जीवन के इच्छुक, न्यायी आदि बन सकते हैं । धर्म एक व्यक्तिगत अनुभव है । पर उसका फल पूरे समाज पर प्रतिफलित होता है । क्योंकि "मनुष्य एक सामाजिक जीव है।[45]" धर्म की चिन्ता मानव जीवन में संयम लाता है जिस से उसका क्रमिक विकास होता है । धर्मी लोगों के बारे में बैबिल में ऐसा बताया गया है कि - "धर्मी उस वृक्ष के समान है, जो बहती नालियों के किनारे लगाया गया है, और अपनी ऋतु में फलता है, और जिस के पत्ते कभी मुरझाते नहीं, इसलिए जो कुछ वह पुरुष करे वह सफल होता है।[46]" समाज-कल्याणकारी, सफल जीवन का इच्छुक धर्मचिन्तक, मनुष्य सेवा करने वाला और विश्व भ्रातृत्व के पुजारी रहेंगे । "अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, क्षमा, अनसूयता, शौच आदि सामान्य धर्म होते हैं[47]

42· संस्कृति का दार्शनिक विवेचन डॉ·देवराज, पृ·311,प्र·सं·1957
43· हिन्दी मलयालम कोश अभयदेव, पृ·701, प्र·सं·1969
44· अमरकोश {मलयालम} पृ·538, सं·1959
45· संस्कृति का दार्शनिक विवेचन डॉ·देवराज, पृ·310
46· भजन संहिता बैबिल समिति, बंगलूर, पृ·783 {अध्याय 1:3}
47· विश्वविज्ञान कोश भाग 8 {मलयालम} पृ·400, प्र·सं·1972

जो गुण धर्मप्रिय लोगों में हम पहचान सकते हैं । धर्म के द्वारा मनुष्य संसार का त्याग किये बिना आध्यात्मिक वास्तविकता की ओर बढ सकते हैं और कर्तव्य-पालन का बोध उन में जागरित होता है । अत: "धर्म-केन्द्रित जीवन आदर्शपूर्ण रहता है और विजय ऐसे पुरुषों के पक्ष में भी होगी ।"[48] हम यों कह सकते हैं कि "नैतिक जीवन की बुनियाद धर्म है ।"[49]

अर्थ

दूसरा पुरुषार्थ अर्थ है । अर्थ का सामान्य तात्पर्य भौतिक सुखों और आवश्यकताओं की पूर्ति से है । मात्र अर्थ की प्राप्ति होने से सुखपूर्ण जीवन न बिताया जा सकता, अर्थ केवल उस का एक हिस्सा देता है । धर्म-सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन कर के धन कमाना अनुचित है । लेकिन एक प्राचीन धारणा हमारे समाज में आज भी लब्ध-प्रतिष्ठ है - "अनपढ होते हुए भी, धनवान होने पर उसके मित्र अधिक होते हैं और वह पंडित जैसा आदरणीय होता भी है ।"[50] इसलिए धनी लोग गर्व के साथ अपने सिर उठाते हैं और गरीब नरकयातनाएँ सहते हैं । नेहरूजी ने ऐसी हालत को व्यक्त करते हुए कहा था - "पर्स की शक्ति एक बडी शक्ति है ।"[51]

---

48. "जहाँ धर्म तहँ कृष्ण है, जहाँ हरि विजय प्रमान ।"
- महाभारत सबलसिंह चौहान कृत, कर्ण पर्व
- पृ.929

49. हिन्दी काम सूत्र श्रीदेवदत्त शास्त्री, पृ.61, प्र.1964

50. "यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवा: ।
यस्यार्था:स पुमाँल्लोके, यस्यार्था: सच पण्डित: ।।"
- श्रीमन्महाभारतम्, शान्ति पर्वणि, पृ.327

51. "The Power of the purse is always a great power."
Wit And Wisdom Of Nehru : N.B. Sen, p.603

धनोपार्जन अपने आप में दोष नहीं है। भौतिक वस्तुएं प्राप्त करके जीवन के बाह्य स्वरूप को बढावा देकर आन्तरिक स्वरूप को छोड देना निरर्थक है। धन कमाना, उपभोग करना, आदि बातों पर विशेष ध्यान आवश्यक है। भागवत् पुराण में सम्यक रीति से धनोपयोग का समर्थन किया गया है - "धन का एक अंश धर्म केलिए, दूसरा अंश यज्ञ केलिए, तीसरा भाग धनाभिवृद्धि केलिए, चौथा भाग भोग केलिए और पाँचवाँ हिस्सा अपने स्वजनों केलिए खर्च किया जाना चाहिए।"[52] उचित ढंग से धन कमाना और उचित ढंग से खर्च करना यह केवल न्याय संगत है। लेकिन अक्सर ऐसा देखा जाता है कि अन्याय के मार्ग से धन कमाने केलिए कुछ लोग भागदौड करते हैं। ऐसे धनार्जन के बारे में बैबिल में यह चेतावनी मिलती है - "जो धन झूठ के द्वारा प्राप्त हो, वह वायु से उड जानेवाला कुहरा है।"[53] न्याय के मार्ग से अर्थ की प्राप्ति उचित ही है, क्योंकि - "अन्याय के बडे लाभ से न्याय से थोडा ही प्राप्त करना उत्तम है।"[54] अगर कोई अधर्म के मार्ग से कमाना चाहता तो उसकी परिणति को भी समझना अनिवार्य है। इस विषय पर बैबिल में साफ साफ बताया गया है - "जो अन्याय से धन बटोरता है वह उस तीतर के समान होता है जो दूसरी चिडिया के दिये हुए अंडों को सेती है, उसकी आधी आयु में ही वह उस धन को छोड जाता है, और अन्त में वह मूढ ही ठहरता है।"[55]

---

52. भागवत् पुराण - 8,19,37

53. "A fortune made by a lying tongue is a fleeting vapor and a deadly snare."
The Holy Bible New International Version (Proverbs 21:6) p.741, Year 1978.

54. "Better is a little with righteousness than great revenues with injustice."
The Holy Bible Standard - Edition, p.712, year 1901

55. "As the partridge which gathers a brood that she did not hatch and sits on eggs which she has not laid, so , is he who gets riches and not by right. He will leavethem, or they will leave him, in the midst of his days, and at his end he will be a fool."
The Amplified old Testament - Jeremiah 17:11,p.699
Year 1962

आज का युग अर्थ प्रधान है । जीवन सुचारू रूप से चलाने केलिए रुपए की आवश्यकता तो है । लेकिन जीवन का उद्देश्य मात्र धन कमाना नहीं है । ऐसा होने पर मनुष्य धन का गुलाम बन जाएगा । अर्थ के नियंत्रक के रूप में मनुष्य के रहने पर उससे अनर्थ नहीं होगा, जबकि अर्थ के, मालिक बन जाने पर मनुष्य उसका दास बन जाएगा । अर्थ का दुरूपयोग ही आज की अशिक्षा, बेकारी, गरीबी आदि का मूल कारण है । संपत्ति किसी किसी जगह में ढेर पडी रहती है । उसका सम्यक वितरण अनिवार्य है । इस विषय पर गाँधीजी का विचार इस प्रकार है - "यह प्रकृति का एक निरपवाद बुनियादी नियम है कि वह रोज़ केवल उतना ही पैदा करती है, जितना हमें चाहिए । और यदि हरएक आदमी जितना उसे चाहिए, उतना ही ले, ज्यादा न ले, तो दुनिया में गरीबी न रहे और कोई आदमी भूखा न मरे ।"[56]

काम

पुरुषार्थों में काम का स्थान तीसरा है । सुखानुभव की चाह मनुष्य की एक आदत है । काम का संबंध सुखानुभूति से है । धर्म पर आधारित काम की पूर्ति या सुखानुभूति, भारतीय चिन्तन-धारा की दृष्टि से जीवन-मूल्यों के अन्तर्गत रखी गई है । मोक्ष प्राप्ति ऐहिक जीवन के बाद मिलनेवाला आनन्द है तो काम प्राप्ति ऐहिक जीवन काल में मिलनेवाला एक जीवन-मूल्य है । काम और मोक्ष दोनों का लक्ष्य आनन्द ही है । काम से जनित आनन्द इन्द्रिय जन्य क्षणिक सुख है । काम का लक्षण आचार्य वात्स्यायन ने व्यक्त किया है - "कान, त्वचा, आँख, जिह्वा, नाक इन पाँच इन्द्रियों की इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध अपने इन विषयों में प्रवृत्ति ही काम है

---

56. साबरमती का संत यशपाल जैन, पृ.101, वर्ष 1969

अथवा इन इन्द्रियों की प्रवृत्ति से आत्मा जो आनन्द अनुभव करता है, उसे "काम" कहते हैं।"[57] मनुष्य के अन्दर ही स्थित उसके छः दुश्मन हैं - काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य । इनमें प्रथम स्थान काम को है । इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि - "इन्द्रिय विषयों की तृष्णा जब धर्म की सीमाओं का उल्लंघन करेगा, तब वह दुर्गुण और पाप बन जाएगा।"[58] यह हालत याने कामान्धता या विषयान्धता व्यक्ति की प्रगति में बाधक है ।

काम शब्द का अर्थ है "कामना" या "इच्छा"।[59] याने "कामना का साक्षात्कार है काम"।[60] कामना, इच्छा या आग्रह से प्रेरित मनुष्य, सद्कर्म की ओर अग्रसर होता है । बिना काम या आग्रह से कोई भी, धर्म, अर्थ और मोक्ष केलिए कोशिश नहीं करेगा । याने काम एक ऐसा गुण है जिस से प्रेरित व्यक्ति ही परिश्रमशील रहता है । दुनिया की प्रगति के पीछे काम-भावना का अपना हाथ है भी । सृष्टि का रहस्य भी काम-भाव से प्रेरित है और पति-पत्नी का दाम्पत्य जीवन भी इसी काम-भावना से प्रेरित हुआ है । भारतीय चिन्तन में दाम्पत्य जीवन को विशेष बल दिया गया है एवं जीवन के चार आश्रमों - ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास[61] - में गृहस्थाश्रम का महत्वपूर्ण स्थान है । दाम्पत्यजीवन में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का स्थान अद्वितीय है ।

---

57. "श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यत: प्रवृत्ति: काम: ।।"
    - हिन्दी काम सूत्र श्रीदेवदत्तशास्त्री, पृ.42
58. विश्वविज्ञानकोश (मलयालम) भाग 8, पृ.400
59. हिन्दी मलयालम कोश अभय देव, पृ.273, प्र.सं.1969
60. विश्वविज्ञान कोश (म) भाग 4, पृ.22
61. वही, भाग 2, पृ.68

इससे व्यक्ति और समाज की प्रगति अवश्य होती है । इस विषय में प्रसिद्ध मनोरोग चिकित्सक एवं विचारक "डॉ॰ रिचार्ड वन क्राफ्ट एबिंग" का विचार यों है - "मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में प्रेरक शक्ति के रूप में यौन-जीवन का अपना महत्वपूर्ण स्थान है जो उसकी प्रवर्तन क्षमता बढ़ाकर धन कमाने, भवन बनाने, उन्नत पदों पर पहुँचने की प्रेरणा देता है । यौन-विचार ही सभी नैतिक धारणाओं का मूल है और सौन्दर्य बोध, धर्म आदि भी इसी की प्रेरणा से है[62]।"

विश्व मानव की समस्त वासनायें वित्तैषणा, दारैषणा और लोकैषणा इन तीन भागों में विभक्त हैं । सूक्ष्म अध्ययन से यह सत्य साबित होता है कि दारैषणा में ही समस्त वासनाएं अन्तर्भूत हो जाती है । इस विषय का विश्लेषण "हिन्दी काम सूत्र" में इस प्रकार मिलता है "स्त्री की कामना का ही सार आकर्षण है । और आकर्षण स्त्री-पुरुष के मिलन-संयोग में परिणत हो जाया करता है । धन, स्त्री या यश की कामना केवल आनन्द केलिए की जाती है । आनन्द ही सभी वासनाओं का मूल कारण है । यही मूल प्रेरक शक्ति है[63]।" आनन्द की प्राप्ति केलिए समाज विरुद्ध तरीका अपनाने पर काम का महत्व नष्ट हो जाता है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जीवन में "काम" का महत्वपूर्ण स्थान है । लेकिन डॉ॰ रिचार्डवन के विचार को सदा याद रखना चाहिए -

---

62. "Sexual life no doubt is the one mighty factor in the individual and social relations of man which discloses his power of activity, of acquiring property, or establishing a home, of awakening altruistic sentiments toward a person of the opposite sex, and toward his own issue as well as toward the whole human race. Sexual feeling is really the root of all ethics, and no doubt of aestheticism and religion." Psychopathia Sexualis : Dr.Richard Von Krafftebing, p.29-30, Edn.1965, Printed in U.S.A.

63. हिन्दी कामसूत्र : श्री देवदत्त शास्त्री, पृ॰ 26.

"मनुष्य केवल कामेच्छा को तृप्त करने केलिए परिश्रम करता है तो वह स्वयं, अपने को जानवर के समान बनाता है । लेकिन, नैतिक विचार, महत्वाकांक्षा, सुन्दरता आदि को ध्यान में रखकर अपने यौन-विकार को लगाम लगाने पर एक उन्नत स्थान तक पहुँच सकता है ।[64]"

मोक्ष

चौथे पुरुषार्थ मोक्ष की गणना अन्य तीनों पुरुषार्थों से श्रेष्ठ की कोटि में है । हिन्दू धर्म के अनुसार - "परमात्मा के साथ एकाकार हो जाने का नाम ही मोक्ष है ।[65]" मृत्यु के बाद प्राप्त व्यक्तिगत अनुभूति के रूप में मोक्ष माना जाता है । भौतिक जीवन से पदोन्नति के रूप में मृत्यु से प्राप्त मोक्ष की गणना है । इस मोक्ष की चिन्ता ने ही मानव जीवन को नश्वर से अनश्वर किया है । कुछ वर्ष संसार में नाना प्रकार की कष्टताओं एवं सुखों को भोग कर जीवनान्त में मिट्ठी में मिलना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है तो ऐसा जीवन निराशामय ही रहेगा ।

मानव जीवन शरीर, मन एवं आत्मा का मिश्रित रूप है । भोजन करने से, अभ्यास करने से शरीर मोटा बनता है । शिक्षा पाने से, दूसरों के संपर्क से, मन विकसित होता है । परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में जो आत्मा हम में वास करता है वह हमारे प्रत्येक व्यवहार में हामी भरता हुआ या नाहीं करता हुआ हमारी चेतावनी करता रहता है ।

---

64. "Man puts himself atonce on a level with beast if he seeks to gratify lust alone, but he elevates his superior position when by curbing the animal desire he combines with the sexual functions ideas of morality, of the sublime and the beautiful."

Psychopathie Sexualis : Dr.Richard Von Krafftebing p.29

65. अलबरूनी का भारत रजनीकान्तशर्मा (अनुवादक), पृ.73 प्र.सं.1967

भले-बुरे का विश्लेषण करके सुचारु मार्ग से हमें चलाने की मदद करना उस आत्मा का काम है। शरीर और मन को पवित्र करता हुआ हमारी नियंत्रक आत्मा वास्तव में हमारा दीपक है। मृत्यु के द्वारा जब हम इस संसार से हटाये जाते हैं तब आत्मा की क्या हालत है इस पर कई धर्मों में कई कई मत हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार आत्मा परमात्मा से साक्षात् करता है।

मोक्ष सम्बन्धी विविध विचार

भारतीय संस्कृति में जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति माना गया है। मोक्ष शब्द के ये अर्थ मिलते हैं कि - "कारावास से मुक्ति, जन्म-मरणादि दुःखों से छुटकारा, मुक्ति, दुःख मोचन से आत्मा को प्राप्त आनन्द, मृत्यु आदि।[66] ईशादि नौ उपनिषद् के अनुसार अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वकल्याण गुण स्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है। यों समझ कर निरन्तर उन का स्मरण करते हुए इस जगत् में केवल कर्तव्य पालन केलिए ही विषयों का यथाविधि उपभोग करो। विषयों में मन को न फँसने दो, इसी में तुम्हारा निश्चित कल्याण है। ये सब परमेश्वर के हैं, उन्हीं की प्रसन्नता केलिए इन का उपयोग होना चाहिए।[67] याने ब्रह्ममय जीव को सदा परमेश्वर के हितानुसार जीना चाहिए। इस विचार की पुष्टि करते हुए "श्वेताश्वतरोपनिषद्" में ऐसा परामर्श

---

66. हिन्दी मलयालम कोश अभयदेव, पृ.1120

67. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेनत्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ । ॥
- ईशादि नौ उपनिषद् व्याख्याकार - हरिकृष्ण गोयन्दका, पृ.26

मिलता है - "जीव केलिए आश्रय और सब का शासक सर्वशक्तिमान परमात्मा की शरण मनुष्य को ग्रहण करनी चाहिए । यही मनुष्य शरीर का अच्छा उपयोग है ।"[68] ऊपर के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संसार के जीव-चक्र में रहते मनुष्य को आदर्श-जीवन बिताने पर मोक्ष मिलता है । मोक्ष के बारे में ऐसी धारणा प्रचलित है कि वह नग्न नयनों से भौतिक वास के समय दर्शनीय कोई मूल्य नहीं है । मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य आदि नामों से मुक्ति की कल्पना कई धर्मों में हुई है ।

ईसाई धर्म में मोक्ष केलिए "रक्षा" या Salvation शब्द का प्रयोग हुआ है । "पुराने नियम" के अनुसार मोक्ष या रक्षा पाप से छुटकारा है ।"[69] "रक्षा" में रक्षा देने केलिए एक शक्ति या रक्षक अथवा उद्धारक की ज़रूरत है । इस "रक्षा" का अनुभव मनुष्य अपने इहलोक जीवन काल में शुरू कर सकता है । याने रक्षा एक चलती प्रक्रिया है । रक्षक की ज़रूरत तब महसूस होती है जब मनुष्य को यह मालूम पडे कि उससे रक्षा या बचाव असंभव है । अपनी बुद्धि-शक्ति, ज्ञान, संपत्ति आदि से भी परे और एक महान शक्ति से जब मनुष्य साक्षात्कार करता है तब उस सर्वशक्तिमान ईश्वर पर विश्वास करना या आश्रय रखना वह शुरू करता है । ईश्वर की शक्ति में सहारा चाहता हुआ सर्व अनुताप के साथ जो ईश्वर को पुकारता है उसे रक्षा का अनुभव होने लगता है । तब से वह परम शक्तिमान परमेश्वर का घनिष्ठ सम्बन्धी या पुत्र कहला सकता है । याने पश्चात्ताप और आश्रयबोध के द्वारा पिता-पुत्र का सम्बन्ध आरंभ होता है । इस प्रकार ईश्वरीय ज्ञान और शक्ति से वह चालित

---

68. "सर्वेन्द्रि य गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ।। 17 ।।
- ईशादिनौ उपनिषद्, पृ.386

69. "Salvation in the sense of the New Testament is Salvation from sin."
The Christian Doctrine of Salvation : Sigfrid Estborn, p.22, (C.L.S. Madras,Year 1958)

होने लगता है । जैसे पुत्र की ज़रूरतें पिता निभाते हैं वैसे रक्षक परमेश्वर भक्त मनुष्य को पालते हैं । जो कोई, इस प्रकार, रक्षा महसूस करता है, उसके जीवन में परिपूर्ण परिवर्तन दीखेगा । वह दूसरों का सहायक निकलेगा, झूठ, छल, कपट, आदि केलिए उसमें फिर स्थान नहीं रहेगा । मुसीबतें सहने पर भी सत्य पर वह स्थिर रहेगा । आप भूखा रहने पर भी दूसरों को खिलाने में भरसक कोशिश करेगा । वह प्रपंच पर परमेश्वर का प्रतिनिधि रहेगा । उसकी मृत्यु केलिए, परमेश्वर के द्वारा निश्चित समय में वह इस संसार से स्वर्गवास केलिए बुलाया जाता है जिसे वह आनन्द के साथ स्वीकार करता है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों के समन्वय में ही जीवन की सार्थकता और सफलता निर्भर है ।

मूल्य एवं नैतिक मूल्य में अन्तर

अब तो स्पष्ट हो गया कि नैतिक मूल्य मनुष्य जीवन के उच्च आदर्शों से सम्बन्धित है, जिन्हें आँकने केलिए व्यक्ति के जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालना पड़ता है । चीज़ों का दाम या मूल्य चीज़ों को नाप तोल कर निश्चित करता है तो नैतिक मूल्य व्यक्ति, व्यक्ति के सम्पर्क या उनके बर्तावों के आधार पर माप सकते हैं । याने मानव-जीवन से सम्बन्धित है नैतिक मूल्य जिस ने पशु और मानव के बीच एक विभाजक रेखा खींची है । कभी कभी मनुष्य के हृदय में परस्पर विरोधी इच्छाएं व चिन्ताएं उदित होती हैं, विरोधी प्रवृत्तियों के शिकार होकर वह विभिन्न दिशाओं में चलने को विवश हो जाता है । समय-समय पर मन में उठनेवाली इच्छाओं की पूर्ति करने के पीछे यदि वह दौड़ता है तो

ज़रूर ही वह समाज-विरोधी बन जाएगा । नैतिक मूल्य मनुष्य को समाज-विरोधी बनने से एक हद तक रोकते हैं । याने पाशविक वृत्तियों पर नियंत्रण करके समाज के अन्य सदस्यों के साथ मेल जोल के साथ रहने में मदद करनेवाले तत्वों के रूप में नैतिक मूल्य हमारे मार्गदर्शक हो जाते हैं । मूल्यों को पहचान कर जब विचारशील मानव ने अपनी शारीरिक आवश्यकताओं पर मानसिक वृत्तियों को तरजीह दी तब वह मानव बना । जब कभी मानव को इन मानसिक वृत्तियों को अपने काबू में रखना पडा या इन वृत्तियों को ऊर्ध्वगामी करना पडा तो उसने नैतिक मूल्यों का सहारा लिया । स्थूल शारीरिक आवश्यकताओं की जंजीरों को तोड कर सूक्ष्म मानसिक जगत में पहुँचने केलिए इन नैतिक मूल्यों की सख्त ज़रूरत है ।

नश्वर जीवन से अनश्वरता की ओर संकेत

मानसिक वृत्तियों को काबू में करने के प्रयत्न में मानव सभ्य बनता रहा । सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण के साथ जीवन को एक सुगठित ढाँचा देने के प्रयत्न में मनुष्य रहा तो उसने अनुभव किया कि जीवन चन्द क्षणों का है । जीवन की इसी नश्वरता की ओर कई विचारकों ने संकेत किया है । विलियम शेक्सपियर ने अपने प्रसिद्ध नाटकों के प्रमुख चरित्रों से जीवन की परिभाषा दिलाने का परिश्रम किया था । "जोणफलस्टाफ" के विचार में - "लघु दूर चलती एक गाडी है जीवन[70] ।" "किंग हेन्ट्री फोर्थ" के "मेसन्चर" जीवन की परिभाषा यों देता है -"जीवन का समय बहुत छोटा है । लघु समय बिताने की जगह लम्बी होने पर भी, घडी केन्द्र से यात्रा करते हुए वह एक घंटे के अन्दर लौट

---

70. "Life is a shuttle"
    Merry Wives of Windsor   Shakespeare, Act.5, Scene I, p.62

आता है।[71]" एक चीनी विचारक "कुआनशियस" के विचार में - "एक अनन्त जंजीर को आपस में मिलाती दो कड़ियाँ हैं जीवन और मृत्यु जो अनिवार्य है जिस का आगमन या बिछुड़न हम रोक नहीं सकते।[72]" जीवन की अनिश्चितता के बारे में बैबिल में बताते हैं - "पृथ्वी पर हमारे दिन छाया की नाईं बीतते जाते हैं।[73]" कभी कभी प्रलय करती हुई बहती नदी के समान है जीवन।[74]" जीवन तो एक नाटक-सा है। इस विषय पर ब्रिटानिका विश्वविज्ञान कोश में यों टिप्पणी देता है "जीवन भरे हुए मंच पर प्रदर्शित नाटक के समान है।[75]" जीवन में लघुता या नैमित्तिकता-बोध के उदित होने के कारण कुछ मनुष्य जीवन से मुँह मोड़ रहे हैं। यह एक सत्य है कि मनुष्य इस संसार में जन्मता है, पलता है, काम करता है, साथ ही साथ मृत्यु की छाया उसके ऊपर सदा मंडराती रहती है। उस का जीवन यहाँ अनिश्चित है। जन्म और मृत्यु के बीच का फासला अनजान है। इस फासले की परिधि आँकने में विवश मानव कभी निराश होता है, कभी संयमहीन होता है, कभी

---

71. "The time of life is very short. To spend that shortness basely were too long; if life did ride upon a dials point still ending at the arrival of an hour".
First part of King Henry IV : Shakespeare, Act 5, Scene 2, The Complete works of Shakespeare,p.409

72. "Life and death are but links in an endless chain. Life is inevitable, for it comes and cannot be declined. It goes and cannot be stopped."
Encyclopedia of Religion and Ethics : Vol.8, p.15 Edn.1971

73. "Our days upon earth are a shadow".
Holy Bible : Job 8:9, p.659

74. "Life is like a river that is often in flood."
Encyclopaedia Britanica,14th Edition,Vol.14/ p.42

75. "Life which must be envisaged as a drama on a crowed stage."
Encyclopaedia Britanica,14th Edition,Vol.14,p.42

लक्ष्यहीन होकर मनमाना करने को बाध्य हो जाता है। ऐसे मनमानेपन से अपना दोष और समाज का नाश होता है। ऐसी लक्ष्यहीनता, नश्वरबोध व असुरक्षा के मध्य में मनुष्य को अनश्वर बनाने में सहायक गुण छिपे रहते हैं। उन्हें पहचानने की शक्ति मनुष्य को "मूल्य बोध" से मिलती है। जिस मनुष्य में मूल्यों का विचार है उसे हम सुसंस्कृत, सभ्य या परिष्कृत पुकार सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों का आन्तरिक पक्ष या आत्मा सुदृढ होता है जिस से उनके बर्ताव समाज कल्याणकारी निकलते हैं।

नैतिक मूल्यों की महत्ता

समाज में मूल्यों की मौजूदगी ही मूल्यों की महत्ता का सूचक है। किसी आदत या आचरण को सदियों के बाद भी आचरित होता आ रहा है तो उसे श्रेष्ठ गुण मानना पड़ता है। समाज-कल्याणकारी भलाइयों या गुणों का भविष्य में भी आचरण होता रहेगा। "मूल्यों के विद्यमान होने का मतलब यह है कि वे समाज के अनुभूत नियमों की अभिव्यक्ति के रूप में मनुष्य के मन और हरकत पर फलदायक और शक्तिशाली प्रभाव डाल देते हैं।"[76] मूल्य मात्र किसी व्यक्ति या गुट से जुडा हुआ ही नहीं, इस से भी परे एक समाज या समूची मानवता की भलाई से जुडा हुआ है। इस विषय पर "ब्रिटानिका एनसैक्लोपीडिया" ऐसा बताता है - "मूल्य केवल काल्पनिक अनिवार्य नहीं है, अवसर

---

76. "Values exist in the sense that they are operative and effective in and on human minds and in human action, and find embodiment in the objective institutions of society."
Encyclopaedia Britanica, Vol.22, p.962

वास्तविकता के साथ अकारण, अतिरिक्त जोडा हुआ है, लेकिन वे यथार्थ में स्वाभाविक ढाँचे ही हैं।[77]"

नैतिकता का सम्बन्ध समाज से है। व्यक्ति की भलाई से बढ़कर समूह के श्रेय का स्थान महत्व पूर्ण है। एक स्थिर समूह केलिए कुछ जानेमाने नियम उपलब्ध होते हैं। वे नियम व्यक्तियों के आपसी बर्ताव, उनकी संपत्ति की सुरक्षा, और स्त्री-पुरुषों के आपसी सम्बन्ध आदि सभी क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए बनाये गये हैं। समाज की लघु इकाई परिवार के माँ-बाप, बेटे-बेटियाँ सबों में एकता, परस्पर सहायता, और आपसी विश्वास आदि इन नैतिक नियमों में हैं। याने नैतिक मूल्यों की महत्ता यह है "व्यक्ति की अपेक्षा समष्टि पर बल देते हुए समाज की भलाई या कल्याण केलिए, और समाज की आंतरिक-सुरक्षा को बनाये रखने केलिए नैतिक-संहिताओं का निर्माण हुआ है।[78]" समाज की सुरक्षा की आड में व्यक्ति का जीवन भी सुरक्षित रह सकता है। इस केलिए व्यक्ति को मूल्यों की शरण लेनी चाहिए। समाज के अनेक सदस्य दूसरों के हितार्थ समाज-सेवा केलिए जब तैयार हो जाते हैं तब कई व्यक्ति सुधरते हैं और आपस में अंगीकार करने को बाध्य हो जाते हैं। इस प्रकार "अपने आप को शुद्ध करने केलिए नैतिक-मूल्य काम में आते हैं।[79]" याने नैतिक मूल्यों के आचरण से व्यक्ति का परिष्कार संभव है।

---

77. "Values are not mere subjective incidents, more or less gratuitously super added to fact, but are inherent in the structure of reality." Encyclopaedia Britanica, Vol.22, p.962

78. "All known codes insist on some measure of internal peace and order and tend to sanction whatever helps to satisfy social needs and to ensure the group's survival, while censuring whatever disturbs the social peace." Encyclopaedia Britanica,Vol.8, p.756

79. "As we extend our moral rules to wider groups, so we refine our notion of the human person." Encyclopaedia Britanica, Vol.8,p.756

मूल्य सम्बन्धी विविध विचार

जेम्स हिल्टन ने मूल्य सम्बन्धी अपने विचार यों व्यक्त किया है "मात्र लेन-देन की प्रक्रिया जीवन को सार्थक नहीं बनाती, इन सब से परे जीवन को धन्यता प्रदान करनेवाले और कुछ है "मूल्य" ।[80]

"बेसिल द ग्रेट" ने अपना मूल्य सम्बन्धी विचार यों व्यक्त किया - "भलाई की हमेशा जीत होती है । जो नम्रता के बीज बोता है, वह मित्रता काटता है, जो दया का पौधा रोपता है सो वह प्यार का फल चखता है, तुष्ट मन पर खुशी की जो वर्षा होती है वह कभी भी असर नहीं बन जाता ।"[81]

गान्धीजी ने "सत्य को नैतिकता का मूल" कहा है ।"[82] अधार्मिकता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा - "नैतिक आधार के नष्ट होते ही हम अधार्मिक बन जाते हैं । नैतिकता का उल्लंघन करने वाला धर्म, धर्म कहलाने योग्य नहीं है । नैतिक व्यक्ति कभी भी क्रूर, असत्यवादी और अपवित्र नहीं बन सकता है ।"[83]

---

80. Surely there comes a time when counting the cost and paying the price aren't things to think about any more. All that matters is value - the ultimate value of what one does."
The International Dictionary of thoughts, p.748,year'69

81. "A good deed is never lost. He who sows curtesy; reaps frindship, he who plants kindness, gathers love; pleasure bestowed upon a grateful mind was never sterile, but generally gratitude begets reward."
Ibid, p.331

82. "Morality is the basis of things and truth is the substance of all morality".
Ibid, p.498

83. "As soon as we lose the moral basis, we cease to be religious. There is no such thing as religion over-riding morality. Man, for instance, cannot be untruthful, cruel or in continent and claim to have God on his side."
Ibid, p.498

"द वेल्ड बुक एनसैक्लोपीडिया" में ऐसा परामर्श हुआ है "किसी वस्तु को खरीदने केलिए ग्राहक के पास मूल्य के रूप में देने केलिए रूपया या बदले की चीज़ नहीं है तो उस वस्तु को कोई मूल्य नहीं है।"[84]

नैतिक मूल्यों के बदलते परिप्रेक्ष्य

प्रत्येक समाज के अलग-अलग मूल्य होते हैं, जो देश, काल के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। आचार-विचार, खान-पान, पहनाव ओढाव जैसे मनुष्य के प्रत्येक कार्य में देश-काल के अनुसार अलग-अलग मान्यताएँ होती हैं। एक समूह की मान्यता अक्सर एक दूसरे समूह में हीनता समझी जाती है। उदाहरण केलिए विवाह के बारे में दुनिया-भर में कई प्रकार की मान्यताएँ रहती हैं। अपने परिवार के बाहर से सुयोग्य युवक युवतियों को पति-पत्नी के रूप में चुनने की प्रथा अक्सर रहती है। लेकिन अपने ही परिवार के, सगे-सम्बन्धियों के साथ शादी-सम्बन्ध कुछ समूहों में मान्य है। केरल के कुछ हिन्दू-उपजातियों में भाई और बहन के पुत्र-पुत्रियों की शादी चलती है। 'Cross-Cousin marriage' प्रथा मलयालम में "मुरप्पेण" की शादी मुरच्चेरुक्कन" के साथ नाम से मशहूर है। ऐसी शादी में, प्रत्येक पुरुष को उसकेलिए निश्चित "मुरप्पेण" के साथ ही शादी करनी है, इच्छा न होते हुए भी।[85] आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका, और दक्षिण आफ्रिका के कुछ भाग के लोगों में ऐसी अजीब प्रथा चलती है। इस से एक कदम आगे है हावाय, पेरू व मिश्र देश की हालत जहाँ भाई की शादी बहन के साथ चलती है। ऐसी शादी के उद्देश्य कुछ निराले-से लगते हैं। अपने वंश की पवित्रता

---

84. No article will have any value if those who want it have no money or commodities to offer in exchange for it."
The World Book Encyclopedia Vol.19, p.212, Year 1970

85. "One curious restriction on marriage is 'Cross-Cousin' marriage, meaning that a man marries the daughter of his mother's brother or of his father's sister.".
Customs and cultures Eugene A. Nida, p.101

बनाये रखने केलिए और धन-संपत्ति अपने कुटुम्ब के बाहर न जाने केलिए ऐसी शादी-प्रथा कायम रखती है। पुराने यहूदियों के बीच में ऐसी एक प्रथा चलती थी "एक निसन्तान पुरुष की मृत्यु हो जाने पर, उसके छोटे भाई को बडे भाई की विधवा से शादी कर के पुत्रोत्पादन करना चाहिए।[86] "मनुस्मृति" में इस से मिलता-जुलता उपदेश मिलता है "बडा भाई छोटे भाई की पत्नी को अथवा छोटा भाई बडे भाई की पत्नी को निसन्तान की विपत्ति से बचाना उचित है।"[87] "कालिफोर्निया" में भी इस से मिलता एक नियम कायम है। वहाँ "किसी पुरुष की पहली पत्नी की मृत्यु हो जाने पर, अथवा उसमें बच्चा पैदा करने की क्षमता न रहने पर पत्नी के घरवालों को उस पुरुष केलिए और एक बहन देना चाहिए।"[88]

सैबीरिया की कोरयाक (Koryak of Siberia) समूह की शादी-प्रथा और भी विचित्र है। वहाँ एक युवक शादी करना चाहता है तो उसे कठिन परिश्रमी रहना चाहिए। युवति के पिता के सामने कठिन यातनाएँ सहकर अपनी परिश्रम-शीलता का प्रमाण प्रस्तुत करना पड़ता है। "ब्रिटीश गुवाना" में अराकों (Arawak of British Guiana) के बीच के युवकों की हालत और भी कठिन एवं रसप्रद है। वहाँ "शादी करना चाहनेवाले युवक को एक खेत साफ करके, एक घर बनवाकर और शराघात में अपनी दक्षता दिखाना अनिवार्य है।[89]

86· व्यवस्था विवरण (धर्मशास्त्र) अध्याय 25, वाक्य 5, पृ·287

87· "ज्येष्ठो यवीयसो भार्यायवीया नवाग्रज स्त्रीयं।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्य नापदि ।।"
- मनुस्मृति अध्याय 9, पृ·401

88. "The Shasta Indians of California carried out a sororate practice, in that if the first wife died or proved unsatisfactory because of sterility, the wife's family must provide a sister".
Customs and Cultures   Eugene A.Nida,p.102

89. "Among the Arawak of British Guana a man must prove his worth by clearing a field,builing a house, and showing his skill with the bow and arrow."
Ibid, p.103

एक पुरुष की, अनेक स्त्रियों के साथ शादी करने की प्रथा दुनिया के कई भागों में कई समयों तक प्रचलित थी और आज भी कहीं कहीं है । लेकिन एक स्त्री की अनेक पुरुषों की पत्नी रहने की प्रथा विरले ही मिलती है । तिब्बत में रहनेवाले "एस्किमो" लोगों में बहु-पति-प्रथा है । कडी सर्दी में जन्म लेते ही अक्सर अशक्त बच्चियाँ मर जाती है । इसलिए अनेक पुरुषों केलिए एक ही स्त्री रहने की प्रथा चलती है । उसी प्रकार दक्षिण भारत में, तमिलनाट् के नीलगिरि पहाडों पर रहनेवाले "तोडा" जनविभागों के बीच भी बहुपति-प्रथा चलती है । "तोडा" लोग गरीब होते हैं । जंगल से मिलते वनविभवों पर निर्भर करनेवाले वे खेती नहीं करते हैं । परिवार में एक बच्ची को वे जीने देते हैं । बडी गरीबी एवं दहेज-प्रथा के कारण दूसरी बच्ची का जन्म होते ही माँ-बाप उसके दूध मुँह में विषैली चीज़ें डालकर मारते हैं । कडी गरीबी के बीच, बडी रकम और आभूषण देने में असमर्थ परिवार नवजात बच्ची की हत्या करने को मजबूर हो जाते हैं । संख्या में तोडा-स्त्रियों की कमी और अनेक पुरुषों केलिए पत्नी रूप में एक स्त्री रहने का यही रहस्य है । इस प्रकार "अनेक पुरुषों के साथ रहने से जब स्त्री हामिला बन जाती है तो परिवार के पुरुषों में सब से बडे भाई के नाम पर बच्चे की जिम्मेदारी सौंपने की प्रवृत्ति को मान्यता दी गई है ।"[90]

स्त्रियों को यौन-स्वातंत्र्य देने की प्रथा कुछ देशों में है । "आफ्रिका के इला" लोग मृत लोगों के नाम पर जो त्योहार चलाते हैं तो शराब की मादकता में स्वतंत्र-यौन-संपर्क भी एक प्रथा के रूप में चलाते हैं । "एस्किमो के बीच, घर में अतिथियों के आने पर उन केलिए पत्नियों को सौंप देने की प्रथा उचित समझता है ।"[91] "पश्चिम आफ्रिका के

---

90. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग 7, पृ.206

91. "We assume that it is unnatural for a man to wish to loan his wife to guests, but Eskimo men have been doing just this for centuries and they do not seem to suffer from jealousy. They are expected to share there wives with certain men, and they in turn have the same privilege."
Customs and Cultures   Eugene A. Nida, p.35

मोस्सी" जनविभाग की स्त्रियाँ अनेक पुरुषों के साथ यौन-संपर्क करती है। लेकिन बेलजियन कोंगो के कुन्टों (Nkundo of the Belgian Congo) लोगों की स्त्रियों को ऐसा स्वातंत्र्य नहीं है। कुन्टो स्त्रियाँ पर-पुरुष संपर्क करने पर, ऐसी नारियों को एक महा-सभा के सदस्यों के सामने खड़ा कर के चींटियों से डसवाते हैं और कई प्रकार की पीडायें दिलवाते हैं एवं मन्त्र पढ कर शुद्ध करने केलिए स्नान कराते हैं।[92] यह ठीक है कि स्त्री-पुरुषों की शादी-प्रथा और आपसी आचरण दुनियाँ के कई भागों में कई प्रकार मे रहते हैं। ऊपर के विवाह सम्बन्धी एवं यौन सम्बन्धी आचरणों के बारे में सोचते समय "एनसैक्लोपीडिया ब्रिटानिका" का यह परामर्श ठीक मानना पड़ता है - "बर्बर समाज के नैतिक फैसले में और आधुनिक युग के नैतिक फैसले में आकाश-पाताल का अन्तर है।[93]"

चोरी, हत्या, व्यभिचार आदि अधिकांश समूहों में निषिद्ध हैं। इन्हें कठिन पाप के रूप में कुछ लोग मानते हैं। लेकिन पाप व पुण्य का विवेचन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर माना जाता है। सार्वलौकिक गलतियों के रूप में दो बातों को मानते हुए "इ.ए. निडा" ने लिखा है - "अब तक की जानकारी के अनुसार सार्वलौकिक दो गलतियाँ है - हत्या और व्यभिचार।[94]"

---

92. "The Mossi people of West Africa are relatively tolerant of wives having lovers, while the Nkundo of the Belgian Congo have traditionally imposed heavy sanctions against such women, including torture, public exposure, being bitten by ants, and magical washing and purification by red pepper mixed with water."
Customs and Cultures: Eugene A. Nida, p.107

93. "There are some speres of actions in which moral judgment in primitive societies is marked by different form that in modern society."
Encyclopaedia Britanica Vol.15, p.821

94. "So far as is known, there are only two Universally recognised wrongs - that is, actions which are disapproved in all societies. These are murder and incest.
Customs and Cultures Eugene A. Nida, p.108

शिशु वध का समर्थन करनेवाले समूह हैं और उसी प्रकार बूढों की हत्या करनेवाले लोग भी हैं । ऐसे लोग, समाज केलिए बोझ और निष्प्रयोजकों को मारना उचित समझते हैं । ऐसे है उनके विचार - "आबादी की वृद्धि को रोकने केलिए यदि पिता अपने दूध मुँह बच्चे की हत्या करता है तो उस समाज की दृष्टि में वह दोषी नहीं है ।[95]" हत्या के समान चोरी भी पाप माना जाता है । अपनी चीज़ों के सिवा दूसरों की चीज़ें लेना चोरी मानी जाती है । गरीब, जीने केलिए और रास्ता न देखकर अमीरों की खेती से नारियल, अनाज आदि चुराने को बाध्य हो जाते हैं । लेकिन कुछ ऐसे गरीब भी हैं जो भूख से मरने पर भी चोरी नहीं करते हैं । व्यभिचार भी एक प्रकार की चोरी है । इस विषय में कस्टम्स एन्ड कलचर्स" में ऐसा बताया गया है - "कई ऐसे अशिक्षितों का समूह हैं जहाँ व्यभिचार भी एक प्रकार की चोरी मानी जाती हैं, क्योंकि अपनी चीज़ के सिवा दूसरे को हड़पना चोरी ही है, इसलिए दोषी व्यक्ति के द्वारा उस स्त्री के पति को शुल्क देना चाहिए ।[96]" धर्मशास्त्र में परमेश्वर के द्वारा दिये गये दस नियमों में छठे के रूप में यह निर्धारित किया गया है "तू व्यभिचार न करना[97]"। परस्त्रीगमन को जानेवाले पुरुषों को चेतावनी देते हुए वात्स्यायन मुनि के उपदेश "हिन्दी काम सूत्र" के द्वारा यों दिया गया है "परस्त्री के साथ गमन करने की इच्छा करने से पहले यह सोचना चाहिए कि अभीष्ट स्त्री

---

95. "In some societies both literate and preliterate, infanticide has ben regarded as no more than a painful necessity, as morally right in order to mitigate pressure of population on subsistence. In such societies the decision whether a new born infant should be deprived of life is usually left to the father and society casts no blame upon him for his decision."
Encyclopaedia Britanica Vol.15, p.821

96. "In many non literate societies adultery is classified asa kind of stealing, or appropriating rights which are not one's own, and accordingly the guilty person must pay a fine to the husband."
Customs and Cultures : Eugene A. Nida, p.107

97. "You must not commit adultery."
The Book : Exodus 20 : 14, p.83

मिल सकेगी या नहीं, उसे प्राप्त करने में प्राणों का संकट तो नहीं उपस्थित होगा । उसे अपने वश में कर लेने के बाद मेरा प्रभाव कैसा रहेगा और मुझे लाभ क्या होगा ?[98] व्यभिचार से बचने का उपदेश देते हुए "मनुस्मृति" में कहा गया है "पति-पत्नी मृत्यु तक व्यभिचार दोष से बचना उचित ही है । यही है स्त्री-पुरुष धर्म ।[99]" व्यभिचार, परस्त्री गमन या परपुरुष गमन से कई प्रकार के रोग होने की चेतावनी आधुनिक खोजों ने दी है - "समाज के विभिन्न स्तर के लोगों में "एड्स-रोग" फैल जाने के कारणों पर वैद्यशास्त्र ने खोज की है । व्यभिचार के नाना रूपों से यह मारक रोग इतना फैल गया है कि जनसंख्या के कई जन इस के शिकार हो गये हैं ।[100]" व्यभिचार इतना दोषकर होते हुए भी हमारे पुराने सभी शहरों, जैसे आगरा, बम्बई, कलकत्ता में सरकार लाइसेन्स देकर वेश्यालय चलाते हैं । जीवन के विभिन्न स्तर के लोग अपने हितानुसार अनियंत्रित जीवन बिताने का तरीका समाज में आज सर्वत्र फैल गया है । व्यभिचार करती नारी की निन्दा करती हुई "मनुस्मृति" में ऐसा बताया गया है - परपुरुष के साथ लैंगिक कार्य

---

98. "तेषु साद्‌यत्वमनत्ययं गम्यत्वमायतिं वृत्तिं चादित एव परीक्षेत"।

- हिन्दी कामसूत्र, पृ.511.

99. अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः ।

एषधर्मः समासेनज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ।।

- मनुस्मृति, 9,101, पृ.410

100. "Researchers are still pondering why AIDS have spread so rapidly through so many sectors of the population. Their tentative conclusion is that the disease was abetted by three related phenomena; Prostitution, sex with many partners in crowded urban centers and a high proportion of the population in the sexually active age rage."
The End of Denial : Michael S. Serrill, TIME - The Weekly New Manazine, p.42

करती नारी दुनिया में घृणित और कई रोगों के शिकार बन जाएगी । अगले जन्म में वह सियार के रूप में जन्म लेगी भी ।"[101]

मूल्य देश-काल के अनुसार परिवर्तित होते हैं । पूंजीवाद, दास-प्रथा, स्त्री-पुरुष-भेद आदि भारत में एक ज़माने में माने गये थे । उन दिनों स्त्री-पुरुषों के प्रवर्तनों में विभाजक-रेखा खींची थी । इस विषय पर "मानव समाज" में श्री राहुल सांकृत्याय ने ऐसा प्रतिपादित किया है - "पुरुष लडाई करते हैं मछली और जानवर का शिकार करने जाते हैं, खाद्य-सामग्री और अपेक्षित हथियार प्रस्तुत करते हैं । स्त्रियाँ घर का कामकाज देखती है - खाना-कपडे का इन्तजाम रसोई, बुनाई, सिलाई का काम करती हैं । अपने-अपने कार्यक्षेत्र में स्त्री-पुरुष का पूरा आधिपत्य है - जंगल का स्वामी पुरुष है, घर के भीतर स्त्री का राज्य है ।"[102] उसी प्रकार शिक्षा-दीक्षा भी समाज के उन्नत कुलजों केलिए निश्चित थी । निम्न वर्गीय शिक्षा प्राप्त करने से रोके हुए थे । इस विषय पर "बी·कुप्पुस्वामी" का परामर्श यों है - "पुरोहित, राजा, सामन्त, धन-सम्पन्न-व्यापारी आदि तक शिक्षा प्रथा सीमित थी ।[103] उसी प्रकार भारत में स्त्रियों की हालत सदियों तक नरकपूर्ण थी । "पिता, पति व पुत्र के आश्रय में बचपन, यौवन एवं बुढापे में रहती वह कभी भी स्वातंत्र्य की चाह न रख सकती थी ।"[104] स्त्री की यातनाओं का परामर्श

101· "व्यभिचारात्तु भर्तृ:स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम
सृगाल योनिं चाप्नोति पाप रोगैश्च पीड्यते ।"
- मनुस्मृति (मलयालम) 9:30

102· "मानव-समाज राहुल सांकृत्यायन, पृ·2।

103. "In ancient India literacy was confined to the small group of priests, kings, nobles and prosperous merchants."
Social change in India B. Kuppuswamy, p.312

104· "पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।"
- मनुस्मृति (मलयालम) 9:3, पृ·39।

"सोश्यल चेंज इन इंडिया" में इस प्रकार मिलता है - "बाल विवाह, पुनर्विवाह की रोक, पर्दा-प्रथा, बहु-पत्नी प्रथा, सति-प्रथा आदियों के कारण बी·सी· 20 से सन् 1800 तक की भारतीय-नारियों की हालत दयनीय थी।"[105]

दुनिया के विभिन्न प्रदेश के लोगों में आचरित - शादी, यौन, चोरी, हत्या, व्यभिचार, खान-पान, शिक्षा-दीक्षा और नारी-शोषण सम्बन्धी उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दुनियां के कई भागों में एक एक प्रकार की मान्यता या हीनता एक ही आचरण केलिए उपलब्ध है। याने एक सामान्य, सर्वसम्मत मूल्य की घोषणा असंभव है। अत: कहना समीचीन होगा - "नैतिक मूल्यों की अवधारणा समाज-सापेक्ष है।"[106] अब यह स्पष्ट हो गया है कि मूल्य काल-सापेक्ष और समाज-सापेक्ष है। मूल्यों के मापदण्ड में देश और काल के अनुसार विभिन्नताएँ होते हुए भी एक रूपता अवश्य है। मूल्यों में चाहे विभिन्नता हो, या एक रूपता "मूल्य" का तिरस्कार कोई नहीं कर सकता है। इस सम्बन्ध में, उदाहरण के तौर पर "एनसैक्लोपीडिया ब्रिटानिका" में ऐसा प्रतिपादन मिलता है "मानव-जीवन में मूल्यों की महत्ता का निराकरण कोई भी नहीं कर सकता।"[107]

---

105. "For nearly 2000 years from 20 B.C. to A.D.1800 the position of woman steadily deteriorated though she was fondled by the parents, loved by the husband and revered by her children. The revival of sati, the prohibition of remarriage, the spread of purdah and the greater prevalence of polygamy made her position very bad."
Social change in India B. Kuppuswamy, p.262

106. "Moral concepts and rules are closely related to the structure of society and morality is therefore relative - in the sense that, as the ends of each society vary. So do the standards of right and wrong."
Encyclopaedia Britanica, Vol.15,p.821

107. "It is generally agreed that values cannot be denied existence or reality in any world that can exist for man. They must, it would seem exist in several senses."
Encyclopaedia Britanica, Vol.22, p.963

मूल्य-दृष्टि के विभिन्न स्तर

संसार भर के लोगों केलिए एक ही ढंग का जीवन बिताना और जीवन के प्रति समान अवधारणा रखना नामुमकिन है । परिस्थिति के अनुसार मनुष्य के आचार विचार में, अवधारणाओं में भिन्नता अनिवार्य है । मानव-मूल्यों की धारणाओं में भी असमानताएँ दृष्टव्य हैं । उनकी मूल्य-दृष्टि के विविध स्तरों पर अब हम प्रकाश डालेंगे ।

भौतिकवादी मूल्य दृष्टि

"भौतिकवाद एक दार्शनिक सिद्धान्त है, जिस के अनुसार मनुष्य की सभी आवश्यकतायें भौतिक हैं ।"[108] भौतिकवाद के विचारकों के रूप में ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के एपिकुरस, स्टोइक आदि से लेकर आधुनिक काल के कई विचारक तक उपलब्ध हैं । "प्राचीन भौतिकवाद के अनुसार संसार अविच्छेद्य रूप से परस्पर गूँथी हुई दो चरम सत्ताओं का परिणाम है, जिन्हें "भूत" (matter) और "शक्ति" (Energy) कहा गया है । किन्तु समसामयिक विज्ञान ने अन्तिम रूप से सिद्ध कर दिया है कि भूत शक्ति से तत्वत: भिन्न नहीं है, वह शक्ति का घनीभूत रूप मात्र है । अत: अब शक्ति ही सृष्टि का मौलिक उपादान सिद्ध होती है

---

108. Materialism, a philosophical theory that all things are material, that matter is the fundamental explanations of all existence."
New Master Pictorial Encyclopedia, Vol.VI, p.921

और यह शक्ति भी अन्तिम विश्लेषण में, नितान्त आकाशीय, अग्राह्य, असंवेद्य और गणितीय होकर रह गई है । अतः आधुनिक चिन्तकों की दृष्टि में "भौतिकवाद" शब्द पुराना पड चुका है ।"[109] भौतिकवाद के बारे में "द यूनिवर्सल स्टान्डेर्ड एनसैक्लोपीडिया" ने विशद अध्ययन किया है जिस पर विचारना समीचीन होगा । उसमें इस प्रकार प्रतिपादित है

"भौतिकवाद में पदार्थ की विद्यमानता या गुणबोध निश्चित करता है । पदार्थ या वस्तु यथार्थ है और चेतना के प्रत्यक्ष-ज्ञान-विषय द्वारा नाडीमण्डल में जो प्राकृतिक और रासायनिक परिवर्तन होते हैं उन्हें वह व्यक्त करता है । इस प्रकार भौतिकवाद मायावाद या कल्पनावाद, जो मन की सर्वोपरिता है, का प्रतिकूल है एवं पदार्थ को मनका विषयाश्रित-करण माना है ।"[110]

भौतिकवाद में पदार्थ प्रथम और प्रधान है । मन या चेतनता उस पदार्थ से निकलता है । याने मनुष्य का मन इच्छाशक्ति, मानव इतिहास की गति ये सब भौतिक प्रतिक्रियाओं के अनुसार चलता है । यहाँ यह समस्या उठती है कि भौतिक पदार्थों से विचार और विकार उठते है अथवा विचार से भौतिक वस्तुओं की सृष्टि होती है ? सदियों से भौतिक विचारक और आध्यात्मिक विचारकों के बीच में इस विषय पर चर्चाएं चल रही हैं । हेगल ने ऐसा बताया "प्रपंच की प्रगति की नींव चिन्ताएं हैं ।" मार्क्सियन चिन्तकों के अनुसार भौतिक वस्तुओं के

---

109. हिन्दी साहित्यकोश भाग 1, पृ.465, तृ.सं. 1985

110. "Materialism, the philosophical doctrine, which resolves all existence into matter or into an attribute or effect of matter. It makes matter the ultimate reality, and explains the phenomenon of consciousness by physio chemical changes inthe nervous system. Materialism is thus the antithesis of idealism, which affirms the supremacy of mind and characterizes matter as an aspect or objectification of mind."

The Universal Standard Encyclopedia, Vol.15, p.5613, Year 1957

क्षेत्र में होते परिवर्तनों के फलस्वरूप चिन्तामण्डल में परिवर्तन आये हैं। यहाँ चिन्ता और बुद्धि के बारे में हम सोचने को बाध्य हो जाते हैं। "चिन्ता और बुद्धि मनुष्य-मस्तिष्क की सृष्टि है। मनुष्य ही प्रकृति की सृष्टि है। हेगल के विचार में प्रपंच सृष्टि के पहले ही उसके कहीं बाहर हुई चिन्ताओं का प्रतिफलन है भौतिक वस्तुएं और उसके पलन।[111]" इसलिए प्रपंच सृष्टि के पीछे की अदृश्य-शक्ति-ईश्वर पर कुछ लोग विश्वास करने को बाध्य हो जाते हैं। लेकिन भौतिकवाद ईश्वर, आत्मा, परमात्मा आदि पर विश्वास नहीं रखता है। याने भौतिकवाद धर्मविरोधी है। ईसाई-धर्म जैसे संघटित आध्यात्मिक सिद्धान्तों का विरोध भौतिकवादी करते हैं। "धर्म विरुद्ध भौतिकवाद के व्याख्याताओं में अठारहवीं शताब्दी के "डेनिस डिडेरोट", "पॉल हेन्री डिट्रिच होल्बा", "जूलियन अफरो डी लामेटैर" आदि आते हैं। उसी प्रकार क्रान्तिकारी राजनैतिक दार्शनिकों के रूप में विख्यात कार्लमार्क्स, फ्रेडरिक एन्गलस और निकोला लेनिन आदि ने ऐतिहासिक भौतिकवाद का समर्थन करते हुए कहा "हर एक समय में कायम रहती एवं ज़रूरती चीज़ों के उत्पादन करती आर्थिक व्वस्था ही हर एक युग के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं बौद्धिक इतिहास को स्थापित करती है।[112]

भौतिकवाद या जडवाद अथवा भोगवाद की चिन्ता भारत में प्राचीन काल से शुरू हुई थी। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि सभी ग्रन्थों में भौतिकवादी विचार उपलब्ध है। भारत में इसकी पुरातनता के बारे में "भारतीय चिन्तन परम्परा" में इस प्रकार व्यक्त

---

111. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग 6, पृ. 656

112. "Antireligious materialism is motivated by a spirit of hostility toward the theological dogmas of organized religion, particularly those of christianity. Notable among the exponents of antireligious materialism were the 18th century philosophers Denis Diderot, Paul Henri Dietrich D' Holbach and Julien Offroy de Lamettrie. Historical materialism, as set forth in the writing of the revolutionary political philosophers Karal Marx, Friedrich Engels and Nekolai Lenin, is a doctrine which maintain .... artistic history of the epoch." The Universal Standard Encyclopedia.p.5613

किया है "भारत में भौतिकवाद का उदय वैदिक प्राकृतिक धर्म और उससे संबंधित कर्मकांडों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। यह सच है कि एक पूर्णरूप से विकसित दर्शन प्रणाली के रूप में भौतिकवाद ईसा पूर्व सातवीं और दूसरी शताब्दियों के मध्य में प्रकट हुआ। किन्तु यह मानने केलिए आधार मौजूद है कि ईसा पूर्व दसवीं या नवीं शताब्दी में ही भौतिकवादी विचार कम से कम प्रारंभिक रूप में मौजूद थे।"[113] भोगवाद ऐशो आराम से भरी-पूरी ज़िन्दगी को तरजीह देता है। भारतीय और पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों में भोगवादी दृष्टव्य है। लेकिन यह तो सत्य है कि सुख सुविधाओं की हिफाजत मनुष्य को पूर्ण सुख नहीं प्रदान करता है। इस प्रचुरता के नीचे राक्षसता छिपी हुई है। भौतिकवाद के दो अन्य मित्र हैं परिणामवाद और नास्तिकता। इस के बारे में ऐसा परामर्श मिलता है "आधुनिक काल तक आते आते भौतिकवाद को परिणामवाद की दोस्ती मिली जिस में नास्तिकता या अनीश्वरवाद का समर्थन किया जाता है।"[114] परिणामवाद और भौतिकवाद दोनों के मिलन से मनुष्य में आये परिवर्तनों के बारे में "देवेन्द्रइस्सर" ने ऐसा बताया है "डार्विन ने मनुष्य को पशु का शरीर दिया और फ्रायड ने पशु की कामवृत्ति दी। मनुष्य इस नये ज्ञान की रोशनी में प्रचलित मूल्यों को त्याग रहा है। मूल्य से पृथक होकर मनुष्य का रूप - हत्यारा, चोर, डाकू, लुटेरा, दलाल, वेश्या, समलैंगिक, व्यभिचारी, आत्मरति का शिकार, परोत्पीडक, अपराधी आदि हो सकता है।"[115]

---

113. भारतीय चिन्तन परम्परा : के.दामोदरन, पृ.93

114. "Philosophical materialism in modern times has been largely influenced by the doctrine of evolution, and may indeed be said to have been assimilated in the wider theory of evolution, which goes beyond the mere antitheism or atheism of materialism and seeks positively to show how the diversities and differences in creation are the result of natural as opposed to supernatural processes."
The Universal Standard Encyclopedia, Vol.15, p.5613

115. साहित्य और युगबोध देवेन्द्र इस्सर, पृ.7-15, प्र.सं.1973

मार्क्सवादी मूल्य-दृष्टि

सन् 1834-1839 ई॰ में पेरिस के गुप्त क्रांतिकारी संघटनों द्वारा साम्यवाद या कम्यूनिसम गढा गया था । कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एन्गिल्स इस विचार धारा के पोषक थे ।

1913 में लेनिन भी साम्यवाद के पोषक रहे । मार्क्सियन मूल्य का विश्लेषण "विश्व विज्ञान कोश" में इस प्रकार मिलता है "उन्नीसवीं सदी में वर्तमान जर्मनी का दर्शनशास्त्र, इंग्लैंड का अर्थशास्त्र, फ्रान्स की क्रांति के सिद्धान्त आदियों को पल्लवित करके मार्क्स और एन्गलस ने मार्क्सियन सिद्धान्त को स्थापित किया ।"[116] भौतिकवाद के विकसित रूप मार्क्सवाद में भौतिक जगत् के जीवन के परे और किसी जगत् का संकल्प नहीं है । ईश्वर, आत्मा, परलोक आदि संकल्प इस में नहीं है । मानव-मूल्यों के विवेचन का आधार अर्थ ही है । मार्क्सवाद और समाजवाद दोनों का विश्लेषण करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में ऐसा परामर्श मिलता है "वैयक्तिक के बदले सामूहिक अथवा सार्वजनिक उत्पादन, प्रबन्ध और उपभोग के सिद्धान्त पर आधारित समाज व्यवस्था, साम्यवादी-समाज-व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध है । समाजवाद में प्राय: केवल उत्पादन के साधनों का सामाजीकरण होता है । समाजवाद प्राय: शान्तिमय तथा लोकतांत्रिक उपायों से क्रांति करने के पक्ष में है, जब कि साम्यवाद एतदर्थ बल के प्रयोग में अधिक विश्वास करता रहा है । आजकल साम्यवादी प्राय: समाजवाद को क्रान्ति का प्रथम सोपान तथा साम्यवाद को अन्तिम सोपान मानते हैं ।"[117]

116· विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग 9, पृ॰591

117· हिन्दी-साहित्य कोश भाग 1, पृ॰917

मार्क्सवादी चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु मानव है । इसलिए मनुष्य की विषमताओं से मुक्त करने केलिए उसे भौतिक वस्तुओं से सुसज्जित करना चाहिए । यह सिद्धान्त मेहनत की महत्ता पर बल देता है जिस में पूँजी का स्वामी पूँजीपति नहीं बल्कि परिश्रम करनेवाला मज़दूर है ही क्योंकि उसने ही कठिन परिश्रम से कच्चे माल से उपयोगी वस्तुएँ तैयार कर पूँजी को जन्म दिया है । परिश्रमी मानव के स्थान पर यंत्रीकरण की प्रक्रिया का घोर विरोध साम्यवादी करते हैं । क्योंकि परिश्रम करनेवाले मनुष्य को वेतन मिलना चाहिए जिससे वह अपनी जीविका चलावे । संसार की जनता आज भी भूखे-नंगे, भवन रहित हैं । मज़दूरों के रक्षक मार्क्स के शव-संस्कार के समय लंदन के हाईगेट कब्रिस्तान पर 17 मार्च 1883 में एंगेल्स ने भाषण दिया - "जिस तरह डार्विन ने प्राणिजगत् के विकास के सिद्धान्त का आविष्कार किया था, उसी तरह मार्क्स ने मानव-इतिहास के विकास के सिद्धान्त का आविष्कार किया अर्थात् राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म या किसी भी दूसरे विषय की ओर ध्यान देने से पहले मनुष्य को खान-पान, कपडा और वास-घर चाहिए । इसलिए, जीवन की मौलिक आवश्यकताओं का उत्पादन और आर्थिक विकास की तत्कालीन अवस्था वह नींव है, जिस पर राष्ट्रीय संस्थाएं, कानूनी व्यवस्थाएं, कला और बल्कि लोगों के धार्मिक विचार बनाये गये हैं, और इसलिए उनकी व्याख्या को उन्हीं पर आधारित करना होगा ।[118]" सौ वर्ष के बीतने के बाद भी मनुष्य की बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति कई देशों में नहीं हो रही है ।

---

118. मानव-समाज - राहुल सांकृत्यायन, सातवाँ संस्करण 1986 लोकभारती प्रेस, इलाहाबाद, पृ.274

साम्यवाद वर्ग-भेद-रहित समाज का संकल्प करता है । इसलिए श्रमजीवी अपने उद्धारक के रूप में इस पक्ष का समर्थन करते हैं । प्रत्येक व्यक्ति के अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए सुख के साधन कमाने का विधान इस में है । शोषक, बुर्जुआ, पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध शोषित, श्रमिक, गरीब साधारण लोगों का नेतृत्व साम्यवाद करता है । विश्व के कई देश, जैसे चीन, रूस, जर्मनी, पोलन्ड आदि साम्यवादी शासन में आये । कहीं कहीं उनके पैर फिसल चुके ।

"मार्क्स वाद और रामराज्य" में ऐसा बताया गया है "मार्क्सवाद में यह भी कहा जाता है कि वहाँ किसी के पास कुछ चीज़ नहीं रह जाएगी, फिर कौन किस की क्या चीज़ लूटेगा ? किसी के द्वारा किसी राष्ट्र के शोषण की भी बात नहीं आएगी, क्योंकि समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृता के दृष्टिकोण से जैसे एक व्यक्ति दूसरे का पोषक होगा, वैसे ही, एक राष्ट्र, एक वर्ग भी दूसरे राष्ट्र, दूसरे वर्गों का शोषक न होकर पोषक ही होगा ।"[119]

आदर्शवाद और साम्यवाद दोनों विरुद्ध कोटि के विचार रखते हैं । आज की दुनिया इन दोनों वादों के संघर्ष की साक्षी है । "भारतीय चिन्तन परम्परा" में आदर्शवाद और साम्यवाद दोनों पर दृष्टिपात करते हुए यों बताया गया है "आदर्शवाद और धर्म के समर्थक जहाँ यह सोचते हैं कि यदि व्यक्ति नैतिकता के शाश्वत मूल्यों का अनुसरण करने लगे तथा शिक्षा और प्रचार के द्वारा जनता के मन में नैतिक एवं धार्मिक मूल्य जमा किये जायें, तो मानव-समाज श्रेष्ठतर बन जाएगा, वहाँ यांत्रिक भौतिकवादी तथा कठमुल्ले मार्क्सवादी यह दावा करते हैं कि यदि पूँजीवाद का उन्मूलन कर दिया जाय और उसके स्थान पर समाजवादी समाज की स्थापना कर दी जाय, तो नैतिक तथा नीतिशास्त्रीय मूल्य फलने-फूलने लगेंगे ।"[120]

---

119. मार्क्सवाद और रामराज्य - श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज, पृ.418
120. भारतीय चिन्तन परम्परा-के.दामोदरन, पृ.528

विज्ञान और मानव मूल्य

विज्ञान के चमत्कार ने आधुनिक जीवन के मुखौटे को बदल दिया है । प्रकृति के प्रकोपों को देखकर डरा हुआ, अधोमुख मनुष्य प्रकृति के नियंत्रक के रूप में आ गए । अपनी विजय यात्रा में साथ देने केलिए भोगवाद और मार्क्सवाद आये जिन्होंने एकत्रित होकर यह घोषणा की कि ईश्वर, धर्म, मोक्ष आदि बेकार हैं । तर्क और कठिन परीक्षण के बाद ही विज्ञान किसी वस्तु को मूल्यवान मानता है । बुद्धि एवं तर्क के परे और किसी शक्ति में विज्ञान का विश्वास नहीं है । पदार्थ की सत्ता को विज्ञान ने प्राधान्य दिया है । विज्ञान की प्रगति के द्वारा मानव में आये परिवर्तनों पर प्रकाश डालते हुए शुकदेव प्रसाद ने ऐसा लिखा है - "आज मानव को सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं, सब उसे विज्ञान ने मुहैया किया है । आज दुनियाँ सिमट गई है, मिनटों में धरती के किसी कोने से संचार सम्भव है, धरती का कोई कोना, आकाश और पाताल, अजाने-अछूते नहीं रहे, जहाँ मानव ने अपने चरण-चिन्ह न छोडे हों, अपनी विजय पताका न फहराई हों ।"[2]

वैज्ञानिक मूल्य यंत्र-जन्य मूल्य है । विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य जीवन को यांत्रिक जीवन प्रदान किया । सुबह से रात तक जैसे उसका जीवन यांत्रिक चलता है । यन्त्र का मस्तिष्क या हृदय नहीं है । उसी प्रकार यांत्रिक-सभ्यता में हृदय पक्ष का महत्व भी नहीं है । शत्रु या मित्र की चिन्ता भी यन्त्र को नहीं है । आज के मनुष्य की सभी विसंगतियों का कारण यांत्रिक जीवन है । इस प्रकार यांत्रिक जीवन बितानेवाले मनुष्य को, भरे-पूरे समाज के सदस्यों के बीच रहते हुए भी

---

[2]. विज्ञान और मानव-मूल्य शुकदेव प्रसाद - "आजकल" पृ.27 नवम्बर 1982

एकान्तता और शून्यताबोध मथते हैं । उसका अपना व्यक्तित्व नहीं है । वह भी, महासागर का एक अणु मात्र है । इंजन का पुर्जा बदल कर या यंत्र के मर्मत करने के जैसे पारिवारिक या सामाजिक सदस्यों को बदल कर नई मैत्री स्थापित करके पुराने को त्यागने की प्रवणता वर्तमान युग में आ गई है । याने पुरानी वस्तुओं को कूडे में डालने के जैसे माँ-बाप, पति-पत्नी या भाई बन्धुओं को छोडने की एक सभ्यता मानव-समाज में पनप रही है । पदार्थ की सत्ता को विज्ञान ने प्रधानता दी है । इसलिए आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता ने, आत्मा के स्थान पर शरीर ने और मोक्ष के स्थान पर भोगवाद एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य ने अपना अधिकार जमा लिया है ।

विज्ञान की प्रगति ने देशों के बीच की दूरी कम कर दी, पर मनुष्य और मनुष्य के बीच का फासला बढ गया है । याने विज्ञान की प्रगति के साथ साथ मनुष्य-मनुष्य का सम्बन्ध भी टूट गया । "आज के आदमी की नियति और आस्था का बिन्दु" शीर्षक निबन्ध में इस का परामर्श यों मिलता है - "सब ओर अनिश्चित वातावरण है, कार्यों के प्रति एक गहरा संशय, सम्बन्धों के प्रति अरुचि, उदासीनता और अपने आप पर से उठता विश्वास, यह सब आदमी के आस्थाबिन्दुओं को अक्षुण्ण नहीं रख पाते । रात को तनाओं से भरकर सोया हुआ व्यक्ति जब सुबह जागता है, तो उसे लगता है, कोई एक और आस्था-बिन्दु उसने कहीं खो दिया है नींद की खुमारी में, रात के सपने में या अपने सजगता के अभाव में । और, अपने इस खोये हुए पर वह गहरा असन्तुष्ट हो उठता है ।"[122] विज्ञान के पीछे पडती नव-पीढी, संसार-भर में एक प्रकार की अराजकता व निराशा का अनुभव कर रही है । धर्म एवं नीतिसम्बन्धी आस्था पर विज्ञान का विश्वास नहीं है । इतना ही नहीं धार्मिक सिद्धान्तों का, गला घोंटने में, विज्ञान लगा हुआ है ।

---

122. आज के आदमी की नियति और आस्था का बिन्दु
रघुवीरसिंह - नई धारा, पृ.6, सितम्बर-अक्टूबर 1975

ईश्वर और धर्म की मृत्यु के उद्घोषण में विज्ञान ने अपनी सफलता पायी है ।

नैतिक मूल्यों के पतन में विज्ञान की प्रगति का अपना महत्त्व है । विज्ञान, वित्त और विज्ञापन ये तीनों साथ साथ चलते हैं । अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों में विज्ञान की प्रगति हुई जिस से प्रकृति के करीब सभी चीज़ों के नियंत्रक के रूप में वह आया । एक बटन दबाने पर हवा आयी, रोशनी फैल गई, लेकिन आज पंखे के नीचे बैठनेवाला मनुष्य पसीने से तर बैठता है और मन की प्रकाश-धारा बुझ-सा विवश बैठता है । टेलिफोण द्वारा सुदूर बैठनेवालों से बोल पाया, दूरदर्शन ने बोलने वाले का चेहरा भी दिखा दिया । लेकिन सुनी हुई बात और देखा हुआ चित्र अपने से ओझल हो गया । बिना आदमी के, हवाई जहाज शत्रु के सिर के ऊपर से उडा कर बम की वर्षा कर सकता है; वर्षा, आन्धी, भूचाल आदि को बहुत पहले जान सकता है, पर मनुष्य स्वयं चलता-अग्नि-पर्वत बन गया है । माता के गर्भ में पडे शिशु का लिंग-निर्णय कर "बच्ची है तो उसकी हत्या गर्भाशय में ही करने की कला भी विज्ञान ने मनुष्य को सिखा दी । पर जन्मा सुन्दर बेटा, पल कर मन्द-बुद्धि या लंगडा निकलता है ।

युवा पीढी के कानों में विज्ञापन ने मनमोहक मंत्र सुनाये । विज्ञापन के जादू से गोबर को सोना बनाकर बेच सकता है । वस्तु और व्यक्ति एक दूसरे का बदल, बनते जा रहे हैं । शासकों ने युवा-पीढी के कानों में गर्भ-निरोध द्वारा आबादी की वृद्धि को रोकने का मंत्र फूंक दिया । स्कूल, कालेज के छात्र-छात्राएं बिना विवाह किये मां-बाप बनते जा रहे हैं । पार्कों के पेड-पौधों को, कालेज के आंगनों के पौधों को, बस्टाप के प्रतीक्षालय को, सिनेमा शाला की कुर्सियों को, जीभ होती तो

वे क्या-क्या सत्य बोल देती ! ! अविवाहितों के पवित्र-जीवन को गर्भनिरोधक सामग्रियों ने कलंकित, शांतिरहित और समस्यापूर्ण बनाया तो वी·सी·आर·, वी·सी·पी· एवं सिनेमा ने युवकों को गुमराह भी किया । विज्ञापन में देखती वस्तुएं असली एवं सच्ची जानकर नशीले पदार्थों - शराब, गांजा-बीडी, ब्रौन-शुगर आदि - के गुलाम बनती जा रही है युवा पीढी ।

विज्ञान ने एक वित्तीय सभ्यता को भी जन्म दिया । भौतिक वस्तुएं अपनाने के मोह में मनुष्य भटक रहा है । तकनीकी विकास औद्योगीकरण और शास्त्रों के आविष्कारों से मनुष्य की भौतिक प्रगति अवश्य हुई । घर-भर संपत्ति उसने जमा की । लेकिन वह आज अपने में छोटा हो गया, सिकुड गया, कायर बन गया और शंकित भी । इस प्रकार अन्य भौतिक-चीज़ों के बीच में मनुष्य यंत्र का एक पुर्जा बन गया, हृदयहीन एक गुडिया बन गया । याने चेतनावाला वह एक यंत्र-मानव बन गया है । इस यांत्रिक सभ्यता को हम विज्ञान की सभ्यता या वित्तीय-सभ्यता पुकार सकते हैं । वित्तीय सभ्यतावाले मानव के बारे में डॉ· कैलाश वाजपेयी ने यों लिखा है - "समस्त मानवीय सम्बन्ध अब केवल वित्तीय स्तर पर बनते हैं, अन्य सभी माध्यमों को या तो नगण्य घोषित कर दिया गया है, अथवा फिर यांत्रिकता से जकडे हुए नये समाज में वे किसी अज्ञात-प्रक्रिया द्वारा स्वत: डूबते जा रहे हैं । आज के व्यक्ति को यह नहीं ज्ञात कि वह चाहता क्या है । लम्बे अर्से तक वह सभ्य समाज के विशाल मरुस्थल में अपना स्थान खोजता रहता है और अन्त में स्वयं भीड का अंग बन कर खो जाता है ।"[123]

123· आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता डॉ·कैलाश वाजपेयी

ज्ञानोदय, पृ·18, सितम्बर-जून 1963-64

विज्ञान की प्रगति से गाँव के स्वच्छन्द एवं निष्कलुष वातावरण पर शहरी सभ्यता बुरी तरह हावी हो गई। पेड-पौधों की हरियाली के स्थान पर "ईंट-पत्थर-सिमेन्ट-इस्पात" के जंगल की धूम चारों ओर फैल गयी है। आध्यात्मिक शून्यता के कारण रुग्ण मन और तन के मानवों की संख्या बढती जा रही है। इस प्रकार आधुनिक संस्कृति भोगवादी-शहरी संस्कृति बन जाती है जिसमें नव-युवा और नव-धनाढ्य, अर्ध शिक्षित लोगों की अपक्व-संस्कृति की प्रधानता है। आध्यात्मिक शून्यता के कारण आयी विपत्तियों को दिखाता हुआ "देवेन्द्र इस्सर" ने यों प्रकाश डाला है "हिंसा, अपराध, यौन-विकार, कामोत्तेजना, परोत्पीडन, मदिरापान और नशाखोरी, नैतिक-मूल्यों से विमुखता, फिल्मी-स्कैंडल, सौंदर्य-प्रतियोगिताएं, बगैर परिश्रम के एकदम से धन कमाने की विधियाँ, स्वार्थ और अहंवाद के दृष्टिकोण को अनिवार्य समझा जा रहा है। अपरिपक्व लोग जीवन के सामान्य मूल्यों से विमुख होकर बाजारू-संस्कृति का पोषण करते हैं।[124] आज की हालत हमारे राष्ट्रनिर्माण और विशेषकर मानव-जाति की सभ्यता की रक्षा के सामने एक खतरा है। क्योंकि आधुनीकरण या वैज्ञानीकरण के नाम पर हम मनुष्य-पद से निम्न स्तर की ओर फिसल जा रहे हैं। "वैज्ञानिक और औद्योगिक युग में मूल्यों का प्रश्न" में इस रहस्य का उद्घाटन किया गया है

"विज्ञान की प्रगति भी प्रकृति को उत्तरोत्तर रहस्यमुक्त करने की ओर है। यह प्रगति समस्त मूल्यों, मान्यताओं और अर्थों के पुरातन ढाँचे को खण्डित करती चली जाती है। पुराने मूल्यों के तेज़ी से विघटन के फलस्वरूप व्यापक मूल्यहीनता, अर्थशून्यता और विश्वास हीनता एक गंभीर रूप धारण कर सामने आती है। "नेति नेति" के इस वातावरण में मनुष्य की निहित पाशविक प्रवृत्तियों और आवेगों पर मूल्यों का अंकुश समाप्त-सा हो जाता है। ऐसी स्थिति ही मनुष्यों को भी पाशविक

---

124. साहित्य और आधुनिक युग बोध - देवेन्द्र इस्सर, पृ.18

व्यवहार और आचार के निम्न स्तर पर ले आती है।"[125] हमारे हर क्षेत्र में आधुनिकरण की प्रक्रिया दिखायी पड़ती है। कोट-पतलून पहनना मात्र हमारी आधुनिकता है। आधुनिकरण की आलोचना करते हुए "भारतीय जीवन के आधुनिकीकरण में गतिरोध" में ऐसा प्रतिपादन मिलता है "आधुनिकता हमारे जीवन का मूल्य नहीं है, शक्ति नहीं है और आलोक नहीं है। यदि हम जीवन का वैज्ञानिक आधार ढूंढना और विकसित करना चाहते हैं तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रयोगशालाओं से बाहर निकाल कर जीवन-व्यवहार में लाना और लगाना होगा।"[126]

विज्ञान की प्रगति के नाम पर पश्चिम के पीछे पड़ने की आदत आज भारत में हो गई है। इसके गुण-दोष-विवेचन तक हम भूल गए हैं। विदेश की चीज़ें, विदेशी-भाषा, विदेश से आनेवाले, विदेशी-सभ्यता आदि का अन्धानुकरण एक फैशन बन गया है। "सभ्यता का संकट" में इस का पर्दाफाश इस प्रकार हुआ है - "यूरोप भारत की ओर आँख उठाकर देखता था, भारत की उपज भी वहाँ सम्मान पा सकती थी। लेकिन डेढ-दो हज़ार साल से ऐसी स्थिति नहीं। अब हम उनका मुँह जोहते हैं। उनके जो रोग भी हैं, उन्हें भी हम अपने रोगों से अच्छा मानते हैं क्योंकि वे पश्चिम के रोग हैं, हमारे रोग घटिया रोग हैं, उनके रोग उन्नत रोग हैं।"[127]

विज्ञान के अभिशापों में से सब से बड़ा शाप युद्ध जन्य विभीषिकायें हैं। अनगिने युद्धों की गवाही बन चुकी हमारी पृथ्वी इस सत्य का निराकरण कभी नहीं कर सकती है कि युद्ध मानव समाज का सब से बड़ा अभिशाप है। अभी तक जितने भी युद्ध लड़े गये हैं, उनके मूल में

---

125. वैज्ञानिक और औद्योगिक युग में मूल्यों का प्रश्न पूरनचन्द जोशी - "आलोचना", पृ.8, जनवरी-मार्च 1986

126. भारतीय जीवन के आधुनिकीकरण में गतिरोध भँवरलाल सिंधी - "वातायन", पृ.62, फरवरी 1967

127. सभ्यता का संकट सच्चिदानन्द वात्स्यायन - नया प्रतीक, पृ.16

किसी व्यक्ति या गुट की स्वार्थभावना ही काम कर रही है । जिसके मस्तिष्क में युद्ध के बीज पनपते हैं वे कभी नहीं सोचते हैं कि युद्ध के दुष्परिणाम पीढ़ीतर पीढ़ी को भोगना पड़ता है । इन यंत्रणाओं में बुरी तरह आम जनता भी पिसी जाती है । इस प्रसंग पर "शुकदेव प्रसाद" का कथन सार्थक है "अपनी बुद्धि का प्रयोग कर मानव ने प्रकृति के रहस्यों को जानना चाहा और प्रकृति के साथ उसने ही पहले अमानवीय हरकत की । मानव ने अपनी हैवानियत के निशान हिरोशिमा और नागसाकी पर छोड रखे हैं । आज भी वहाँ की धरती की संतति जन्म से लूली-लंगडी, अंधी और बहरी पैदा होती है । इससे बढ़कर सभ्यता का अपमान और क्या हो सकता है ?"[128]

मूल्य विघटन विभिन्न क्षेत्रों में :-

राजनीतिक क्षेत्र में मूल्यच्युति

आज समूचे भारतीय राजनैतिक परिवेश में जो नैतिक गिरावट दीख पड़ती है, उस के कई कारण हैं । मूल्यों के प्रति समर्पण-भाव रखनेवाले नेताओं की कमी एक कारण है । पद ओहदे, सुख-सुविधा आदि त्याग कर स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिये नेतागण उन दिनों थे जिन में गान्धी, नेहरू, पटेल, तिलक, शास्त्री आदि विख्यात हैं । लेकिन आज देश-प्रेम, देश की एकता, राष्ट्र की उन्नति, पतितोद्धारण, निरक्षरता-निर्मूलन, गरीबी का उन्मूलन, समाज-कल्याण आदि को ध्यान में रखकर निस्वार्थ-सेवा करनेवाले नेताओं की कमी है । नेताओं में जिन नैतिक मूल्यों का अभाव है, आम जनता में भी उन मूल्यों का अभाव होना

128· विज्ञान और मानव मूल्य शुकदेव प्रसाद - आजकल, पृ·27 नवम्बर 1982

स्वाभाविक है । आम व्यक्ति में आये परिवर्तनों के बारे में "डॉ॰ महावीर सिंह" का मत ऐसा है "व्यक्ति के जीवन में लाभ-लालच, उपभोग-प्रवृत्ति, सुख-सुविधा की उत्कंठा, लोक-प्रियता की चाह आदि आदिम प्रकृतियों का प्रभाव बहुत गहरा होता है जिसे नियंत्रित करने केलिए समाज ने नीति, सदाचार, धर्म और व्यक्तिगत आचरण-संबंधी नियम बनाये हैं, जो समाज के स्तर पर अत्यंत प्रभावशाली लगते हैं, लेकिन व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति इन नियमों का पालन करने की अपेक्षा इन से बचने में ही अपनी सारी शक्ति लगा देता है । अतः चाह कर भी व्यक्ति श्रेष्ठ तथा चरित्रवान नहीं बन पाता । जिन नियमों तथा व्यवस्था को समाज मान्यता देता है उनके द्वारा सामान्यतः सभी व्यक्तियों का हित होना चाहिए, लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर ऐसा नहीं होता ।"[129] चरित्रहीन नेताओं के संपर्क में आने से आम जनता भी चरित्र-हीन, स्वार्थी एवं नियमोल्लंघक बनने की ताकत रखते हैं ।

राजनीति के क्षेत्र में मूल्य-पतन के कारणों में दूसरा स्थान आम जनता की निरक्षरता है । निरक्षरता का विकराल रूप प्रतिपादित करते हुए सच्चिदानन्द वात्स्यायन ने यों अपने विचार व्यक्त किया था "हमारे समाज का कम से कम दो-तिहाई निरक्षर है । कुछ प्रदेशों में दो-तिहाई या एक चौथाई ही साक्षर होंगे और कुछ प्रदेशों में उनसे भी कम ।"[130] आम जनता की निरक्षरता का लाभ उठाने में शिक्षित और अल्प शिक्षित दोनों प्रकार के नेतावर्ग शामिल होते हैं । एक प्रकार की "मत्स्य संस्कृति" या "जानवर संस्कृति" इस प्रकार राजनीति में काम करती है । छोटी मछली को निगल कर मोटी बनती है दूसरी मछली । उसी प्रकार जंगल के छोटे छोटे जानवरों को बडे-जानवर खाकर और मोटे बनते हैं । इसी प्रकार अशिक्षितों के नेता के रूप में उन के बीच से

---

129. साहित्य में नैतिकता का प्रश्न डॉ॰ महावीरसिंह
आजकल, पृ॰28 मार्च 1989

130. सभ्यता का संकट सच्चिदानन्द वात्स्यायन, पृ॰13
नया प्रतीक, दिसंबर 1976

अल्प-शिक्षित-नेता उठते हैं । अनेकों अल्प शिक्षित नेताओं के ऊपर शिक्षित नेता आते हैं । निरक्षरों को जानवर-जैसे हाँकते हुए नेता केलिए जय बोलते घुमाना, झंडा दिखाना, सड़कों, बाज़ारों पर लूट चलाकर साधारण लोगों को तंग करना, उनमें आतंक और भय फैलाना, नेता के अनुकूल भाषण देने की कला सिखाना ये सब कार्य इन निरक्षरों के द्वारा कराने में ही नेता की विजय छिपी रहती है । याने नेतागण अपनी अनैतिक-लक्ष्य-पूर्ति केलिए निरक्षर लोगों को उपकरण बनाते हैं ।

राजनीति के क्षेत्र से बुद्धिजीवियों का फिसल जाना भी मूल्य विघटन का एक और कारण है । इस की ओर संकेत करते हुए "बुद्धिजीवी और परिवर्तन की राजनीति" में ऐसा बताया गया है - "बुद्धिजीवी और राजनीति के रिश्तों के बारे में आजादी के पहले और बाद का अन्तर कर लेना अच्छा है । आज़ादी की लडाई में बौद्धिक वर्ग के एक हिस्से ने राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान किया । लेकिन आज़ादी के बाद बुद्धिजीवी वर्ग धीरे धीरे राजनीति से अलग होता गया ।"[131] उसी प्रकार कलाकार एवं साहित्यकार भी राजनीति से ओझल हो गए हैं । स्वतंत्रता-संग्राम में गाँधीजी ने ऐसे सभी विभागों के लोगों का योगदान प्राप्त किया था । इस का परामर्श "पिछले ढाई दशक में बुद्धिजीवी कहाँ गए" में मिलता है "महात्मा गान्धी ने सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पुनर्जागरण की इस अग्नि से राजनीतिक चेतना की मशाल जलाने का काम लिया आज शायद ही कोई दल हो जो देश में परिवर्तन केलिए संगीतकारों, नर्तकों, साहित्यकारों, समाज-सुधारकों, शिक्षा-शास्त्रियों आदि सभी क्षेत्रों के प्रमुख व्यक्तियों का सहयोग लेता हो ।"[132]

---

131. बुद्धिजीवी और परिवर्तन की राजनीति कृष्णनाथ - नईधारा पृ. 1, अगस्त 1968

132. पिछले ढाई दशक में बुद्धिजीवी कहाँ गए प्रदीप पन्त, नई धारा पृ. 6, जून 1972

शैक्षणिक संस्थाओं में राजनीतिज्ञों की घुसपैठ भी मूल्य शोषण का एक कारण है । शिक्षा का क्षेत्र राजनीतिज्ञों का अड्डा बन चुका है । प्राइमरी क्लास से विश्वविद्यालय के छात्रों तक विविध दल देशीय, प्रान्तीय, जातीय - के छात्र नेता स्कूल-कालेजों में वर्तमान रहते हैं जिन का कार्य छात्रों की समस्याओं के समाधान के नाम पर स्कूल-कालेजों में शिक्षा-बन्द करना मात्र रह गया है जिससे पाठ्य-क्रम के अधिकांश-भाग पढाये-पढे बिना हर एक साल अल्प-शिक्षित युवकों को समाज में बेकारों की दुनियाँ केलिए छोड देना रह जाता है । इस प्रकार छात्र-जीवन के सारे दायित्वों को भूलकर विद्यार्थी राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं । छात्र-समूह की, आज की हालत का स्पष्टीकरण "फ्रान्क ठाकुरदास" ने इस प्रकार किया है "देश के विद्यार्थी वर्ग जो देश की कुल जनसंख्या के दस प्रतिशत आते हैं, जिन में से बहुत संख्यक शिक्षा कार्य से बढकर अन्य अनचाहे कार्यों केलिए अपनी ताकत का दुरुपयोग करते हैं वे शिक्षा की महत्ता का नाश करते हुए देश की शासन-व्यवस्था को भी बिगाडते हैं ।"[133] चुनाव के क्षेत्र में होनेवाला अन्याय भी मूल्य-पतन का एक और कारण है । इस समस्या पर "श्याम मोहन आस्थाना ने यों परामर्श दिया है - "मेरे विचार में भारत में लोकतंत्र अभी एक संभावना मात्र है, उसे एक उपलब्धि मान लेना ठीक नहीं है । चौथा चुनाव अपेक्षाकृत वास्तविक था, पर जाति, धर्म और धन ने जनमत को विकृत करने में कोई कोर-कसर नहीं छोडी । यहाँ सिर्फ लोकतंत्र के फार्म का सवाल नहीं है, असली प्रश्न लोक तंत्र के मिजाज का है । लेकिन भारतीय चुनावों में उम्मीदवारों के चयन, चुनाव-खर्च से

---

133. "The student community forms one-tenth of the total population of the country and what happened in the academic world was also happening in a more magnified form in the non-academic world whether the natural energies of the youth were channelised in one direction or the other, for one cause or the other, undermining the whole administrative system and ever ready to assume an anti-government stance." Indian political culture amid Transition :
- Frank Thakurdas, Society and Religion,p.27

लेकर जाली मतदान में राजनीतिक मूल्यों की इतनी उपेक्षा होती है कि लोक तंत्र की आत्मा बिल्कुल खंडित हो जाती है ।"[134]

पुरानी पीढी के नेताओं से नई पीढी के युवक छले जाते हैं और मोह भंग का अनुभव करते हैं जो मूल्य-शोषण का विकराल रूप धारण कर जाता है । नेताओं में बहुसंख्यक बूढे लोग होते हैं । ऊँचे ओहदे और सुख-सुविधाओं को भोग कर युवा वर्ग को मीठे वचन वे सुनाते हैं, जिस से बेकारी, निराशा, अर्थहीनता, भूख-प्यास आदि से ग्रसित वे मोहभंग में तडप रहे हैं । उनके सामने जीवन का चौराहा अवरुद्ध हो गया है । इस विषय की चर्चा करते हुए "रामवचन राय" लिखते थे "हिन्दुस्तान का युवा जन भी यह महसूस करता है कि अधिकारियों ने आदर्शों के नाम पर सर्वत्र सुविधा भोगी व्यवस्था का जाल बिछा रखा है । अनुशासन और व्यवस्था का नाम जप कर वे हर जगह अपनी गोटी लाल करते हैं । दूसरी ओर ऊँची डिग्रियों के बावजूद युवजनों को बेरोजगारी और निठल्लापन का सामना करना पडता है । आधा पेट खाकर बुलबुलाये और न कह पाने की पीडा से उत्पन्न संकट के बीच सारा युवा-आक्रोश पिघलता रहा है ।"[135] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चरित्रहीन राजनीतिज्ञ, गान्धीवाद का हनन, नेताओं की स्वार्थता, आम जनता की अज्ञता, प्रजातंत्र का खोखलापन, निष्क्रिय शासक, साहित्यकारों की आँख मिचौनी खेल ये सब राजनैतिक क्षेत्र के मूल्य-संकट के विविध कारण है जिन का विशद प्रतिपादन आगामी अध्यायों में किया गया है ।

134· भारतीय लोकतंत्र पर घिरते बादल श्याम मोहन आस्थाना
नई धारा, पृ·6, अप्रैल 1968

135· नई पीढी का मूल्यबोध युवा लेखन के सन्दर्भ में रामवचनराय
नई धारा, पृ·69, दिसंबर-जनवरी 1972-73

आर्थिक क्षेत्र में मूल्यशोषण

किसी भी देश के आर्थिक पिछडेपन के कई कारण हो सकते हैं। यह तो सच है कि जनसंख्या-वृद्धि की ऊँचीदर इस का मुख्य कारण है। साथ ही नैतिक मूल्य-हीन राजनीतिज्ञ, व्यापारी वर्ग, सरकारी-कर्मचारी, भ्रष्ट नौकरशाही, ये सब देश के आर्थिक ढाँचे को बिगाड देने में अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। स्वतंत्रता के 43 वर्ष के बाद भी बुनियादी ज़रूरतों - अन्न, वस्त्र, भवन, शिक्षा से वंचित आम-जनता देश की उजडी हुई आर्थिक हालत का जीवन्त प्रमाण है। भारतीय जनता की, विशेषकर आम जनता की, अतिनवीन हालत का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करते हुए एक अवलोकन "दि इलिस्ट्रेटड वीकिली" ने यों प्रकाशित किया है

"भारतीय जनता के पचास प्रतिशत के लोग दारिद्र्य रेखा के नीचे या उसके आसपास रहते हैं। करीब दो-तिहाई भारतीय निरक्षर हैं। आबादी के पच्चीस प्रतिशत भूमिहीन मज़दूर हैं। साठ प्रतिशत भारतीय अनुसूचित जातियों, गोत्र वर्गों व पिछडी जातियों के हैं। ग्रामीण एवं शहरीय लोगों के जीवन-स्तर में जो अन्तर है वह विशाल होता जा रहा है। किसानों की आय में वृद्धि नहीं है। तीन करोड बीस लाख के युवक बेकार हैं जिन की समस्या से भारतीय समाज एवं राजनीति में भीषण हालत पैदा हुई है। इस के विपरीत आबादी के एक छोटे जन विभाग सुख-सुविधाओं की संपन्नता भोग रहे हैं।"[136]

---

136. Indian Society has unique features. It is a democracy with nearly half of the population living below or on the margin of what has come to be known as the 'poverty line'. Nearly two third of Indians are illiterate. More than a quarter of the Indian population comprises landless labour; 60 percent of Indians are included under scheduled, tribal and backward clases. The gap between urban and rural living standards has been widening. The average per capita income of the agricultural sector has been witnessing a decline. The number of unemployed is estimated at 32 million and this stagnant pool of human resources is not only widening but is threatening to pose a challenge to the social and political integrity of the country. On the other side of this spectrum, a small percentage of the population has come to live a life of luxury which even the rich in the industrialised countries cannot afford. Elitist Economy, p.22, The Illustrated weekly of India.

आज़ादी की लडाई में भाग लिये युवकों ने सोचा कि आज़ादी के तुरन्त बाद ही उनकी दयनीय हालत में परिवर्तन आ जाएगा। लेकिन अर्थ नामक चीज़ की स्वतंत्रता अब तक नहीं हुई है। धनरूपी देवता का कटाक्ष पिछडे वर्ग तक नहीं आता। बीच में उसे कोई रोक रहा है। अस्वतंत्रता के दिनों में हमारी यह धारणा थी कि भारत की संपत्ति गोरों के देश में चली जाती थी। इसलिए विदेशियों को भगाने से भारत के गरीब लोगों के बीच में धन का वितरण होगा, हमारी मुसीबतें दूर होगी, इसी स्वप्न लोक से हम विचरण कर रहे थे। लेकिन गोरों के चले जाने के बाद भी धन-देवता कहीं उलझी हुई है। पिछले कई चुनावों में सत्ता में जो पार्टी नहीं आयी, उन्होंने कहा - शासक वर्ग के पाश में धनदेवता उलझी पडी, गरीबों की वेदना निवारण करने के उद्देश्य से वह कराह रही है। जनता-जनार्दन ने इस का अर्थ समझ लिया तो कुछ-एक बार विपक्षी दलों को, जिन्हों ने पीडित शोषित, मर्दित-अर्थहीन पिछडी जनता के वक्ता के रूप में अपने आप को घोषित किया, सिंहासन पर बिठाया। इस प्रकार शासक व विपक्षी दल के बार बार सिंहासन-ग्रहण करने पर भी गरीबों का और गरीब होना, अमीरों का और भी अमीर होना, देश के आर्थिक असन्तुलन का सूचक है। याने गोरों के हाथ से शासन-डोर "काले गोरों" के सभी दलों के हाथ में आने पर भी काफी-आर्थिक परिवर्तन समाज में नहीं हुआ है।

आबादी की वृद्धि भारत की अर्थव्यवस्था के पिछडेपन के कारणों में एक है। डॉ. एस. चन्द्रशेखर ने इस विषय पर अपने विचार यों व्यक्त किया था - "जन संख्या-वृद्धि की ऊँची दर ही देश की

अर्थव्यवस्था के पिछडेपन का मुख्य कारण है । 1968 तक भारत की जनसंख्या में 18 करोड 27 लाख की वृद्धि हो चुकी है । पंचवर्षीय योजनाओं से जो कुछ लाभ हुआ, वह जनसंख्या वृद्धि के कारण व्यर्थ हो गया है । इसलिए विकास-सम्बन्धी गतिविधियों को उद्देश्यपूर्ण बनाने केलिए जनसंख्या की वृद्धि की रोकथाम परमावश्यक है ।"[137]

पंच वर्षीय योजनाओं के संचालक अफसरों का, ठेकेदारों से दोस्ती जोडकर काला-धन प्राप्त करना, व्यापारियों के द्वारा मालों की जमाखोरी करना, सरकारी अफसरों का घूसचोरी व अन्याय के मार्ग से धन कमाना, ये सब आर्थिक विघटन के कारण है । भारतीय अर्थ-व्यवस्था में आये मूल्य विघटन का विशद प्रतिपादन कई नाटकों में आया है जिस का अध्ययन अलग अध्याय में किया गया है ।

धार्मिक क्षेत्र में मूल्य स्खलन

धर्म - Religion — ईश्वरीय विषय का प्रतिपादन करता है । मानव-संस्कार का उदय धर्म से हुआ है । धर्म की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए क्रांतदर्शी तत्वज्ञ, विचारक, एवं दार्शनिक डॉ॰ राधाकृष्णन ने इस प्रकार लिखा था "धर्म का निवास मनुष्य के मन में है, यह स्वयं मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है । बाकी प्रत्येक वस्तु विलीन हो जा सकती है, परन्तु ईश्वर में विश्वास जो संसार के सब धर्मों की चरम स्वीकृति है, शेष रह जाता है ।"[138] मनुष्य का सम्बन्ध अन्य मनुष्यों से कैसे रहना चाहिए, ईश्वर का स्थान सृष्टि में क्या है, इस जगत् का संचालन कैसे होता है, भविष्य में जगत् और मनुष्य की

---

137. भारत केलिए जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण आवश्यक है
- डॉ॰ एस॰चन्द्रशेखर - नई धारा, पृ॰117, मार्च 1969

138. धर्म, तुलनात्मक दृष्टि में डॉ॰राधाकृष्णन, पृ॰14
चौथा सं॰1969

क्या हालत होगी ? ऐसी अनेक बातों पर सदियों से मनुष्य चिन्तित थे । ऊपर के सभी प्रश्नों के उत्तर "धर्म" में मनुष्य ने पाये । धर्म-संबंधी चर्चा करते हुए "विज्ञान और मानव-मूल्य" में ऐसा परामर्श मिलता है "प्राचीन काल की सभी सभ्यताएँ धर्म में विश्वास रखती थीं । हिन्दु, इस्लाम, यहुदी, ईसाई सभी धर्मों में ईश्वर की कल्पना की गई है । कमोवेश सभी धर्मों में ईश्वर को विश्व का निर्माता माना गया । काल-प्रवाह के साथ धर्म हमारे जीवन के अभिन्न अंग बनने लगे और धार्मिक ग्रन्थ आस्थाओं के आधार । यहाँ तक कि सामाजिक रीतियाँ और नैतिक नियम तक धर्म के मूल सिद्धान्तों पर आधारित होने लगे । धर्म के मूल सिद्धान्त ही स्मृति के आधार बने । परन्तु कालान्तर में ये धर्म रूढियाँ बन गए । एक समय ऐसा भी था जब धर्म ग्रन्थों के खिलाफ कोई बात नहीं सुनी जा सकती थी ..... ।"[139]

धर्म जब तक मानव के मानस में सुख, शांति, तन्दुरुस्ती आदि प्रदान करते रहे तब तक मनुष्य ने उस की शरण ली । उसकी दुर्बलताओं में उसे मज़बूत करते रहे धर्म की आड में रहना मनुष्य ने परम भाग्य मान लिया । लेकिन विज्ञान की प्रगति ने धर्म को चुनौती दी । "आज के आदमी की नियति और आस्था की बिन्दु" नामक निबन्ध में वर्तमान समाज में आये इस प्रकार के परिवर्तनों का स्पष्टीकरण किया गया है । "आदमी का सब से सबल आधार सदियों तक धर्म रहा । व्यक्ति का ही नहीं, सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था का भी । पर बीसवीं सदी तक आकर यह आधार लग भग डगमगाने लगा था । विज्ञान की चुनौतियों ने धर्म पर से व्यक्ति का मूल विश्वास उठाना शुरू कर दिया था । धर्म के प्रति पूर्णतः आस्थाहीन तो वह व्यक्ति का नहीं बना पाया है, पर धर्म को एक नितान्त व्यक्तिगत रूप उसने ज़रूर प्रदान कर दिया है ।"[140]

139· विज्ञान और मानव मूल्य शुकदेव प्रसाद, आजकल, पृ·28
नवम्बर 1982

140· आज के आदमी की नियति और आस्था की बिन्दु रघुवीर सिन्हा
नई धारा, पृ·3, सितम्बर-अक्टूबर 1975

विज्ञान की प्रगति ने धर्म को निरर्थक घोषित किया। धर्म के स्थान पर विज्ञान आसीन हुआ। लेकिन विज्ञान ने मानव को हृदयहीन कर दिया। अपने को आधुनिक और वैज्ञानिक घोषित करते हुए कई विचारकों ने धर्म के विरुद्ध प्रचार शुरू किया। भौतिकवादी, मार्क्सवादी आदि भी उन के साथ मिले। इस प्रकार धर्म अकेला पड गया। बाकी सभी विचारकों के पंजे में जकड कर दम घुटता रहा। बीसवीं सदी के अन्त तक पहुँचे, धर्मरहित नई पीढी के सामने अवतरित विज्ञान की आलोचना करते हुए शुकदेव प्रसाद ने ऐसा आरोप लगाया है

"विज्ञान ने हमें ऐटमी ताकत दी, पर साथ ही हमारे विवेक का भी नाश किया और हम अपना धर्म (मानव धर्म) भी भूल गये। मानवता छोडकर दानवता पर उतर आये और हैवानियत की आग में मानवता को जलाकर राख कर दिया। महाविज्ञानी - आईस्टाइन जापान के बम्कांड पर रो उठे थे और उन्होंने स्पष्ट कहा था - "मानव परमाणु शक्ति के योग्य नहीं हैं।" वस्तुत: ये हरकतें अमानवीय हैं, सभ्यता के नाम पर कलंक है, विज्ञान के अभिशाप है।"[41]

मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू पर धर्म का प्रभाव था। धर्म के नाम पर पुरोहित गण आम जनता का शोषण कर रहे थे। पाप-पुण्य के नाम पर जन्म से लेकर मृत्यु तक के प्रत्येक कार्य केलिए लोगों से दान के रूप में, फीस के रूप में गहने, गाय, रुपए, अन्न-वस्त्र आदि वसूल करते थे। सभी धर्म के प्रवर्तक इस केलिए आदी थे। ईसाई-धर्म के ऐसे ढोंग भक्ति करनेवाले पुरोहितों की हँसी उडाते हुए प्रभु यीशु ने यों कहा - "हे कपटी शास्त्रियों, और फरीसियो, तुम पर हाय, तुम चूना फिरी हुई कब्रों के समान हो जो ऊपर से तो सुन्दर दिखाई देती हैं, परन्तु भीतर मुर्दों की हड्डियों और सब प्रकार की मलिनता से भरी हैं। इसी रीति से तुम भी

141· विज्ञान और मानव-मूल्य शुकदेव प्रसाद - आजकल, पृ·27-28 नवम्बर 1982

ऊपर से मनुष्यों को धर्मी दिखाई देते हो, परन्तु भीतर कपट और अधर्म से भरे हुए हो ।"[142] धर्म-प्रचार के नाम पर अधार्मिक राह चलनेवाले पण्डित और पुजारी भी हैं । धर्म के नाम पर बेचारी युवतियों के साथ अन्याय करनेवाले पुरोहित गण भी हैं । इन की यंत्रणाओं के शिकार बनते भक्त धर्म से सदा केलिए मुख मोडने को बाध्य हो जाते हैं । इस प्रकार भक्ति का अपमान होता है । एक ओर धर्म के नाम पर रुपया कमाना शुरू हुआ, दूसरी ओर व्यभिचार बढा तो धर्म जनता के विरोध का विषय बन गया । इसी के साथ एक नौकरी स्वीकार करने के शीघ्रमार्ग के रूप में अभक्त लोग पुरोहित श्रेणी में आये । ऐसे वेतन-चाहे भक्त-वेषी अशुद्ध और अमान्य व्यवहारवाले कामवासना से पूर्ण लोगों को उपदेश देते हुए असली-भक्ति की परिभाषा करने का प्रयास बैबिल में इस प्रकार हुआ है "शुद्ध और निर्मल भक्ति यह है कि अनाथों और विधवाओं के क्लेश में उनकी सुधि ले और अपने आप को संसार से निष्कलंक रखें ।"[143]

पारिवारिक क्षेत्र में मूल्य विघटन

पिछले चार दशकों से नैतिक-मूल्य-विघटन के कारण समाज की हर संस्था एक मूल्यहीन जिन्दगी ढो रही है, पारिवारिक क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है । एक परिवार के सदस्यों को - याने माँ-बाप व उनकी सन्तान को, भाई और बहन को, पति और पत्नी को -

142· धर्मशास्त्र, मत्ती 23 27-28, पृ·35

143. "Religion that is pure and undefiled before God and the Father is this : to visit orphans and widdws in their affliction, and to keep oneself unstained from the world."
James 1:27, p.1134, The Holy Bible Revised Standard Edition - A.J. Holman Company, Philedelphia, 1962

प्यार व ममता रूपी रस्सी ही आपस में बाँधती है । इस प्यार और ममता के अभाव में, पारिवारिक रिश्तों में, ठण्डेपन, निर्जीवता, ऊसरता आदि दीख पडते हैं । आत्मीयता आज अलगाव में बदलती जा रही है । अतिसंपन्नता के आवरण में ढके हुए पारिवारिक जीवन में, रिश्ते मात्र औपचारिक बनते जा रहे हैं । सारी सुख-सुविधाओं से घिरे रहते हुए भी, अपने पारिवारिक जीवन से वे तुष्ट नहीं हैं । एक ही छत के नीचे सोने पर भी एक दूसरे से अजनबीपन का अनुभव कर रहे हैं । एक ही माँ-बाप के सन्तान होते हुए भी दुश्मनी की निगाह से आपस में देख रहे हैं । आत्म-सुख की अंधी दौड में बिस्तर बदलने में ही जिन्दगी की धन्यता को समझनेवाले पति-पत्नी अपने पारिवारिक जीवन तबाह कर रहे हैं । वासना-चक्र में पिसे हुए शादी शुदा मर्द और औरत अपने बच्चों का भविष्य भी बर्बाद कर रहे हैं क्यों कि असन्तुष्ट, बेचैन, दमघुटनेवाले परिवार में पलनेवाले बच्चे अपने माँ-बाप की नकली-प्रतिलिपियाँ होते हैं ।

समाज की लघु इकाई परिवार के सदस्यों में, वर्तमान-समाज में घटित होते सभी परिवर्तनों का प्रभाव पडना स्वाभाविक है । "परिवार" शब्द की कल्पना "लघु परिवार" से है जहाँ माँ-बाप, एवं उनकी दो या तीन सन्तान होंगे । याने माता-पिता, भाई-बहन, पिता-पुत्र या पुत्री, माता-पुत्र या पुत्री इन लोगों के आपसी सम्बन्ध में आये नाते का परिवर्तित रूप हमारी चर्चा का विषय है । अस्वतंत्र-भारत एवं स्वतंत्र-भारत दोनों जमाने के आपसी-सम्बन्धों में आकाश-पाताल का अन्तर है । माँ-बाप एवं गुरुजनों के प्रति जो पुरानी आदर-भावना कायम थी वह जड से उखाडी गई है । "पूज्य पिताजी" का स्थान एक निर्माण यन्त्र के रूप में हुआ है तो आदरणीय माता का स्थान, अनाज, गेहूँ आदि सुरक्षित रखने "बोरा" के रूप में । यन्त्र से उत्पादित चीज़ में यन्त्र की

छाप तो है अवश्य, लेकिन उस माल की क्रिय-यात्रा में आनेवाले नष्ट की जिम्मेदारी यन्त्र को नहीं है । उसी प्रकार अपने बेटे-बेटियों के अभिभावक होने के साथ साथ उनके पलने-बढने के मार्ग में मार्गदर्शक या संरक्षक रहने की जिम्मेदारी से कई मॉं-बाप हाथ धोते हैं । यहीं से पारिवारिक धरातल पर मूल्य विघटन शुरू होता है । सन्तानों के प्रति ममता, प्रेम, एवं वात्सल्य एक ओर पारिवारिक जीवन से नष्ट हुए हैं तो दूसरी ओर पुत्र-पुत्रियों को भी मॉं-बाप के प्रति आदर, श्रद्धा, प्रेम, आदि गुण प्रकट करना मालूम नहीं है ।

इस परिवर्तित मन:स्थिति का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्र-भारत के शिक्षा-पाठ्यक्रमों में पारिवारिक पवित्रता की महानता की प्रशंसा कदापि नहीं हुई है । मातृभूमि, मातृभाषा, देश-प्रेम, राष्ट्रभाषा, भाई-चारा, गुरुजन, माता,पिता, ईश्वर-भक्ति आदि विषयों को सिखाने के स्थान पर बच्चों के नन्हे हृदय पर विदेशी-भाषा, विदेशी-सभ्यता आदियों की महत्ता अंकित करने की जल्दबाजी, दर्शनीय है । बच्चे को अपनी माताजी का स्तन्यपान कराने के स्थान पर विदेशी कम्पनियों में बनाये जानवरों का सूखा दूध गरम पानी में मिलाकर बोतलों में भरकर पिलाने की प्रथा आ गई है जिस से माता के दूध से वंचित बच्चे में माता के प्रति विरोध बढने में क्या दोष है ? इसके साथ ही साथ अंग्रेज़ी भाषा-शिक्षण भी तीसरे साल से शुरू होता है । विदेशी-सभ्यता में रंगी गई किताबें, विदेशी बालकों का चरित्र, विदेशी वस्तुओं का भ्रम ये सब नवजात शिशु में जडें पकडती हैं । विदेशी साहित्य से परिचय प्राप्त करते, वहाँ की सडी विकृतियाँ सीखते उन बालकों में मातृभाषा, देश-भक्ति आदि का होना कहाँ तक समीचीन है ? विदेशी सभ्यता की सनक लगी हुई युवा पीढी को अपना पारिवारिक परिवेश यहाँ तक कि, अपने मॉं-बाप भी बेगान लगते हैं । परिणामत: परिवार में नई समस्याएँ उठ खडी होती है ।

परिवारों की अर्थ-पराधीनता या अर्थाभाव एक बडी समस्या है । महंगाई से बचने केलिए आधुनिक स्त्री नौकरी करने अपने घर से बाहर निकलती है । बच्चों का पालन पोषण, पति की सेवा आदि बातों में समय न मिलती युवति दफ्तरों की दुनिया में पहुँचते ही, वहाँ भी समस्याएँ उठती है । इसी प्रकार पुरुष भी नौकरी केलिए जाते हैं । इस प्रकार एक यांत्रिक जीवन बितानेवाला प्राणी बनकर मनुष्य जीवन जडमय बनता है । इस विषय पर विचार करते हुए "आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता" में ऐसा बताया गया है "आज के मनुष्य का जीवन, विशेष रूप से बडे नगरों में रहनेवाले व्यक्ति का जीवन मात्र जड दिनचर्या है । वह हर प्रात: उठ कर आफिस केलिए भागता है । एक बजे भीड भरी कैण्टीन में अपना "लंच" लेता है । शाम को फिर एक ही बस या लोकल से घर लौट आता है । लाखों की संख्या में बने एक ही ढंग के मकानों में से किसी एक में अपने छोटे से परिवार के साथ रहता है । त्योहार आने पर थोडा अधिक साफ धुले अच्छे वस्त्र पहनता है । अपने परिवार को लेकर सस्ता-महंगा मनोरंजन करने निकलता है जिस में उसे आनन्द कम झुंझलाहट अधिक भोगनी पडती है ।"[144] इस प्रकार एक अतृप्त वातावरण में आज का परिवार जीवन व्यतीत होता है ।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में आज परिवर्तन आ गया है । शिक्षा प्राप्त युवक और युवतियाँ बेकारी के इस युग में दाल-रोटी की समस्या का निवारण न कर पाने के कारण अविवाहित रहने को विवश हो जाते हैं । ऐसे कुछ एक युवक-युवतियाँ विवाह-पूर्व स्त्री-पुरुष सम्बन्ध केलिए विवश हो जाते हैं जो समाज के सामने घृणित कार्य माने जाते हैं । इस हालत के बारे में डॉ॰ नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने भविष्य में आनेवाली विपत्तियों पर प्रकाश डालते हुए यों लिखा है - "विवाह-पूर्व स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का एक मात्र कारण आनन्द प्राप्ति है । भारतीय समाज में विवाह पूर्व चोरी छिपे इन सम्बन्धों को मान्यता प्राप्त नहीं है ।

144. आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता डॉ॰कैलाश वाजपेयी, ज्ञानोदय, पृ॰18, सितम्बर-जून 1963-64

जो स्त्री-पुरुष विवाह-पूर्व चोरी-छिपे इन सम्बन्धों में उलझ जाते हैं, उनमें पुरुष भले ही बेदाग निकल जाय, स्त्री के जीवन पर ग्रहण लग जाता है।[145] विवाह-पूर्व स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध को हम व्यभिचार संज्ञा से पुकारते हैं, उस मूल्य विघटन की एक समस्या है दहेज प्रथा। युवतियाँ अक्सर इस का दोष भोगती हैं। शादी करने केलिए पुरुष को दहेज के रूप में आजकल लाखों की संख्या में रूपए और सोने के आभूषण देने पड़ते हैं। लेकिन यह एक नग्न सत्य है कि व्यभिचार में स्त्री को पुरुष रूपए देते हैं पुरस्कार या शुल्क के रूप में। इस प्रकार नौकरी के अभाव में या रुपए के अभाव में विवाह-पूर्व यौन-सम्पर्क अक्सर चलता है। अपने से कम शिक्षित और अनचाहे असुन्दर युवक या बूढे के साथ, दहेज के अभाव में बेचारी युवति की शादी हो जाने पर, अतृप्त जीवन बिताती युवति अपने पति से रूढ कर या छिपती छिपती और पति किसी कारण वश पत्नी से बिगड कर या गुप्त में, अन्य पुरुषों के या परस्त्रियों के साथ अवैध संबंध रखते देखते आये हैं। एक ही दफ्तर में काम करनेवाले पुरुष-स्त्रियों का अतिरिक्त संबंध इस का उदाहरण है। अलावा इसके पति या पत्नी शादी के बाद विदेश जाने पर, पडोसी के साथ, घर में रहे व्यक्ति का अनैतिक सम्बन्ध और विदेश गये उस का सम्बन्ध विदेश की स्त्री या पुरुष के साथ भी होता है। इस प्रकार स्वतंत्र-भारत में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में अवश्य परिवर्तन आ गया है। शादी-पूर्व-यौन-सम्बन्ध, शादी-शेष-पर-पुरुष-सम्बन्ध, अफसर, नेता, अमीर आदि को शरीर-समर्पण कर कार्यलाभ की चाह, एवं स्व-पुरुष या स्त्री से अतृप्त होकर पर-स्त्री-पुरुष सम्बन्ध इन सब ने हमारी पारिवारिक पवित्रता में कलंक लगा दिया है।

---

145. साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध
डॉ. नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी, पृ.48, प्र.सं.1985

विज्ञान की प्रगति ने भौतिक-सामग्रियों से हमारे ग्रामीण वातावरण को शहरीला कर दिया है । मादक-द्रव्यों के सेवन से एक विभाग के लोग बेसुध हो गए हैं । शराब, ताडी, गंजा, भांग, ब्रौन-शुगर न जाने क्या-क्या नाम हैं इनके जो परिवार की पवित्रता में अशांति के बीज बोते आ रहे हैं । इनके उपयोग में स्त्री-पुरुष भेद मिट गये हैं । स्कूल-कालेज के छात्र-छात्रायें इसके शिकार हैं । इनके सिवा गर्भ-निरोधक कई सामग्रियों का प्रचार भी विद्यार्थियों के मन में अनुचित व्यवहार केलिए प्रोत्साहित करते हैं । बच्चों के बीच के यौन-सम्बन्ध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए डॉ॰ नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने यह व्यक्त किया है "पति-पत्नी और बच्चे एक ही कमरे में जीवन-यापन करते हैं । फलस्वरूप पति-पत्नी के यौन-सम्बन्धों का कुप्रभाव बच्चों पर पडता है । ये बच्चे बडे होकर विवाह-पूर्व उन यौन-क्रियाओं को क्रियान्वित करते हैं जो उनके मस्तिष्क में पहले ही घर कर चुकी हैं ।"[146] स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के अनैतिक विकृत जानवर सदृश्य सभ्यता को प्रगति मानने वाले एक न्यून विभाग भी है जिन में जानेमाने साहित्यकार, ऊँचे ओहदों पर विराजनेवाले आदि आते हैं जिन के "अमृत वचन" में युवा पीढी को गुमराह करने की ताकत छिपी रहती है । उनके विचार में व्यभिचार सम्मानित है तथा व्यभिचार की सुविधा प्रदान करने की पुकार वे करते हैं भी । "नैतिकता के प्रयोग" में हम यह पढ सकते हैं जो इस प्रकार हैं - "मैं अपने अनुभवों से कहना चाहता हूं, जिस शहर में वेश्याएं नहीं होतीं या जहां खुली वेश्यावृत्ति की छूट नहीं होती, उस शहर में यौन-सम्बन्धों की नैतिकता हमेशा सन्देहास्पद रहती है । अपने लगातार अकेलेपन और मुक्त जीवन की स्वच्छन्दता ने मेरे विचारों के सारे द्वार खोल रखे हैं ।"[147]

146· साठोत्तर हिन्दी नाटक में स्त्री-पुरुष संबंध डॉ॰ नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी, पृ॰50, प्र॰सं॰ 1985

147· नैतिकता के प्रयोग रमेश बक्षी, नई धारा, पृ॰61, जनवरी-फरवरी 1969

ऐसी विचार-धाराओं की सर्व-सम्मति नहीं है । मनुष्य और जानवर में अन्तर अवश्य है । जानवरों में यौन-सम्बन्ध-सम्बन्धी कोई न्याय नहीं है । लेकिन मनुष्य में यह नियम है कि उसका सम्बन्ध कहाँ, किस के साथ, किस परिस्थिति में, कैसे किया जाना चाहिए । मनुष्य जीवन की महानता को स्पष्ट करते हुए "डॉ॰ रिचार्ड वन क्राफ्ट एबिन्ग" ने ऐसा लिखा "मनुष्य केवल कामेच्छा को तृप्त करने केलिए परिश्रम करता है तो वह स्वयं अपने को जानवर के समान बनाता है । लेकिन नैतिक-विचार, महत्वाकांक्षा, सुन्दरता आदि को ध्यान में रखकर अपने यौन-विकार को लगाम लगाने पर एक उन्नत स्थान तक पहुँच सकता है ।"[148]

पारिवारिक मूल्य-विघटन का दोष बहुत बड़ा है । परिवार से निकलते विघटित व्यक्ति समाज के विभिन्न क्षेत्रों - स्कूल, कालेज, दफ्तर, मन्दिर, राजनीति आदि में दोष अवश्य फैलायेंगे। व्यक्ति-व्यक्ति के रिश्तों में आये विघटन से समाज भी विघटित होगा। इस प्रसंग में देवेन्द्र इस्सर की राय बिल्कुल समीचीन लगती है "वैयक्तिक रिश्तों, और संयुक्त जीवन के विघटन के कारण मनुष्य एक ऐसी स्थिति से गुज़र रहा है, जिसे कई नाम दिए गए हैं - एकाकीपन, अजनबीपन, वैयक्तिक अलगाव, और एलियनेशन । और कई समस्याएँ पैदा हो गई हैं, जिन में नशापान, ड्रग्स का प्रयोग, मानसिक उलझनें और रोग, सामाजिक असमता और संघर्ष, कामोत्तेजना और हिंसा, अपराध और बाल-अपराधवृत्ति, आवारगी और सस्ता मनोरंजन अधिक महत्वपूर्ण है ।"[149]

148· Psychopathia Sexualis   Dr.Richard Von Krafftebing, p.29, U.S.A.,1965

149· साहित्य और आधुनिक युगबोध   देवेन्द्र इस्सर, पृ॰3, प्र॰सं॰1973

पारिवारिक नातों में आये मूल्य-शोषण का - स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में आये परिवर्तित रूप का - विशद अध्ययन अलग अध्याय में किया गया है ।

नैतिक मूल्यों के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों की पहचान और परख करने के बाद निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि किसी भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का महत्त्व अक्षुण्ण है । यह तो सही है कि मूल्यों में काल व देश के अनुरूप परिवर्तन अपेक्षित है । व्यक्ति और समाज केलिए मूल्यों की भूमिका इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इन से ये दोनों अस्तित्ववान रहते हैं, उनकी सुरक्षा, प्रगति और विकास के मुख्य उपादान भी हैं ये मूल्य । नैतिकता मानवीय जीवन का स्पृहणीय पहलू है, श्रेष्ठ एवं उदात्त मूल्य ही मनुष्य को नैतिक बल प्रदान करते हैं । मूल्यों की मौजूदगी के साथ साथ मूल्यों का विघटन भी हर युग में हुआ है । पुरानी परिकल्पनाओं, मान्यताओं और धारणाओं के विरोध में नवीन परिकल्पनाओं, मान्यताओं और धारणाओं का जन्म लेना सहज-प्रक्रिया है । हमारा वर्तमान जीवन परंपरित समाज-व्यवस्था से विलग होता हुआ एक नूतन सभ्यता में प्रवेश कर चुका है लेकिन खेद की बात यह है कि वर्तमान सभ्यता संकट में है । भौतिक उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ आज का व्यक्ति मूल्यबोध की दृष्टि से बिलकुल धराशायी हो गया है । अपने मूल्यबोध और इन्सानियत को दफ़ाने के बाद आदमी जो कुछ उपलब्धियाँ हासिल करते हैं वे सब के सब नाचीज़ और बेमूल्य हैं ।

विशिष्ट मूल्य बोध युक्त रचनायें कालजयी हुई है । समाज के प्रति जिम्मेदारी रखनेवाले सजग साहित्यकार कभी भी मूल्यों का हनन सह नहीं सकता । स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने अपनी रचनाओं को सामाजिक मूल्याभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना दिया है । आगामी अध्यायों में समाज के विविध क्षेत्रों में पाये जानेवाले मूल्य विघटन की विशद चर्चा की गई है ।

अध्याय - दो

बदलते पारिवारिक स्वरूप

बदलते पारिवारिक सम्बन्ध

समाज के सदस्यों के आपसी सम्बन्ध के अनुसार ही हम उनके जीवन की अस्थिरता या सुस्थिरता के बारे में समझ सकते हैं। परिवार समाज की लघु इकाई है जहाँ समान संस्कृति रखनेवाले, माँ, बाप, बेटे, बेटियाँ एक साथ रहते हैं। परिवार के सदस्यों का आपसी-मेल या एकता सुखी जीवन केलिए आवश्यक है। जहाँ सदस्यों के आपसी-मेल में हेर फेर होता है, वहाँ परिवार में विघटन या शिथिलता की प्रक्रिया शुरू होती है।

स्त्री और पुरुष समाज के दो प्रमुख सदस्य हैं। प्रपंच-सृष्टि और पुरुष सृष्टि के बाद, स्त्री की रचना के उद्देश्य के बारे में, परमेश्वर का कथन बैबिल में ऐसा लिखा गया है - "आदम (मनुष्य) का अकेला रहना अच्छा नहीं, मैं उस केलिए एक ऐसा सहायक बनाऊँगा जो उससे मेल खाए।[1]" स्त्री और पुरुष के सिवाय समाज की कल्पना

---

1. "And the Lord God said, 'It is n't good for man to be alone; I will make a companion for him, a helper suited to his needs."
   Genesis 2 : 18 (The Book, p.3)

असंभव है । इन दोनों के सम्बन्ध के विविध रूप हैं - पति, पत्नी, माँ, बाप, भाई, बहन, बेटा, बेटी इत्यादि । पुरुष,समाज में लड़का, युवा, पति, पिता इस प्रकार के विविध रूपों में अपनी भूमिका निभाता है, तो लड़की, युवति, पत्नी, माँ इस प्रकार के विविध रूपों में स्त्री को पुरुष का साथ देना है । बचपन में पिता की, यौवन में पति की और बुढ़ापे में पुत्र की देखरेख में सदियों से स्त्री का जीवन सुरक्षित है । उसी प्रकार पुरुष वर्ग की सुरक्षा बचपन में माताजी, यौवन में पत्नी और बुढ़ापे में बेटी या बहू करती आयी है । लेकिन जहाँ कहीं जो कोई अपने कर्तव्य से विचलित हो जाते हैं, वहाँ समस्यायें शुरू होती हैं जिसे हम "परिवार-विघटन" नाम से पुकारते हैं । समाज की लघु इकाई परिवार की स्थिरता केलिए, स्त्री-पुरुषों पर लागू किये नियंत्रणों का उल्लेख "विश्व विज्ञान कोश" में इस प्रकार मिलता है - "जब आदिम काल में मनुष्य ने खेती करके, दल दल में, एक साथ जीवन बिताना शुरू किया था, तब से ही उस की यौनासक्ति अराजकता की ओर फिसल न जाने केलिए समाज में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में नियंत्रण निर्धारित किये थे ।[2]"

युवावस्था में आये स्त्री-पुरुष के आपसी-अकेलापन की विरसता से उन्हें परस्पर सहायक बनाने केलिए शादी-व्यवस्था समाज-निश्चित है । विवाह से मुख्यतः दो कार्य सम्पन्न होते हैं - एक, जीवन-साथी को मिलना जो आपस में हर सुख-दुखों के हिस्सेदार बनना; दूसरा, आनेवाली पीढ़ी को बनाये रखने केलिए सन्तानों को जन्म देना । "मनुस्मृति" ने इस विषय पर ऐसा परामर्श दिया है -

---

2. विश्व-विज्ञान कोश (मलयालम), पृ॰980, भाग 9 (प्र॰सं॰1972)

"प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवा ।
तस्मात् साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः [3] ।।"

यह तो स्पष्ट है कि स्त्री-पुरुष परस्पर साथी तो हैं एक ओर, दूसरी ओर सन्तान के पालक भी हैं । इन में किसी एक को ही प्रधानता देने पर विवाह का मूल्य नष्ट होता है । अशिक्षा, अज्ञता आदि अनेक कारणों से वैवाहिक मूल्यों से दम्पति वंचित रहते हैं । स्वतंत्र भारत के सामने की सब से बडी समस्या - जनसंख्या की वृद्धि पर सोचने से मालूम होगा कि स्वतंत्रता के करीब निकट हमारी जनसंख्या चालीस करोड के लगभग थी, तो तैंतालीस वर्ष के अन्दर वह दुगुनी हो गयी । हमारे युवकों की, शरीर सम्बन्धी तथा यौन-सम्बन्धी जानकारी के अभाव से ही ऐसा हुआ है । सन्तानोत्पत्ति के यन्त्र के रूप में स्त्री का उपयोग हुआ तो पति के प्रति पत्नी के मन में ऊब होना स्वाभाविक है और उससे जनित कई समस्यायें पति-पत्नी के बीच सिर उठायी खडी हैं जिसे भी हम परिवार विघटन के नाम से पुकार सकते हैं ।

वैवाहिक जीवन पवित्र माना गया है, क्योंकि इसे "जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध या दो आत्माओं का चिर-मिलन मानते हैं । लेकिन व्यक्ति-स्वातंत्र्य, स्वतंत्र चिन्तन, स्त्री-शिक्षा, नौकरी, दहेज-प्रथा, सुखभोग की सामग्रियों की बढती, विज्ञान की प्रगति आदि अनेक कारणों ने शादी की धारणाओं को परिवर्तित किया है । अब विवाह-सम्बन्धी विचारों में बदलाव आया । स्वैर-यौनाचार, जीवन के कुछ वर्ष एक साथ रहने का समझौता, दो-देहों की काम-पिपासा की पूर्ति का उपाय आदि निम्न स्तरों पर विवाह की मान्यता उतर गई है । याने वैवाहिक जीवन की पवित्रता में पानी मिला देने की प्रवृत्ति सब कहीं दर्शनीय है जिन के कारणों पर हम विचार करेंगे ।

---

3. मनुस्मृति (मलयालम) पृ.409 (अध्याय 9:96)

स्वतंत्र भारत में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आये परिवर्तनों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ मानवीय रिश्तों में एक प्रकार की निर्जीवता निखरती है । पति-पत्नी में, पिता- पुत्र में, माँ-बेटी में, भाई-भाई में एक निर्जीव, चैतन्य रहित, आत्मीयता रहित, यान्त्रिक रिश्ता दर्शनीय है । जीवन मानों अर्थहीन हो गया है । प्यार, ममता, प्रेम, वात्सल्य, आदर, घनिष्ठता, मित्रता आदि शब्दों के अर्थ निरर्थक हो गये हैं और धीरे धीरे वे शब्द परिवार से गायब होते जा रहे हैं । घर के सदस्य एक प्रकार की क्रूर-मनोवृत्ति के वाहक हो गये हैं । परिवार के अंग, एक छात्रालय के सदस्य जैसे हो गये हैं । आज घर का अर्थ मात्र "बोर्डिंग" और "लाड्जिंग" तक सीमित हो चुका है । एक ही छत के नीचे सोनेवाले परिवार के सम्बन्धी आपस में बोलते तक नहीं हैं । पति-पत्नी के बीच में वहम के कारण वर्षों तक चुप्पी साधने की यांत्रिकता कहीं कहीं दर्शनीय है । पिछले चार दशकों में वैयक्तिक, बौद्धिक एवं नैतिक मूल्यों के विघटन के कारण, समाज की हर संस्था मूल्यहीन ज़िन्दगी का बोझ ढो रही है । पारिवारिक रिश्तों में दरारें पडने के कारण प्रेम और यौन-सम्बन्धी सनातन आस्थायें गायब होती जा रही हैं ।

विवाह - अमीरों का एक तमाशा

आजकल शादी एक खर्चीली संस्था बन गई है । जिस पिता के हाथ में लाखों की संख्या में रुपए खर्च करने को हैं उसकी पुत्रियाँ मात्र शादी मनाती हैं । जिस के पास धन दौलत नहीं है उस की पुत्रियाँ अविवाहित रहती हैं । दहेज ने युवक और युवति को पति और पत्नी बनाये है । इस से समाज में आनेवाली समस्याएँ अधिक हैं ।

हमारी पुरानी धारणाओं के अनुसार "विवाह के द्वारा पुरुष और स्त्री आपस में प्रेम सूत्र में बंधते हैं जिस से दोनों बराबर के स्तर पर पहुँच जाते हैं[4]।" लेकिन दहेज के अभाव ने बहुतों को अविवाहिता बनायी हैं।

लक्ष्मीनारायणलाल ने "रात रानी" के द्वारा दहेज की समस्या का विकराल रूप दिखाया है। कुन्तल और निरंजन की शादी रुपए के अभाव में न हुई है। कुन्तल का कथन इस का प्रमाण है "पति के घरवालों ने आठ हज़ार पूछे, पिता पाँच हजार से ज्यादा न देनेवाले थे, इस कारण शादी का स्वप्न टूट गया[5]।" निरंजन और कुन्तल ने प्रेम पत्र भेजे थे कई, दोनों ने शादी चाही भी, पर रुपए की खाई ने दोनों को अलग किया।

"छलावा के लालू और बेला तीन साल तक शादी का स्वप्न देखते हुए चले। रात में भी दोनों इधर उधर घूमते थे। यौवन के मद में चले उन दोनों के सामने दहेज एक बडी समस्या बन गयी, जिससे लालू ने एक अन्य युवति के साथ शादी की। इस विषय पर लालू का विचार कितना सच है "मेरे साथ ब्याह करके न वह खुद सुखी होगी और न मैं ही। फिर तुम्हीं बताओं कि ऐसे ब्याह से क्या फायदा। दूसरी तरफ बाबू नाराज़ होगा। बिजनैस तबाह हो जाएगा। मुझे मेरे बिजिनेस में रुपए की ज़रूरत हैं[6]।" यह तो एक सत्य है कि यौवन के आकर्षण में युवक और युवति प्रेम-पाश में फँस जाते हैं। शरीर संपर्क भी हो जाते हैं कभी कभी। लेकिन रुपए के सामने ये प्रेम और संपर्क नाचीज़ हो जाते हैं। याने रुपया ही प्रेम से बडा मालिक बन गया है।

---

4. "The love which bind us together in the same love which loves us equally and therefore makes us equals in our relations with each other."
A Christian method of Moral Judgment A. Philip Wogaman, p.95

5. रात रानी लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.40

6. छलावा परितोष गार्गी, पृ.15, प्र.सं.1961

दहेज प्रथा - नारी जीवन में अभिशाप

दहेज-प्रथा कई नारियों की जिन्दगी की सभी अभिलाषाओं को राख कर देती है । नारी जीवन केलिए सब से बडा अभिशाप बन चुकी यह प्रथा नारी के सामने एक पेचीदार समस्या के रूप में उसे निगालने केलिए अपना मुँह भाये खडी हुई है । अपनी बहू के दहेज की रकम और गहनों की हिसाब किताब लगाने में तुली बैठे सास-ससुर-ननद पति के बीच नरकीय यंत्रणा भोगनेवाली नारियों की संख्या आज बहुत हैं । उपेन्द्रनाथ अश्क ने ऐसी कुछ समस्याओं पर प्रकाश डाला है । "अलग-अलग रास्ते" की राज, अमीर ताराचन्द की पुत्री है । मदन के साथ उस की शादी हुई । लेकिन मदन ने एक विजातीय अनाथ गरीब, पर शिक्षित युवति सुदर्शन से शादी चाही थी । मदन के माँ-बाप दहेज-मोही होने के कारण दहेज लेकर "राज" के साथ मदन ने बे-मन से शादी की । बेचारी "राज" मायके चलकर बडी बहन "रानी" से अपनी दुख कथा यों कहती है "किसी बहुत पढी-लिखी लड़की से ब्याह करना चाहते थे, किन्तु एक तो उस लड़की के माता-पिता न थे, दूसरे वह ब्राह्मण न थी, इसलिए इन के माता-पिता तैयार न हुए । इन्होंने बहुतेरा समझाया, पर माँ ने उन सब कष्टों का वास्ता दिलाया, जो इन्हें पाल-पोस कर बडा करने में उसने सहे थे, और पिता ने उन सब मनीआर्डरों की रसीदों का ढेर लगा दिया, जो इन की शिक्षा के निमित्त वे हर महीने भेजते रहे थे । बारह हज़ार की रसीदें थी और वे चाहते थे कि उनका लड़का उन के इच्छानुसार विवाह करें ।"[7] "अलग-अलग रास्ते" में दहेज प्राप्त कर के शादी होने पर भी, पति से नवविवाहिता राज की उपेक्षा दर्शनीय है ।

---

7. अलग अलग रास्ते उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.83

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध प्रेम पर आधारित होता है । जब प्रेम-पलने केलिए रुपया मात्र एक माध्यम बन जाता है तब उनके नातों में आत्मीयता नहीं आएगी । केवल यांत्रिक जीवन बितानेवालों के रूप में पति-पत्नी बनेंगी । "अलग अलग रास्ते" की राज का हृदय-भेदक अनुभव इस का पोषक है । शिक्षित मदन से कम पढ़ी लिखी राज की शादी कराई गई थी । अपने माँ-बाप के, दहेज के मोह की अग्नि को शान्त करने केलिए मदन ने शादी की थी । राज के सामने मदन ने यह कहा भी था - "तुम्हारे अधिकार की नींव एक सामाजिक प्रथा पर टिकी है, हृदय से उस का कोई सम्बन्ध नहीं । सुदर्शन का अधिकार मेरे हृदय से संबंध रखता है । बारातियों, पण्डितों, पुरोहितों ने, हमारे माता-पिता ने, यज्ञ की अग्नि ने हमें एक दूसरे के शरीर सौंप दिये हैं, हृदय तो नहीं सौंपे[8] ।" नाटक में अश्क ने यह दिखाया है कि मदन के हृदय में जो सुदर्शन है वह विजातीय है, उसके माँ-बाप के दबाव के कारण, सामाजिक मान-मर्यादा की रक्षा के नाम पर, सजातीय नारी राज से बेमन से मदन ने शादी की है । नतीजा यह होता है कि राज के साथ रहते हुए भी मदन की हृदय-शय्या पर सुदर्शन विराजती है ।

नारी-शोषण

"अन्धा कुआ" की "सूका" की शादी "भगती" के साथ हुई । निर्दयी सूका अकारण पत्नी को मारता है । वेदना सहती सूका घर से भाग कर आत्म हत्या की कोशिश करती है । लेकिन पति उसे कुए से निकाल कर घर में बाँध कर मारता रहता है । बार बार मार खाकर वेदना सहती सूका कहती है - "इस से मेरी शादी हुई यह मेरा कसूर है, मैं भागी, पकडी गई । मुकद्दमा चला, उसे छोड कर

---

8. अलग अलग रास्ते उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.89, प्र.सं.1954

फिर इस घर में आयी, यह भी मेरा ही दोष है । मैं मरने भी गई तो मुझे अन्धा कुआँ ही मिला [9] ।" पुरुषों के शोषण की शिकार बनने-वाली नारी की ओर संकेत करते हुए, "डॉ॰ रिचार्ड वन" का कथन [10] सुका के सम्बन्ध में भी सार्थक है ।

नारी शोषण का चित्रण "अलग-अलग रास्ते" में मिलता है । एक नारी को तृप्त करने केलिए दूसरी नारी को कष्टतायें सहनी पड़ती है । मदन की शादी "राज" से हुई तो मदन की प्रेमिका "सुदर्शन" पीडा सहती है । लेकिन बहुत जल्दी "राज" को मालूम होता है कि उस के पति के मन में पत्नी के प्रति प्रेम नहीं है । हृदय में रहती प्रेमिका के प्रति मदन का प्रेम है । विवाहित होते हुए भी अविवाहित हालत में आग खाती राज अपने घर लौट कर पतिगृह की घटनायें सुनाती है । राज का भाई पूरन बडी बहन रानी से कहता है "इस देश में पुरुष कभी गलती नहीं करता, उसका कभी दोष नहीं होता । यहाँ कभी नारी गलती करती है । उसी का दोष होता है, और नारी का दोष उसी निरीह गाय के दोष जैसा है, जिस को उससे पूछे बिना, कसाई के हाथ में सौंप दिया जाय । वह कसाई उसे इक झटके में मार दे या तिल तिल कर उस की हत्या करे, भूखा मारे या चारे के भरे थान पर बाँध दे ।"..... [11]

---

9. अन्धा कुआँ लक्ष्मी नारायण लाल, पृ॰47

10. "Woman is a 'chattel', an article of commerce, exchange or gift,a vessel for sensual gratification, in implement for toil".
Psychopatia Sexualis Dr.Richard Von Krafft Ebing, p.30

11. अलग अलग रास्ते उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ॰101

नारी का बाँझ होना, उसके अभिशाप का एक कारण है। तभी पति द्वारा ताडना सहनी पडती है। लक्ष्मीनारायण लाल ने "अंधा कुआँ" के दम्पतियों - भगवती, सूका - के नरक जीवन के कारणों पर प्रकाश डालते हुए व्यक्त किया है कि "सूका" को "बाँझ" पुकारता हुआ, पति मारता है। गालियाँ और मार सहती सूका का दीन रोदन ऐसा है - "बुला लाओ गाँव भर को, सुन ले इस की बात। इजलास से छूटकर इस घर में आये हुए आज डेढ महीने बीत गये। तब से आज तक एक दिन भी न ऐसा हुआ होगा, जिस दिन इस ने मुझे मारा न हो। जो साडी पहने हुए इजलास से आयी थी, वही आज तक मेरे तन पर सड रही है। वही कमीज है। देखो, उपर से उसने मुझे मार कर ....[12]।

"आधे अधूरे" की "सावित्री" दफ्तर में नौकरी करने जाने के पहले घर के सारे काम करती है। घर के किसी अन्य व्यक्तियों को उसकी परेशानियों पर तनिक भी चिन्ता नहीं है। घर में पति है, बडा बेटा है, छोटी लडकी है, सब को खिला पिला कर नौकरी को भी जाना है। दूसरों से कोई आश्वासन न मिलने के कारण निराश वह कहती है - "यहाँ पर सब लोग समझते क्या है मुझे ? एक मशीन, जो कि सब केलिए आटा पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है ? और किसी के मन में जरा सा भी ख्याल नहीं है इस चीज़ केलिए कि कैसे मैं ....[13]।" अक्सर सावित्री और पति के बीच कलह होता रहता है। सावित्री अन्य पुरुषों के साथ किसी न किसी बहाना करके घूमने जाया करती है। इस पर पति-पत्नी में झगडा है। सावित्री की बडी बेटी अपने माता पिता के कलह के दृश्यों का वर्णन

---

12. अन्धा कुआँ लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.30
13. आधे अधूरे मोहन राकेश, पृ.49

"जुनेजा" से इस प्रकार करती है - "अंकल, मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिडिया घर के एक पिंजडे में रहती हूँ, जहाँ आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपडे तार-तार कर देना उनके मुँह पर पट्टी बाँध कर उन्हें बन्द कमरे में पीटना खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य देखते हैं इस घर में मैं ने।"[14]

ऊपर के उदाहरणों में पति से पत्नी पर होते शोषणों पर हम ने चर्चा की। समाज के अन्य सदस्यों से स्त्री-शोषण होता रहता है। "न्याय की रात" में एक अनाथ युवति के शोषण का चित्रण चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने अंकित किया है। हेमन्त और सदानन्द मिलकर लडकियों को कई प्रकार के कामों में फँसाने का चित्रण मिलता है। सरकारी अफसरों के पास लडकियाँ भेजकर उन्हें खुश करके सरकार के रुपए लूटनेवाले बडे बडे कान्ट्राक्टर लोगों का परिचय नाटक में मिलता है। लडकियों के दुरुपयोग के बारे में हेमन्त से सदानन्द का कथन इस का प्रमाण है - "लडकियों से काम निकाला जा सकता है लडकियों से खिलवाड किया जा सकता है लडकियों को आसानी से फँसाया जा सकता है उन्हें फटे पुराने कपडे की तरह जब चाहे उतार कर फेंक दिया जा सकता है[15] ....।"

---

14. आधे अधूरे मोहन राकेश, पृ.93

15. न्याय की रात चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ.81

आपसी समझौते का अभाव

विवाह से "दो आत्माएं" "एक-शरीर" बन जाती हैं । यद्यपि पति-पत्नी के शरीर अलग-अलग हैं, तो भी पत्नी के शरीर को पति अपना शरीर और पति के शरीर को पत्नी अपना शरीर मान लेते हैं । "सृष्टि के आरंभ में परमेश्वर ने पुरुष की पसुली से स्त्री की रचना की थी ।[16]" इसलिए शादी के द्वारा पुरुष और स्त्री एक देह बन जाते हैं । इसके बारे में बैबिल में ऐसा प्रतिपादन मिलता है "मनुष्य माता पिता को छोड़कर अपनी पत्नी से मिला रहेगा, और वे दोनों एक तन होंगे ।[17]" "उचित है, कि पति अपनी अपनी पत्नी से अपनी देह के समान प्रेम रखे, जो अपनी पत्नी से प्रेम रखता है, वह अपने आप से प्रेम रखता है ।[18]" पति और पत्नी जब एक ही देह के समान आपस में मान कर, हर एक को सुविधा प्रदान करने लगेंगे तो समरसता के साथ उनका पारिवारिक जीवन आगे बढ़ेगा । याने आपसी समझौते के साथ पति-पत्नी का जीवन वांचनीय है । दो परिवारों में, विभिन्न परिस्थितियों में रहे हुए दो व्यक्ति जब एक परिवार बनाते हैं तो समस्यायें उठना स्वाभाविक है । जब उन समस्याओं के बीच भी समरसता और आत्मीयता आती हैं तब समस्यायें भाप बन जाती हैं । पति-पत्नी के बीच आपसी समझौता असंभव महसूस होने के कई कारण हो सकते हैं । शिक्षा, उम्र, सभ्यता, आदि की समानता के अभाव मे पति-पत्नी के बीच में समस्यायें उठ सकती हैं ।

---

16. "The Lord God caused the man to fall into a deep sleep, and while he ws sleeping, he took one of the man's ribs and closed up the place with flesh. Then the Lord God made a woman from the rib,he had taken out of the man, and he brought her to the man". Genesis 2: 21-22 (Bible, p.3)

17. "A man will leave his father and mother and be united to his wife, and the two will become one flesh." Ephesians 5:31 (Bible p.1321)

18. Ephesians 5 28 (Bible page 1321)

पति और पत्नी की उम्र में अधिक अन्तर वांछित नहीं है। बूढे के साथ युवति की शादी होने पर दोनों में फूट पडना स्वाभाविक है। लक्ष्मीनारायण लाल ने इस समस्या को "सूर्यमुख" में दर्शाया है। कृष्ण की युवति पत्नी है वेनुरति। कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न वेनुरति के बराबर उम्रवाला है। बूढे कृष्ण की युवति पत्नी वेनुरति पुत्र-तुल्य प्रद्युम्न के साथ शरीर-संपर्क करती है। वेनुरति रुक्मिणी के सामने इस विषय पर साफ साफ कहती है - "प्रद्युम्न मेरेलिए एक अनिवार्य मनुष्य था जैसे मैं उस केलिए एक स्त्री थी।[19]" युवति की शादी वृद्ध के साथ होने पर इस प्रकार के अवैध संबन्ध होने की संभावना नाटककार ने यहाँ दर्शाया है। "चार यारों की यार" की बिन्दिया की शादी अपने से अधिक उम्रवाले और बीमार मास्टर सीता राम के साथ हुई थी। सीता राम के प्रारंभकालीन अपथ-संचार से वह बीमार पडा है। इलाज केलिए जब वह दिल्ली गया तो बिन्दिया ने "जीवन" नामक युवक को घर फंसाकर अपने वदन, छाती आदि दिखाकर उसे अपने साथ सोने को विवश किया। बिन्दिया "जीवन" से कहती है "मुझे कोई एतराज नहीं - आगे बढो, और कस लो मुझे अपनी बाहों में - तुम्हें ज़रूरत है एक औरत की और मुझे ज़रूरत है एक मर्द की, आओ, पालें अपनी अपनी सार्थकता।[20]"

पद और शिक्षा में पति और पत्नी की असमानता भी कभी कभी आपसी समझौते में बाधा डालती है। लक्ष्मी नारायण लाल ने ऐसे दम्पति से हमारा परिचय कराया है। "मादा कैक्टस" का प्रिन्सिपल अरविन्द ने अपने से कम पढी लिखी पत्नी सुजाता को छोड़कर गर्ल्स कॉलेज की प्राध्यापिका आनन्दा से प्यार करना शुरू किया। शादी रचे बिना, मनपसन्द स्त्री के साथ रहने के विचार को अरविन्द व्यक्त करते हुए कहता है - "आप से मैं ने कई बार कहा है कि किसी स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में

---

19. सूर्यमुख लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.68
20. चार यारों की यार सुशीलकुमार सिंह, पृ.30

ब्याह से भी बडी कोई चीज़ होती है । उस के सामने ब्याह तो महज एक बच्चों का घरौंदा है और घरौंदा भी ऐसा जो बहुत पुराना हो चला है।"[21] विष्णु प्रभाकर ने डाक्टर नाटक में इंजिनीयर सतीशचन्द्र शर्मा के परिवार के अलग होने की कथा व्यक्त की है । सतीशचन्द्र की पत्नी कम पढी लिखी मधुलक्ष्मी (अनीला) है । इंजिनीयर ने पत्नी को छोड दिया तो मधुलक्ष्मी डाक्टरी पढ कर एक नर्सिंग होम की डाक्टर बन गयी । डाक्टर बनी मधुलक्ष्मी के पास पूर्वपति की नवपत्नी चिकित्सा केलिए पति सतीशचन्द्र के साथ आती है । डाक्टर को सतीशचन्द्र "मधुलक्ष्मी" पुकारता है तो दादा कहता है - "मधुलक्ष्मी मर चुकी है, यह है डाक्टर अनीला और तुम्हारे केवल डाक्टर है।"[22] पत्नीकी /पत्नी शिक्षा पति इंजिनीयर से कम होना ही सतीशचन्द्र और मधुलक्ष्मी के जीवन के बिखराव का कारण था । पर पत्नी ने डाक्टर बन कर प्रतिशोध किया ।

पति से उन्नत पद पर पत्नी के पहुँच जाने पर भी परिवार में झगडा होना स्वाभाविक है । मन्नू भण्डारी ने "बिना दीवारों के घर" की नायिका शोभा के माध्यम से यह व्यक्त किया है । अजित ने शादी के बाद अपनी पत्नी को बी.ए. और एम.ए. तक पढाया । कुछ ही वर्षों के अन्दर शोभा जब एक कोलेज की प्रधानाध्यापिका बनी तब से उस घर की समस्यायें बढने लगीं । अपने पति के साथ बातें करना, उससे प्रेम पूर्ण बर्ताव, सब गायब हो गए । पति इस विषय पर कहता है "घर में घुसी, तब तो गुस्से का नाम निशान तक नहीं था चेहरे पर ।

---

21. सादा केक्टस लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.47

22. डाक्टर विष्णु प्रभाकर, पृ.130, प्र.सं.1963

मुझे देखते ही शायद गुस्सा ओठना पड रहा है क्यों ?"[23] उस गाँव के सब को मालूम है कि "जयन्त" नामक पुरुष से "शोभा" का जो सम्बन्ध है वही इस संघर्ष का कारण है ।

छोटी छोटी बातों को लेकर पति-पत्नी में अनबन हो सकता है । महँगाई के इस ज़माने में केवल एक के वेतन से जीविका चलाना असाध्य हो गया है । इसलिए शिक्षित युवतियाँ नौकरी करने केलिए जाया करती हैं । जिस घर के पति और पत्नी दोनों नौकरी करने सुबह निकलते हैं वहाँ दोनों मिलकर घर के कार्य संभालेंगी तो आसानी से काम बन जाएगा । यदि पत्नी घर का काम करके दफ्तर में जाती और सन्ध्या को आकर रसोई का काम करे, तब पति दफ्तर से निकलकर अपने दोस्तों के साथ गप्पें मारने, ताश खेलने, घर में आके अखबार पढने, टी॰वी॰ देखते देखते गरम चाय की चुस्की लेने में मात्र लगा रहता है तो ऐसे शौहर से पत्नी जल्दी तंग आएगी । "रात रानी" की कुन्तल पति की राय मानकर नौकरी करने जाती है । सुबह और शाम घर का काम भी कुन्तल करती है । लेकिन जयदेव ताश खेलता, ताडी पीता, मित्रों के साथ गप करते और होटल जाते रहता है ।[24] इस प्रकार कुन्तल और जयदेव के साथ संघर्ष बढता रहता है । लेकिन कुन्तल कभी भी अपना दायित्व नहीं भूलती और घर उजडने नहीं देती ।

"आधे अधूरे" में सावित्री अपने पति महेन्द्र को अधूरा व्यक्ति समझती है । समाज के अन्य पुरुषों के जैसे जिन्हें सावित्री श्रेष्ठ मानती है, हाव भाव और "टिप-टाप का अभाव सावित्री अपने पति में आरोपित करती है । इसलिए पूर्ण पुरुष की खोज में वह भटकती है जिस बीच पाँच पुरुषों के पीछे पड गयी भी है । सावित्री के दाम्पत्य जीवन में द्वन्द्व है ।

23· बिना दीवारों के घर मन्नू भण्डारी, पृ॰54

24· रात रानी लक्ष्मीनारायणलाल, पृ॰50

सावित्री और महेन्द्र के संघर्षपूर्ण जीवन के बारे में "डॉ॰ शरेश्चन्द्र चुलकीमठ" का मत ऐसा है - "साथ रहकर भी दूरी का अनुभव करना, परिचित होकर भी अजनबीपन की दहशत से पीड़ित रहना और एक दूसरे को सहने केलिए विवश होना उन की अनिवार्य नियति बन गई है। एक ओर अपनी जगह स्वतंत्र बने रहने की लालसा है, तो दूसरी ओर एक-दूसरे के साथ जूझते रहने की अनिवार्यता। वास्तव में पति-पत्नी किन्हीं परिस्थितियों में अलगाव को बनाये रखते हुए जीवन-यापन कर ही नहीं सकते। उसकी स्वतंत्रता की कल्पना भ्रममात्र है। क्योंकि सामाजिक संदर्भ में इस के कोई मानी नहीं है। वैयक्तिक धरातल और व्यापक स्तर पर क्रमश: प्राकृतिक तथा सामाजिक दृष्टि से पति-पत्नी का एकत्र रहना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।"[25] लेकिन पति के अभावों के साथ समझौता करने और संयम के साथ जीने की उसकी विवेक-शून्यता ने उसके बच्चों के भविष्य को बिगाड दिया।

"पैर तले की ज़मीन" की सलमा अपने पति के साथ समझौता नहीं कर पाती। क्योंकि शादी के पहले ही उसने डाक्टर से यौन-सुख पाया था। पूर्वानुभव की पृष्ठभूमि में अयूब से उस की तृप्ति नहीं है। इसलिए "झुनझुनवाला" के साथ भी उस का संपर्क है। शादी-पूर्व यौन सुख पायी सलमा केलिए पति के सिवा अन्य पुरुष के साथ का सम्पर्क पाप या बुरा महसूस नहीं होता है। इसलिए वह पति से समझौता करने को तैयार नहीं है। झुनझुनवाला भी अपने बचपन से राह भटका है। परिस्थितियों ने उसे ऐसा बनाया है। अपने दोषपूर्ण जीवन केलिए, चारों ओर के वातावरण को जिम्मेदार ठहराते हुए झुनझुनवाला कहता है - "मैं पैदा हुआ तो पहला मंत्र मेरे कान में फूंका गया था कि दुनिया में बडी मछली छोटी मछली को खाकर ही

25॰ मोहन राकेश का साहित्य - समग्र मूल्यांकन डॉ॰शरेश्चन्द्र चुलकीमठ, पृ॰175, प्र॰सं॰1989

जी सकती है । बडे होने के साथ साथ में ने जाल बुनने सीखे ।"[26] "झुनझुनवाला के व्यक्तित्व के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि उस की परिस्थिति ने उसे निर्लज्ज बनाया है । डॉ॰ शरेशचन्द्र चुलकीमठ ने "झुनझुनवाला" के जीवन-सिद्धान्तों पर विचार करते हुए ऐसा लिखा है "मनुष्य के चारों तरफ ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की गई है कि व्यक्ति दूसरों का शोषण किये बगैर स्वयं जीवित रह ही नहीं सकता । अत: झुनझुलवाला इंजिनीयर, सेठ॰ सरकारी कर्मचारी आदि को रिश्वत देता है और अपना काम बना लेता है । स्मगिलिंग करता है और खूब पैसा कमाता है । अपनी दौलत के बल पर वह लड़कियों को अपने साथ सोने केलिए मज़बूर भी कर सकता है और उसने किया भी है । ....[27]" उपर हम ने देख लिया कि बचपन से सीखी आयी आदत ने सलमा को अपने पति से समझौता करने नहीं दिया और झुनझुनवाला भी सीखी हुई आदत का आदी होकर मृत्यु तक भटकता है ।

लैंगिक-अधार्मिकता दिन-ब-दिन हमारे समाज में बढती जा रही है । उससे बचने के उपायों पर चर्चा करते हुए "यंग पीपिल आस्क" में इस प्रकार का परामर्श मिलता है :- "लैंगिक अधार्मिकता में गिरने से पहले अपने को बचाने केलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने मन पर नियंत्रण रखना चाहिए ।"[28]

26॰ पैर तले की ज़मीन मोहन राकेश, पृ॰108

27॰ मोहन राकेश का साहित्य - समग्र मूल्यांकन डॉ॰शरेशचन्द्र चुलकीमठ पृ॰188

28. To avoid sexual immorality yourself, you must lead your heart, ratherthan let it lead you." Young people ask, p.194

पारिवारिक रिश्ते में फरेब और बेईमानी

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में आयी हुई परिवर्तित मनोवृत्तियों पर और उनके दाम्पत्य जीवन में कालुष्य भरने के कई कारणों पर हमने विचार किया । एक प्रकार का "काला बाजारी" पति-पत्नी के बीच में कहीं कहीं चलता है । पति को घर के मालिक के रूप में और पत्नी को आदर्श देवी के रूप में मानती आयी धारणाओं पर पानी पड गया है । कहीं तीसरे आदमी के, और कहीं तीसरी औरत के रूप में पति-पत्नीके बीच में वहम बढ रहा है और झगडा भी । इन्के दोषों पर विचारने से यह स्पष्ट होता है कि माँ-बाप के झगडे को बच्चे ही भोगनेवाले हैं जिस से अराजकता पूर्ण वातावरण घर में पलता है ।

वर्तमान समाज में बच्चों और युवकों पर माँ-बाप काफी सावधानी नहीं देते हैं । पति व पत्नी अपनी अपनी राहों पर चलते हैं । इसलिए आनेवाली पीढी लक्ष्यहीन भटकती है । उनके असफल, लक्ष्यहीन, व निराशामय जीवन के कारणों पर प्रकाश डालते हुए "के. लोवल" ने अपना विचार व्यक्त किया है - "बचपन से लेकर यौवन काल तक अपने बच्चों को अभिभावकों से उचित प्यार, सुरक्षा, पद-प्रदर्शन, अंगीकार, पुरस्कार व दण्ड, नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की पक्की शिक्षा आदि यथा-समय मिलना चाहिए । इन के अभाव में उनका जीवन निराशमय और असफल बनता है ।[29]" "मोहन राकेश" ने साबित किया है कि आधे अधूरे" की सावित्री का ढीला-जीवन ही उसके बच्चों के भविष्य केलिए

---

29. "Among the most important frustrating environmental conditions are defective parent - children relationship (both in early years, and upto and including adolecence) in the sence that the parents fail to give the child the love, security, direction and acceptance that he needs inconsistence in the matter of praise and blame, rewards and punishments; and the failure to build up stable moral values." Educational Psychology and Children : K.Lovell,p.225

खतरनाक हो गया है । पति के रूप में घर में एक पुरुष के रहते हुए भी सावित्री का कामुक "मनोज" बीच बीच में आता है । लेकिन अम्मा के कामुक "मनोज" के ही साथ सावित्री की बडी बेटी बिन्नी भाग जाती है । याने पुत्री युवति बनने के बाद भी माता, पर-पुरुष-सम्बन्ध खुले रूप में घर पर रखती है । मनोज एक ही समय सावित्री और उस की बेटी बिन्नी दोनों के साथ यौन-सम्बन्ध रखनेवाला दुष्ट पुरुष है । मनोज के साथ भाग गई बिन्नी बाद में पति को छोड कर लौट आती है । सावित्री की छोटी लडकी बारह-तेरह साल की है जो कैसानोवा की कहानियाँ और स्त्री-पुरुषों की यौन सम्बन्धी-कथायें मित्रों से कहकर चलती है । सावित्री का युवा पुत्र अशोक अश्लील चित्र काटकर एकत्रित करता हुआ, बाजारू साहित्य पढता हुआ, पडोस की लडकियों के पीछे चलता हुआ फिरता है । इस घर में रहने से दम घुटनेवाला पति मित्र के घर गया है । इन्हीं दुर्गतियों का दोष सावित्री को ही है क्योंकि वह अधेड उम्र पहुँची माता है । उसकी सभी सन्तान यौवन में हैं । अपने पुत्र-पुत्रियों के सामने आदर्श जीवन बिताने के विपरीत एक-एक कामुक-पुरुषों के पीछे चलने की सावित्री की आदत ने उस घर को इस तरह बिगाड दिया है । सावित्री का यह दोष है कि उसने अपने पति की कमज़ोरियों को गिना, दूसरों को अपने पति से अच्छा माना । सावित्री यह भूल गई - "दो व्यक्ति समान रूप से बर्ताव या काम न कर सकते हैं । हर व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व है ।"[30]

---

30. "No two people act and react in exactly the same way. Each person has a unique personality."

Traditional Societies and Technological Change
George M. Foster, p.12

घर में पति के रहते हुए भी अन्य पुरुषों के साथ यौन-क्रिया केलिए भागनेवाली स्त्रियों का एक समूह नाटकों में है । "चार यारों की यार" की बिन्दिया इस का उदाहरण है । पति की आँख बचाकर कई रातों में वह पर-पुरुष-प्राप्ति केलिए भागती है । एक ही रात में अन्य चार पुरुषों के साथ खा-पीकर, शराबी रहकर उन चारों पुरुषों के साथ - एक के बाद दूसरे, तीसरे, फिर चौथे के साथ यौन-सम्बन्ध रखती बिन्दिया का अतृप्त आक्रोश इस प्रकार है -

"बहुत शरारती हो तुम लोग, गुदगुदी मचाये जाते हो ...., कुछ करते नहीं बुद्धू कहीं के नोंच डालो चीर डालो मुझे चिन्दिया चिन्दिया कर दो मेरी, लेकिन गुदगुदी मत मचाओ ।"[31] नाटक के पाठक को यह सन्देह होना स्वाभाविक है कि बिन्दिया किस लोहे की बनायी है ? लक्ष्मीनारायण लाल ने "करफ्यू" में "मनीषा" की सृष्टि की है जो "बिन्दिया से करीब मेल खाती है । "मनीषा" का पति अपने घर में है । लेकिन "मनीषा" रात के वक्त पर-पुरुष के घर पहुँचकर रसोई घर से फल लेकर खाती और उसी घर के मालिक को खिलाती है । वहाँ का पुरुष है गौतम । "मनीषा" गौतम का "टाई" खींचती है, बटन खोलती है, खेल तमाशा करती है, गौतम का हाथ पकड कर अपने साथ नचाती है । फिर वह रात में ही अकेली निकलती है । लेकिन वह पुलिस के हाथ पड गई । पुलिस स्टेशन से पुन: गौतम के घर आयी मनीषा कहती है उन्हें {पुलिस को} मेरे जिस्म पर कपडे अच्छे नहीं लग रहे थे । इसलिए उन्हें उतार दिया गया । इस के बाद जो कुछ हुआ वह कहना मुश्किल है । मैं ने अपने सारे जीवन में जितने लोगों के साथ शरीर-सम्बन्ध

---

31. चार यारों की यार सुशील कुमार सिंह, पृ.75
सं.1977

रखा उससे ज़्यादा एक घण्टे में ....[32]।" पुलिस स्टेशन के कई पुरुषों के साथ यौन सम्बन्ध रखी मनीषा कुछ ही मिनटों में गौतम के घर आकर उससे जो कहती है सो इस का पता देता है कि अब भी वह गौतम को उस केलिए न्योता देती है - "ओ, देखो, मैं लौट आयी, जहाँ मेरा दम घुटने लगा था, वहीं खुल कर साँस ले रही हूँ अब । जागो, आँखे खोलो, मेरे साथ मनमानी करो - मैं कुछ नहीं करूँगी, भागूँगी भी नहीं[33]।"

मोहन राकेश ने "आधे-अधूरे" में "सावित्री" की लैंगिक-आसक्ती का चित्रण किया है । सावित्री का पति है महेन्द्र । एक दफ्तर में काम करने वाली सविश्री अपने दफ्तर के तन्दुरुस्त एवं सुन्दर युवकों के साथ कई बार यौन-संपर्क कर चुकी है । अपने पति को "नकारा, लिज लिजा, चिपचिपा-सा व्यक्ति के रूप में वह पुकारती है । सावित्री के पति महेन्द्र की दयनीय हालत के बारे में कहने आया है जुनेजा । लेकिन सावित्री मित्र जगमोहन की गाडी में कहीं घूमने गयी है । सन्ध्या के समय "थक" कर आयी सावित्री के आरंभ कालीन जीवन मे पिछले बाईस साल के शादी-जीवन से परिचित जुनेजा यों कहता है - "इधर उधर नज़र दौडाती हुई कि कब कोई जरिया मिल जाय जिस से तुम अपने को उससे अलग कर सको । पहले एक दिन जुनेजा एक आदमी था, तुम्हारे सामने । जुनेजा के बाद वह था शिवजीत ...., उस के बाद सामने आया जगमोहन ऊँचे सम्बन्ध, जबान की मिठास, टिप-टाप रहने की आदत । पर शिकायत तुम्हें उस से भी होने लगी थी अच्छा हुआ वह ट्रान्सफर होकर चला गया यहाँ से, वरना... ....[34]।" नाटक से आगे हम समझ सकते हैं कि सावित्री अपने

---

32. करफ्यू लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.80, तृ.सं.1984

33. वही, पृ.78

34. आधे अधूरे मोहन राकेश, पृ.106

"अपूर्ण पति महेन्द्र की रिक्तता भरने केलिए जीवन के विभिन्न समयों में "जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत, मनोज, सिंघानिया आदि पाँच पुरुषों के साथ पाप पूर्ण जीवन बिता चुकी है। "सावित्री-सी एक नारी, बैबिल-कथा "सामरिया की स्त्री" में मिलती है । पानी-भरने आयी सामरिया स्त्री से यीशू ने बातचीत के बीच "तेरे पति बुला ला" ऐसा कहा । लेकिन उसने कहा कि मेरे पति नहीं है । उससे यीशू ने कहा "तू पाँच पति कर चुकी है और जिस के पास अब तू है वह भी तेरा पति नहीं[35]।" वास्तव में सावित्री की भी यही हालत है । पति को गिनने पर सावित्री के भी छः पुरुष हैं ।

मुद्राराक्षस ने "तिलचट्टा" में अपने पति को धोखा देनेवाली पत्नी "केशी" के जीवन पर प्रकाश डाला है । "केशी" का पति "देव" बिस्तर पर लेटते वक्त तिलचट्टा आकर तंग करने की बात बार बार करता रहता है । नर्स केशी और डाक्टर के बीच का सम्बन्ध पति को मालूम है । अपने पति से सुन्दर एवं स्वस्थ डाक्टर के साथ केशी का नाता सुदृढ ही है । पति के बार बार पूछने पर केशी ने कुछ एक सत्य बता दिया - "हम लोग पास वाले केबिन में चले गए थे"; "देव मुझे माफ कर सकोगे, मैं ने बच्चा गिराने केलिए इंजेक्शन ले लिया डाक्टर ने इंजेक्शन दिया कहने लगा, कूल्हे पर लगाऊँगा । मेरा चेहरा लाल हो गया । डाक्टर पाजी है । आधा घंटा लगा दिया था इंजेक्शन लगाने में । बलाउस मैंने पकड रखा था - उसने खींचकर फाड दिया था ...[36]।"

---

35. यूहन्ना 4:18 - धर्मशास्त्र, पृ.132

36. तिलचट्टा मुद्राराक्षस, पृ.72,74,75, प्र.सं.1973

मन्नू भण्डारी ने पति-पत्नी के नाते के बीच में "तीसरा आदमी" आकर "घर की दीवार हिला देने की घटना" "बिना दीवारों के घर" में स्पष्ट की है । अजित की पत्नी शोभा जब कालेज की प्रधानाध्यापिका बनी, तब से पति, पत्नी के सामने मूल्यहीन हो गया । जयन्त, साहनी, आदि पुरुषों के साथ शोभा संपर्क करती है । इस पर उस शहर के बच्चे बच्चे बताते हैं । अजित और शोभा के वार्तालाप के बीच अजित यह व्यक्त करता है:- "पर शोभा जी, जो बातें दिन के उजाले की तरह साफ है उनका अर्थ लगाने केलिए बैठकर मगज़मारी नहीं करनी पड़ती हैं, समझी ! बच्चा बच्चा जानता है कि जयन्त की वजह से तुम्हें यह नौकरी मिली है, उस लफ्गी साहनी को खुश करके नौकरी पक्की हुई है । जयन्त अपनी पत्नी छोड चुका है, वह अकेला है, और दोस्ती की आड में ... ।"[37] कुछ ही दिन के अन्दर प्रिन्सिपल शोभा अपने पति बच्ची और घर छोड्कर होस्टल में रहने जाती है । पति और पत्नी के बीच 'तीसरा आदमी' आकर उस घर की शान्ति समाप्त कर देती है । पडोस की स्त्रियाँ शोभा के ढीले जीवन की आलोचना करती हुई कहती है - "आज कल जिसे औरतों की हिम्मत कहते हैं, उसी की बात कह रही थी । औरत ज़रा सा अपने को ढीला छोड दे तो कहाँ की कहाँ जा सकती है । औरतें क्या, आज कल तो आदमी भी अपनी बीबियों के बूते पर तरक्की करना बुरा नहीं समझते । अजित को विदेशी कम्पनी में नौकरी मिलने में जयन्त ने सहायता की है ।"[38] अजित और जयन्त के बीच कलह होने के बाद भी शोभा जयन्त के घर जाकर अपने पति को लज्जित कराना चाहती है । इसके बारे में अजित जीजी से कहता है - "यह जानते हुए भी कि मेरा और जयन्त का झगडा हो गया है वह "शोभा" बराबर उसके यहाँ जाती रही, शायद यह

---

37. बिना दीवारों का घर मन्नू भण्डारी, पृ.91, द्वि.सं.1975

38. वही, पृ.90

दिखाने केलिए कि मुझ से अलग भी उसका व्यक्तित्व है । ,.... कौन सा पति इस अपमान को बर्दाश्त करेगा ?"[39] पति से रूठ गई शोभा की पुत्री अप्पी बीमार पड़ती है । पुत्री को देखने आयी शोभा पति के साथ कोप करती हुई लौट जाती है । लौट आते वक्त शोभा का वचन यह सूचित करता है कि उसने पति को त्याग दिया है अब पुत्री को भी छोड़ती है । "अप्पी" को साथ ले जाने आयी शोभा का कथन इस का प्रमाण है - "ठीक है मैं अकेली ही चली जाऊँगी । जहाँ मैं ने अपने भीतर की पत्नी को मारा है, वहीं अपने भीतर की माँ को भी मार दूँगी । बच्ची की कुर्बानी से यदि तुम्हारा अहं सन्तुष्ट होता है, तो उस मासूम बच्ची को भी कुर्बानी करो ।"[40]

"मोहन राकेश" ने "सलमा" और "झुनझुनवाला" के बीच के यौन-संपर्क में दुखी पति "अयूब" की पीडा दिखाई है । अयूब अपने मित्र पंडित से यों कहता है - "क्या तुम सोच सकते हो कि मियाँ बीबी के रिश्तों के बीच अगर कोई छाया भी आ जाए, तो क्या से क्या हो सकता है गलत मत समझना, मेरी बीबी की जिन्दगी में और कोई नहीं है, पर मेरे लिए वह कब्रिस्तान बन गई है और्त कब्रिस्तान क्यों बन जाती है ?[41] "पैर तले की ज़मीन" की सलमा के अनियंत्रित जीवन ने उसके पति अयूब को परस्त्रीगामी बनाया है तो "चार यारों की यार" के सीता राम के अनियंत्रित, शराबी, जीवन ने "बिन्दिया" को परपुरुषगामी और हत्यारा बनाया । बिन्दिया कहती है - "जिस स्त्री का पति हर रोज़ नशे में धुत होकर लौटे और अपनी पत्नी को बेज़ुबान जानवर समझ बेरहमी से पीटना शुरू कर दे लात, घूँसे, थप्पड या जो कुछ भी हाथ में आ जाए - जलती हुई लकडी, जूते या लोहे की राड .... कब तक सहती - आखिर कब तक

---

39. बिना दीवारों का घर - मन्नू भण्डारी, पृ.93

40. वही, पृ.105

41. पैर तले की ज़मीन - मोहन राकेश, पृ.45, तृ.सं.1982

एक दिन जब यह नारकीय यातना असह्य हो गई तो मैं चुपचाप अपने पति को हमेशा - हमेशा केलिए छोड कर अपनी माँ के यहाँ चली गई ।"[42]

"तिल चट्टा" में "देव-केशी" दम्पति के बीच एक काला आदमी है "डाक्टर" । अपने पति को बहकाकर नर्स-केशी, अस्पताल में अक्सर डाक्टर के साथ यौन-संपर्क करती है । बिस्तर पर लेटते वक्त तिल-चट्टों के तलवे पर चाटने की बात बार बार देव करता रहता है । रात में उनींदी पडे पति कई विचित्र आवाज़ें सुनता है चूहे के, तिलचट्टे के बारे में बोलता रहता है । फिर अपने बिस्तर पर सोती केशी से कई प्रश्न पूछता है । पति के बार बार पूछने पर केशी ने डाक्टर के साथ के अपने यौन-संपर्क की कथा सुनायी । निराश देव ने आत्महत्या के विचार से अलमारी से नींद की दस गोलियाँ एक साथ खायीं । अपनी दयनीयता व्यक्त करता हुआ उसने केशी से बैबिल का "मत्ती रचित सुसमाचार" के तेरहवें अध्याय पढने को कहा । केशी इस प्रकार पढती है - "उसी दिन यीशु घर से निकलकर झील के किनारे जा बैठा उसने उनसे दृष्टान्तों में बहुत सी बातें कहीं एक बोनेवाला बीज बोने केलिए निकला कुछ पत्थरीली भूमि पर गिरे जहाँ उसे बहुत मिट्टी न मिली और गहरी मिट्टी न मिलने के कारण वे जल्द उग आये, पर सूरज निकलने पर वे जल गये और जड न पकडने से सूख गये ।"[43] यहाँ केशी-देव के बीच डाक्टर पत्थर और झाडी के रूप में रहने के कारण देव का जीवन जड पकडे बिना सूख रहा है ।

---

42. चार यारों की यार सुशील कुमार सिंह, पृ.9-10

43. तिलचट्टा मुद्राराक्षस, पृ.87-88, प्र.सं.1973

मुद्राराक्षस ने स्टेनो "कंचन रूपा" और पति "तीसरा क्लर्क" के दाम्पत्य जीवन की चुप्पी और उससे जनित समस्या पर विचार किया है । पाँच वर्ष के पारिवारिक जीवन में उन दम्पतियों ने बच्चे बनने के भय से यौन-क्रिया को छोड दिया । लेकिन नाटक में हम देखते हैं कि उसी दफ्तर के अफसर के साथ स्टेनो का यौन-सम्बन्ध है । स्टेनो को अपने कमरे में बुलाते ही अफसर के सामने कपडे उतार कर लेटनेवाली "कंचन" के ही शब्द हम सुन सकते हैं - "मैं समझी थी कि आप अभी कुछ करेंगे ।"[44] इसके उत्तर में अफसर का वार्तालाप ऐसा है "रूपा, तुम्हें याद है सुबह हम ने यहाँ इस मेज़ के पीछे लेट कर करने की कोशिश की थी क्या हुआ था जानती हो ....[45] ।" अफसर के कमरे में सदा रहनेवाली "कंचल रूपा" वहाँ के सभी नौकरों के सामने हँसी का विषय है । खिडकी से, दर्वाज़े से, दरार से एक एक क्लर्क अफसर के कमरे के अन्दर के रहस्य देखता रहता है । अपनी पत्नी के, अफसर के कमरे में बार बार जाने के बारे में पति भी चिन्तित है । अफसर के कमरे में अपनी पत्नी और अफसर के प्रेमालाप चलते समय ही पति तीसरा क्लर्क गले में फंदा डालकर आत्महत्या करता है । आत्महत्या के पहले उस का कथन यों है "मैं ने रूपा से शादी कर ली है । फिर मैं ने कई रोज़, यानी मैं रूपा के साथ और फिर मैं ने सोचा.... हमने तय किया कि हम करेंगे कुछ नहीं । करने से बच्चा आ सकता था ....[46] ।" ऊपर हम ने देख लिया कि अपनी पत्नी और अफसर के साथ के यौन-संपर्क से दुखी "क्लर्क" आत्महत्या करके पत्नी के मार्ग से सदा केलिए हट जाता है ।

---

44. योअर्स फेथफुली मुद्राराक्षस, पृ.48
45. वही, पृ.78
46. वही, पृ.87

लक्ष्मी नारायण मिश्र ने "आधीरात" की मायावती के परिवर्तित मनोभाव को व्यक्त करते हुए यह स्पष्ट किया है कि स्वतंत्र चिन्ता ने हमारी सभ्यता को बेमूल कर के मनुष्य को पशु जैसा बनाया है । मायावती कहती है - "संस्कार बदल जाने से स्वभाव तो बदल ही जाता है । मनुष्य का संस्कार जब तक नहीं बिगड़ता, उससे कोई बुराई होती नहीं । इस स्वतंत्र युग के वायुमण्डल में मनुष्य के सभी बन्धन टूट गये । बन्धन टूट जाने पर पशु जैसी मनमानी करने लगता है, मनुष्य भी वही कर रहा है और उसी का नाम है शिक्षा, सभ्यता और स्वतंत्रता ।"[47] उपर के सभी नाटकों के पात्र लैंगिक-अराजकता के शिकार हैं जो जानवर जैसी यौन-क्रिया केलिए मनमानी दौड़ती हैं ।

"लैंगिक-अराजकता" के सम्बन्ध में सोचते समय "हैपरेस्तेस्या" Hyperesthesia या "बढ़ी हुई लैंगिक-चाह" विषय पर डॉ॰रिचार्डवन क्राफ्ट एबिंग" का मत खोजना अनिवार्य है । वे कहते ह" "हम को यह मान लेना चाहिए कि यौनिक-तीव्रता की बढ़ती या घटती, व्यक्ति के लक्ष्यहीन जीवन, वय, शरीर क्रम, जीवन-रीति आदि तन्दुरुस्ती व रोग-सम्बन्धी कई कारणों पर निर्भर रहता है । यौवन के आरंभ से होकर धीरे धीरे एक निश्चित उम्र तक, याने बीस वर्ष की उम्र से चालीस तक की अवधि में यौन-विकारों की तीव्रता रहती है । वह फिर धीरे-धीरे मन्द पड़ती रहती है । शादी-जीवन इस विकार पर नियंत्रण रखता है । लेकिन कई व्यक्तियों के साथ यौन-संबंध रखने पर लैंगिक-तीव्रता बढ जाती है ।"[48]

47· आधीरात : लक्ष्मीनारायणमिश्र, पृ॰83

48. "We must concede that the degree of sexual-desire is subject to rise and fall in the untainted individual, according to age, constitutional conditions, mode of life and the various influences of health and illness of the body, etc. Sexual desire rapidly increases after puberty, until it reaches a marked degree; it is strongest from the twentieth to the fortieth year, and then slowly decreases. Married life seems to preserve and control the instinct. Sexual intercourse with many persons increases the desire."
Psychopathia Sexualis Dr.Richard Von Krafft Ebing, p.101

नारीत्व की सार्थकता को मातृत्व की अपेक्षा काम-सुख में खोजनेवाली नारी की मानसिकता की छानबीन सुरेन्द्रवर्मा ने "सूरज की अन्तिम किरण से पहली किरण तक" में की है । आत्मसन्तोष की अन्धी दौड में एक से अधिक पुरुषों के पीछे भटकनेवाली नारियों की कमी हिन्दी नाटकों में नहीं है । रमेश बक्षी की देवयानी बार बार बिस्तर बदलने में जिन्दगी की सार्थकता समझती है । वह भी मातृत्व को कोसती है, माँ बनना उस केलिए सुखद नहीं, भयावह है । कई प्रेमियों के साथ यौन-सम्बन्ध रखनेवाली देवयानी उन्मुक्त कामवासना का समर्थन करती है और उसका कहना है कि शादी केवल एक पास है जिसको केवल हाथ में रखने से खुले आम घूमने का एक सर्टिफिकट मिल सकता है । सेक्सुअल कर्ज से पीड़ित युवतियों का परिचय सुशीलकुमार सिंह के 'चार यारों की यार', मुद्राराक्षस के 'गुफायें', 'सन्तोला', 'तेन्दुआ, लाल के 'कर्फ्यू' आदि नाटकों में मिलता है । उन्मुक्त कामवासना के चित्रण के मूल में कुछ नाटककारों का मकसद पाठकों और दर्शकों को चौंकाना है, तात्कालिक लाभ उठाना है, अतः इस दिशा में उनका प्रयास सराहनीय न माना सकता । लेकिन जहाँ नाटककारों ने नैतिकता के घातक मूल्यों का विरोध किया है वहाँ उनका प्रयास कम सराहनीय नहीं ।

प्राप्त के प्रति ऊब और अप्राप्य के प्रति आकर्षण

आज का मानव वर्तमान काल में जीने के बजाय भविष्य का स्वप्न देखकर घूमनेवाला है । अपने सामने जो कुछ यथार्थ है उसे देखे बिना सुदूर से आनेवाले की प्रतीक्षा में सागर तट पर बैठता है । इसी चाहने भारत को गुलामी की बेडी पहनायी थी । विदेश से आये हुए ब्रिटीशों को हमारे पूर्वजों ने दोनों हाथों से स्वागत किया, वे अन्त में भारत की सलतनत पर बैठ गये । आज विदेशियों को भारत से

निकालने के बाद भी हमारी दृष्टि विदेश में है । वहाँ, उनके देशों में जाकर उनकी गुलामी स्वीकार करने की दौड में अनेक युवक तैयार हुए हैं । भारत की भाषा के स्थान पर अंग्रेज़ी को स्थान दिया है आज भी । भारतीय पोशाक के स्थान पर विदेशी पोशाक सर्वमान्य है । इसी प्रकार हमारे पारिवारिक नातों में भी विदेशी सभ्यता की झलक निखरती है । पति को परमेश्वर मानती आयी पुरानी नारी के स्थान पर पति केवल पुरुष बन गया है । पुरुष के पद-चिह्न बचाकर पीछे से चल आयी नारी अब पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती है तो अच्छा हुआ । पुरुष और नारी में आयी परिवर्तित मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालने से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर अपने पति से या अपनी पत्नी से ऊब कर अन्य पुरुष या स्त्री से सम्पर्क करते दम्पतियों की संख्या वर्तमान समाज में बढ़ती जा रही है । कई नाटककारों ने इस सड़ी कुरीति को दर्शाया है । सभ्य कहलानेवाले एक फैशनबिल वर्ग इसके पोषक हैं ।

घर में अपनी पत्नी के रहते हुए भी अन्य स्त्रियों के साथ यौन-संपर्क करनेवाले पुरुषों के उदाहरण कई मिलते हैं । डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल ने, पत्नी के साथ अविश्वास करते पुरुष के रूप में "व्यक्तिगत" के नायक "मैं" को दिखाया है । "मैं" की पत्नी "वह" है । लेकिन कई महिलाओं के साथ "मैं" यौन-संपर्क स्थापित करता है । अपने राह-भ्रष्ट-चलन का समर्थन करता हुआ "मैं" कहता है कि "मैं कहता हूँ, मैं जी रहा हूँ । बाहर मैं ने इतनी तरक्की की, और अभी बहुत तरक्की करूँगा, क्योंकि यह मेरी इच्छा है । क्या मैं अपनी वाइफ के संग नहीं जी रहा हूँ ? मैं इन्हें कितने रूपों में देखता हूँ । एक में अनेक स्त्रियाँ..... सिर्फ एक ही स्त्री से ज़िन्दगी नहीं कर सकती क्योंकि मनुष्य प्रकृति से पोलीगेमस है - बहुस्त्रीवादी । मगर वह इधर तमाम आर्थिक और सामाजिक दबाओं से मजबूर होकर मोनोगेमस - एक

पत्नीवाला बन कर रहने लगा है । मैं अपनी पत्नी को जो इतने विविध रूपों में देखता हूँ न, वह इसीलिए कि मेरे पुरुष रक्त में जो पोलीगेमी के कीटाणु हैं उन्हें शान्त कर सकूँगा और इन के साथ जिन्दगी जी सकूँ ।"[49]

"वामाचार" नाटक का पुरुष पात्र पाजिटीव विकृत आदत का आदी है । समाज की सभी मान्यताओं के विरुद्ध आचरण करने केलिए शायद उस की सृष्टि हुई होगी । वह विवाहित है । लेकिन पत्नी के अलावा कई लडकियों से यौन-सम्पर्क का चित्रण नाटक में कई स्थानों में दिखाया गया है । पाजिटीव की पत्नी आकर पति से कहती है "तुम्हें एक औरत में एक ही परमानन्द मिलता है । दूसरे परमानन्द केलिए किसी और के पास जाना पडता है ।"[50] व्यक्तिगत का "मैं" और वामाचार का "पाजिटीव" दोनों दाम्पत्यजीवन में एक पत्नी से तृप्त नहीं हैं । दुनिया की कई स्त्रियों के साथ जहाँ तक हो सके यौन-सम्पर्क स्थापित करने में दोनों की सफलता है । "पाजिटीव" से "नगटीव" जब बातें करता है तो "नगटीव" यह व्यक्त करता है "आप बीस शहर बदले । चार बीबियों को छोडा । तेरह लडकियों को पटाया - चार बॉस को पीट चुके, ग्यारह नौकरी छोड चुके, काला रुपया लिया, जो भी लड़की मिली, उसके शरीर के किसी न किसी हिस्से को ज़ुरूर छुआ ।"[51] पाजिटीव के ही वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कि दूसरी स्त्रियों के साथ नाता स्थापित करने में उसे कोई लज्जा नहीं है । जहाँ तक हो सके अपनी जाल में दूसरी को फँसाने केलिए वह कई उपाय सोचता है । "यामिनी" नामक बीस-बाईस साल की युवति से उसका वार्तालाप इस का पोषक है "क्या है लगत ? यह मैक्सी गलत है, खुले बाल गलत हैं । मेरे सफेद कपडे

---

49. व्यक्तिगत लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.50-51, प्र.सं.1975

50. वामाचार रमेश बक्षी, पृ.42, प्र.सं.1977

51. वही, पृ.49

गलत हैं । यदि ये गलत नहीं हैं तो तुम्हारा मेरे साथ बिस्तर पर लेटना भी गलत नहीं है ।[52]" "पैर तले की ज़मीन" में कई स्त्रियों के साथ यौन-संपर्क करनेवाले "झुनझुनवाला" के चरित्र को प्रस्तुत किया है । परिचित, अपरिचित, मित्र-मंडली आदि कई प्रकार की स्त्रियों से उसका सम्बन्ध है । भ्रष्ट चरित्र एवं परस्त्री-गामी झुनझुनवाला अपनी मृत्यु के समय जो कहता है वह इस का परिचायक है "मैं आज तक सैकडों जवान लडकियों के साथ सोया हूँ । उनकी मर्ज़ी से नहीं अपनी मर्ज़ी से । अपने दोस्तों के घरों को भी मैं ने नहीं छोडा ।[53]"

"पैर तले की ज़मीन" में स्त्री-पुरुषों के विकृत यौन-सम्बन्ध की ओर प्रकाश डाला गया है । "झुनझुनवाला", "अयूब" आदि का जीवन व्यभिचार करने केलिए ही इस पृथ्वी पर हुआ है । संसार-भर की सभी लडकियों से, उनकी अनिच्छा रखने पर भी यौन-संपर्क करने की कोशिश में व्यस्त झुनझुनवाला मित्र अयूब की पत्नी सलमा को भी नहीं छोडता है । सलमा का पति अयूब भी सलमा के ही रास्ते पर चलता है । कुंठा ग्रस्त अयूब का कथन इस सत्य की ओर संकेत करता है कि पत्नी अन्य पुरुषों के पीछे पडती है तो पति भी परस्त्री-गमन कर सकता है । वह कहता है - "मुझे एक औरत चाहिए । औरत जो मौत के खतरे के बावजूद मेरा साथ दे सके ..... ।[54]" अयूब अपनी पत्नी के सामने ही लडकी रीता को बलात्कार करने लगता है, तो रीता कहती है - "हाँ ये सब जानवर ही हैं । हाँ एक को मैं ने जान से मार दिया होता, क्योंकि उसने .... कोशिश की थी मुझे ।, मैं उसे अपने से परे हटा रही थी और वह जानवर उसे अपने पास बुलाना चाहता था । वह चाह रहा था कि मरने से पहले

---

52. वामाचार - रमेश बक्षी, पृ.19
53. पैर तले की जमीन मोहन राकेश, पृ.108, तृ.सं.1982
54. वही, पृ.80, तृ.सं.1982

एक बार   चाहे कुछ भी हो   सिर्फ एक बार ..... ।"[55]
इस समय सलमा आकर पति को पकड़कर रीता को बचाती है ।

"चार यारों की यार" के सभी पात्र विकृत-व्यक्तित्व रखने वाले हैं । समाज में जितनी बुरी समस्यायें हैं शायद सब इस नाटक में हैं । यौन-रोग, शराब सेवन, व्यभिचार, हत्या आदि सब इस में सुशीलकुमार सिंह ने प्रतिपादित किये हैं । इस के मूल कारणों की परख करने से यह मालूम पड़ता है कि सीता राम के पिता ही इस का दोषी है । सीता राम के बचपन की याद करता हुआ वह जो कहता है, ध्यान देने योग्य है - "जब मैं छोटा था, तभी से तभी से कुछ ऐसी बुरी आदतें पड गई थीं .... बुरी आदतों के संस्कार जन्म से ही मिले थे । मेरे पिता बहुत ही कामी और निर्लज्ज व्यक्ति थे मां के साथ खुले आम   कई बार तो मेरे सामने ही   मैं तीन या चार साल का था   थोडा बडा हुआ, पढने-लिखने लगा तो उनके तकिये के नीचे से, चादर के नीचे, कोट की जेबों में   अश्लील चित्रों वाली किताबें दिखाई दे जाया करती थी   एक बार देख लिया तो चस्का पड गया । छुप छुप कर पढने लगा । नतीजा यह हुआ कि बहुत कच्ची उम्र में ही   मुझे वह रहस्य मालूम हो गया जो बडे होकर भी हमारे समाज में बहुत से लोगों को मालूम नहीं पड पाते । मैं नहाती औरतों को देखने में भी दिलचस्पी लेने लगा छोटी बच्चियों से खेलने लगा । कामना न बुझती तो जहां एकान्त ...., एक आध बार रंडियों के कोठे पर भी गया   धीरे धीरे मैं खाली होता गया   खोखला होता गया   और आज इस हालत में ..... ।"[56] सुशीलकुमार सिंह ने यह साफ साफ समझाया है कि सीताराम को विरासत के रूप में अपने निर्लज्ज पिता से यौनासक्ति मिली थी

---

55. पैर तले की ज़मीन   मोहन राकेश, पृ.84, तृ.सं.1982
56. चार यारों की यार   सुशील कुमार सिंह, पृ.22,23

जिनका व्यापार करते करते वह हर दिन अग्रसर होता रहा । फलस्वरूप वह रंडियों के संपर्क में गया, यौन-रोग से एक ओर पीड़ित है, दूसरी ओर "अपनी पत्नी के चार यारों" से तंग भी हुआ । रोग की कठिनता से मरने से पहले सीताराम को पत्नी के यारों से झगड़ना पड़ा । रात में लौट आये सीताराम ने दर्वाज़ा खटखटाया तो बिन्दिया खुले वक्ष मे, बिना साड़ी पहने आती हुई कहती है - "होगा साला कोई मोहल्लावाला जो कुछ करती हूँ अपने घर पर करती हूँ किसी को बुरा लगे तो वह भी करे अपने घर पर वह सब जो मैं करती हूँ ....[57] ।" दर्वाजे खोलते ही सीता राम ने बिन्दिया के साथ के चारों पुरुषों को देखा, वह पत्नी को मारने लगा तो चारों ने मिल कर सीताराम की हत्या की । मृत पति को लात मारती हुई बिन्दिया ने कहा - "ओ मास्टर की औलाद, क्या कीड़ों की तरह बिजबिजा रहा है ? धोखेबाज भड़ुए, तू ने मेरी जिन्दगी बर्बाद की है । अगर तू मुझे अपनी मर्दानगी दिखाने केलिए ब्याह कर नहीं लाता तो क्यों मुझे अपनी आग बुझाने केलिए चार चार यार रखने पड़ते ......[58] ।"

लक्ष्मीनारायण लाल ने "व्यक्तिगत" के पुरुष "मैं" के अनियंत्रित जीवन की ओर प्रकाश डाला है । स्त्री-"वह" पति के दुचाल से अनजान नहीं है । इसलिए ही "वह" कहती है - पकौड़ी के साथ चाय अच्छी लगती है, जैसे नौकरी के साथ शादी[59] ।" प्यास लगते समय चाय पीना और भूख लगते समय पकौड़ी सहित चाय पान करना, चाहे जिस दुकान से भी हो इतना-मात्र है पति "मैं" केलिए यौन-संबंध-सम्बन्धी विचार जिस की सूचना "वह" अपने "मैं" के बारे में देती है । अपने पति "मैं" में "वह" अब दो स्त्रियों को देखती है

---

57. चार यारों की यार सुशील कुमार सिंह, पृ.76

58. वही, पृ.79

59. व्यक्तिगत लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.52

जिसकी सूचना उस के ही वाक्यों में ऐसा है - "शादी से पहले मेरे दिल में सिर्फ एक पुरुष हुआ करता था - "प्रेमी साथी जिस के साथ मैं जी सकूं .... गो करती जाउं.... फिर शादी के बाद मेरे दिल में उस पुरुष की जगह दो स्त्रियाँ आ बैठीं - एक मैं और दूसरी श्रीमती आनन्द .....।"[60] स्त्री की प्रतिनिधि "वह" पुरुष का प्रतिनिधि "मैं" से अन्याय सहती है, जिससे "वह" का जीवन निराशामय है । अपने पति के अन्य स्त्रियों के साथ यौन-संपर्क करने जाने पर हर पत्नी को मानसिक आघात होना स्वाभाविक है । पत्नी के जीवन में असुरक्षा बोध व बिखराव होता है । इसलिए "वह" कहती है - "मैं देख रही हूँ, एक सम्पूर्ण आइना था, जो टूट कर असंख्य टुकडों में बिखर गया । अब उस के हर टुकडे में वही "मैं" दिखाता है, और अपने आप को सम्पूर्ण कहता है पर दूसरे को, मुझ को, टुकडों में बाँटकर देखता हूँ मैं धर्मपत्नी, वाइफ, पार्टनर, नौकर, माँ, इंटिलेक्चुल, ... खिलौना.... एक पूरा दर्पण था जो टूट कर अनगिनत तरह तरह के टुकडों में बिखर गया ।"[61]

ऊपर के नाटकों के पुरुष पात्र विकृत यौन-सम्बन्ध के समर्थक हैं । कई स्त्रियों के साथ यौन-संपर्क स्थापित करनेवाली घटनाओं के प्रतिपादन से नई-पीढी के पाठक या दर्शक जो अपक्व, अविवेकी और कम पढे लिखे होते हैं, इन अनैतिक यौन-संपर्कों के पीछे पडने में प्रेरणा प्राप्त करेंगे । यह खेद के साथ कहना पडता है कि हमारे कुछ एक नाटककार तथा लेखक खुले रूप में ही वेश्यागमन की अनिवार्यता के समर्थक है । "नैतिकता के प्रयोग" शीर्षक निबन्ध में ऐसा परामर्श मिलता है

"मैं अपने अनुभवों से कहना चाहता हूँ जिस शहर में वेश्यायें नहीं होतीं या जहाँ खुली वेश्यावृत्ति की छूट नहीं होती, उस शहर में

---

60. व्यक्तिगत लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.3।
61. वही, पृ.57

यौन-सम्बन्धों की नैतिकता हमेशा सन्देहास्पद रहती है । अपने लगातार अकेलेपन और मुक्त जीवन की स्वच्छन्दता ने मेरे विचारों के सारे द्वार खोल रखे हैं । मुक्त संबंध मेरी दृष्टि में ऐयाशी नहीं, एक इलाज है ।[62]"

व्यभिचार से अलग रहने का उपदेश देते हुए "नीतिवचन" में ऐसा बताया गया है - "तू अपने ही कुण्ड से पानी और अपने ही कुएँ के सोते का जल पिया करना, ...तेरा सोता धन्य रहे, और अपनी जवानी की पत्नी के साथ आनन्दित रह ....[63]।" पति और पत्नी जहाँ अन्य लोगों के साथ यौन-संपर्क करते हैं वहाँ आनेवाली विपत्तियों पर, उपर के नाटकों में चेतावनी मिलती है । "आधे अधूरे" में सावित्री, पति के सिवा और पाँच पुरुषों के साथ संपर्क करके, अपने परिवार संभालना भूल गयी और उसके पुत्र, दो पुत्रियाँ, आदि बिगड गये । "चार यारों की यार" में बिन्दिया ने अपने चार यारों के साथ एक ही रात यौन-संपर्क करके अपने पति की हत्या की । "पैर तले की ज़मीन" में झुनझुनवाला, अयूब, सलमा आदि की अन्धी यौन तृष्णा ने उनके चारों ओर एक सडी गली-संस्कृति को जन्म दिया एवं छोटी लडकियों तक बलात्कार की गई । "बिना दीवारों का घर" में शोभा ने पति को त्यागा, और बेटी को बीमार छोड दिया । "व्यक्तिगत" में "मैं" ने "वह" के जीवनरूपी आइने को अनेकों टुकडों में छिन्न-भिन्न किया । "तिलचट्टा" में "केशी" ने अपनी अन्धयौन-तृष्णा की दौड में पति को आत्म हत्या केलिए प्रेरित किया । "योअर्स फेथफुली" में "कंचन" की दबी रखी काम-तृष्णा फूटकर महासागर बन के बही तो पति के निकट ही

62· नैतिकता के प्रयोग - रमेशबक्षी - नईधारा, पृ·61, जनवरी-फरवरी

63. "Drink water from your own Cistern; running water from your own well...., May your fountain be blessed and may you rejoice in the wife of your youth." Proverbs 5:15,18,New International version Bible,p.722

पर-पुरुष के साथ बार-बार, दिन में, दफ्तर में, यौन-संपर्क करने को बाध्य किया और दुखी पति आत्महत्या करता है । इस प्रकार हम ने देख लिया कि पर पुरुष या पर-स्त्री नाता नाश कारक बनता है ।

वेश्यागमन, व्यभिचार, परपुरुष-संपर्क आदि एक ही अनैतिक कार्य के विविध रूप पर प्रकाश डालते हुए "नीतिवचन" का विश्लेषण इस प्रसंग पर समीचीन लगता है - "क्या हो सकता है कि कोई अपनी छाती पर आग रख ले, और उस के कपडे न जले ? क्या हो सकता है कि कोई अंगारे पर चले, और उसके पाँव न झुलसें ? जो पराई स्त्री के पास जाता है, उसकी दशा ऐसी है, वरन जो कोई उसको छुएगा वह दण्ड से न बचेगा ....[64] ।"

ऊपर के एक दर्जन से अधिक नाटकों का विशद अध्ययन यह साबित करता है कि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय पारिवारिक जीवन बिल्कुल विघटित हो गया है । नाटक के अधिकांश दम्पतियाँ युवावस्था से गुजरनेवाले हैं उच्च शिक्षित हैं, धन संपन्न घराने से सम्बन्धित है, आधुनिक सुख सुविधा भोगी वर्ग हैं ।

"सूर्यमुख" में वेनुरति ने अपने पति "कृष्ण" के सिवा युवक पुत्र "प्रद्युम्न" को अपनी गाडी संभालने रखा है । "चार यारों की यार" में बिन्दिया, पति सीताराम के सिवा अन्य चार मोटे पियक्कडों को एक साथ अपनी गाडी को पीछे से धक्का देने रखा है । "बिना दीवारों का घर" में शोभा को अजित के सिवा जयन्त आदि हैं । "आधे अधूरे" की सावित्री पति महेन्द्र से ऊब कर जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत, मनोज, सिंघानिया आदि अन्य "पाँच पापियों" को अपने साथ रखती है । "पैर तले की ज़मीन" में "सल्मा" को पति अयूब के अलावा

---

64. Can a man scoop fire into his lap without his clothes being burned ? Can a man wolk on hot coals without his feet being scorched? So is he who sleeps with another man's wife: no one who touches her will go unpunished."
Proverbs 6:27 (Holy Bible International version,p.724

डाक्टर, झुनझुनबाला आदि यौन-क्रिया-कुशल मित्र हैं। "करफ्यू" की मनीषा इस्पात की बनी गाडी है जिसमें पति के सिवा गौतम, पुलिस, अफसर, नक्सलाइट, क्रिकट खिलाडी, आदि दर्जनों यात्री "पों पों" करते सवार करते हैं। "तिलचट्टा" में नर्स केशी के साथ पति "देव" के सिवा, लगातार इंजक्षन करने केलिए डाक्टर भी है। "युअर्स फेथफुली" में स्टेनो कंचन रूपा को पतिवर्ल्ड के सिवा अपने सारे द्वार खोलनेवाले अफसर भी है। "व्यक्तिगत" के "मैं"को पत्नी "वह" के अलावा श्रीमती आनन्द भी "आइने तुडवाने" मौजूद है। "वामाचार" के पाजिटीव को अपनी पत्नी के सिवाय 'उद्घाटन' करने कमिन और 'इंटर्व्यू' कराने मिस पद्मा आदि हैं। मादा केक्टस के प्रोफसर अरविन्द को पत्नी सुजाता के अलावा आनन्दा भी आनंद दिलाने को है। लेकिन उनके बीच की एक कमी यह है कि पारिवारिक जीवन अशान्त है, ज्वालामुखी-स्फोट-सी भीषण संघर्ष वे झेलते हैं। उनके दुख स्वनिर्मित हैं। यौन-सुख रूपी मरीचिका के पीछे दौडनेवाले ये पात्र सारे नैतिक-मूल्य खो चुके।

महा नगरीय परिवेश में मानवीय रिश्तों का उलरपन

स्वतंत्र भारत में उच्चशिक्षा प्राप्त युवक-युवतियों नौकरी की तलाश में शहरों में बसने लगे तो नई समस्यायें उत्पन्न हुईं। बेकारी से उपजी निराशा, मोहभंग आदि युवक-युवतियों को बुरी राह पर भटकने केलिए प्रेरित करती है। अपनी जिन्दगी की मूल्यवान अमानत चारित्र्य को गिरवी रखकर एक नौकरी प्राप्त करने में नारी विवश है। "वामाचार" में नौकरी केलिए इंटर्व्यू चलाने का प्रसंग आया है। वीणा, मिस पद्मा, आदियों के इंटर्व्यू के बीच "पाजिटीव" मिस पद्मा के कन्धे पर हाथ रखकर पूछता है - 'तुम्हारी क्वालिफिकेशन देखी थी ?

उत्तर में पद्मा कहती है "सरासर । तीन बार आपके साथ सिनेमा देखने जाना पडा था, और दो बार आपके बिस्तर पर बितानी पडी थी तब कहीं जाकर नौकरी हासिल हुई है । और काम शुरू करते ही पहला काम जो करवाना पडा .... ।"[65]

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने "न्याय की रात" की "कमला" के अनुभवों से यह स्पष्ट किया है कि नौकरी प्राप्त करने केलिए हेमन्त नामक दुष्ट के जाल में कमला को फंसना पडा था । सदानन्द दफ्तर के समय के बाद भी कमला को अपने कमरे में बिठाकर "टाइप" कराने के बहाने उसके शरीर पर स्पर्श करने लगा । इस घटना को सदानन्द के शब्दों में यों समझ सकते हैं "मैं अधिक अधिक झुकता चला गया । जाहिर में कमला ने कुछ भी नहीं कहा । वह उसी तरह टाइप करती रही । धीरे धीरे मैं उस केसिर पर झुका । धीरे-धीरे मेरा शरीर उसकी पीठ से स्पर्श करने लगा, पर कमला उसी तरह टाइप करती रही ।"[66] । बेचारी युवतियाँ क्या क्या सह कर वर्तमान सडी सभ्यता में रहती हैं ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरन्त बाद शिक्षित सभी युवक किसी न किसी नौकरी में पहुँच गए । अपने वेतन से एक मकान और थोडी ज़मीन के मालिक बने उनका जीवन सुखपूर्ण बन गया । लेकिन अगली पीढी केलिए परिस्थितियाँ प्रतिकूल थी । उन केलिए कई समस्यायें - रहन-सहन, शिक्षा, नौकरी, शादी - पनपने लगीं । अतः नई पीढी बिल्कुल निराश हुई । इसलिए माँ-बाप के आदर के स्थान पर तिरस्कार भावना उनमें पनप गई । पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित उनकी शादी

---

65. वातावार रमेश बक्षी, पृ.37

66. न्याय की रात चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ.84

सम्बन्धी धारणा भी बदल गई । शादी करने के बाद पति-पत्नी के रूप में रहने के बजाय लड़का-लड़की एक साथ घूमना फिरना चाहते हैं । "विष्णु प्रभाकर" ने गान्धी भक्त विश्वजीत का बेटा, विवेक के वार्तालाप से यह स्पष्ट किया है कि पिताजी के मना करने पर भी वह लड़की के साथ विश्वपर्यटन केलिए निकलनेवाला है । चाचा और पिता के पूछने पर अपने साथ लायी लड़की के बारे में युवक विवेक कहता है - "किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं चाचाजी ! दे सकते हैं तो हमें यह आशीर्वाद दीजिए कि हम जिन्दगी से सदा प्यार करते रहे ।

अच्छा अब चलूँगा पापा ! आज शायद लौटूँ भी नहीं ।"[67]

इसी गान्धीभक्त विश्वजीत की पुत्री "मनीषा" का कथन भी इसी कोटि का है । उच्च शिक्षा पानेवाली मनीषा पिता से, माता से या अन्य किसी नातेदारों की राय पूछने के बजाय अपने मन-पसन्द के पुरुष के साथ जीने केलिए चल रही है । जाने से पहले, उस का घर आकर सूचना देना इस का प्रमाण है - "मैं जा रही हूं, वही जहाँ मैं चाहती हूं । आप चाहे तो इसे पाप कह सकते हैं, विद्रोह भी कह सकते हैं । भाषा का दुरुपयोग करने से कौन किस को रोक सका है । लेकिन मैं तो इसे अधिकार कहती हूं, अपने भाग्य का, अपने आप निर्णय करने का अधिकार । मैं इस अधिकार केलिए ही यह घर छोड कर जा रही हूं ।"[68]

"अलग-अलग रास्ते" के प्रोफसर मदन का भी शादी सम्बन्धी विचार कुछ अलग है । उसकी पहली शादी राज के साथ हुई थी । लेकिन उसके दिलरूपी मन्दिर में एक विजातीय युवति रहती है । पिताजी को खुश करने केलिए "राज" की शादी हुई थी । अब मदन दूसरी शादी करता है किसी को सूचना दिये बिना । "राज" का भाई इस समाचार को पाकर मदन की दूसरी शादी के सम्बन्ध में कहता है

---

67. टूटते परिवेश विष्णु प्रभाकर, पृ.49

68. वही, पृ.11

"विवाह केलिए न माता की आवश्यकता है न पिता की।"[69] डॉ.लक्ष्मी नारायणलाल ने "दर्पन" के हरिपदम" का शादी सम्बन्धी बदलते दृष्टि कोण प्रस्तुत किया है। रेल गाडी की यात्रा के बीच मुलाकात हुई लडकी के साथ शादी करने के अपने विचार को पिताजी के सामने हरिपदम ने व्यक्त किया। इसके उत्तर में पिता का कथन इस प्रकार है - "न लडकी के कुल शील का पता, न उसके खानदान के बारे में पता, न उसके माँ-बाप से भेंट, बस, बीच में ही खिचडी पक गई।"[70] शादी-सम्बन्धी पुरानी धारणायें अब बदल गई हैं। लडकी या लडके के माँ-बाप कुल, जाति आदि की चिन्ता आजकल बदल गई है।

विवाह-सम्बन्धी बदलते दृष्टिकोण

स्वतंत्र-भारत के हर क्षेत्र में स्वतंत्र-चिन्तन आ गया है। विवाह-सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी बदलाव आ गया है। शादी से, समाज की विभिन्न संस्कृतियों में, वातावरण में पले हुए स्त्री और पुरुष के मिलन से एक नया परिवार उदित होता है। शादी के द्वारा पुरुष और स्त्री केलिए एक जीवन-साथी मिलता है, जिससे नई पीढी की सृष्टि वे कर सकते हैं। याने शादी के माध्यम से सन्तान की प्राप्ति निश्चित है। लेकिन कुछ नई पीढी के विचार में बच्चे का संकल्प नहीं है। वे मात्र पति और पत्नी अथवा पुरुष या स्त्री के रूप में रहना चाहते हैं, माँ और बाप बनना नहीं चाहते हैं। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने इस परिवर्तित विचार के समर्थक के रूप में "आधी रात" की "मायावती" को प्रस्तुत किया है। विदेशी शिक्षा प्राप्त मायावती, जब चाहे तब पति को बदलना चाहती है। कुछ साल साथ रहने का एक "कोंट्राक्ट" मात्र है शादी। न वेतन, न बोनस। वह कहती है - "मेरा विवाह तो

---

69. अलग अलग रास्ते उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.98

70. दर्पन लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.22

अंग्रेज़ी ढंग का हुआ था, जिस में सन्देह है, डाइवोर्स है, पुरुष के प्रति प्रतिहिंसा है, जिसके मूल में ही यह भावना है कि बच्चे न पैदा हों, किसी तरह का बन्धन न हो।[71]" पति कहलानेवाले पुरुष की योग्यताओं पर भी कुछ शर्तें अनिवार्य हैं - "मुझे ज़रूरत थी पुरुष की, जो पुरुष होते हुए भी पुरुष न हो, जिस के साथ रहने में किसी तरह का खतरा न हो, जिसके साथ शारीरिक सुख-भोग और रसमय जीवन की आशंका न हो।[72]"

"मुद्राराक्षस" ने "योअर्स फेथफुली" में कुछ युवकों के यौन-सम्बन्धी मत को व्यक्त किया है। कंचन रूपा और तीसरा वर्ल्क दोनों पति-पत्नी हैं पिछले पाँच वर्षों से। एक ही दफ्तर में काम करनेवाले वे दफ्तर में आने पर आपस में बातचीत नहीं करते। शादी-सम्बन्ध उनके मन में है। बाह्य रूप से कुछ नहीं है। वर्तमान युग के कुछ ऐसे युवकों का प्रतिनिधित्व "तीसरा वर्ल्क" करता है कि पत्नी के साथ कोई यौन-सम्बन्ध डर के कारण नहीं करता। बच्चा पैदा होने के डर से वह चुप्पी धारण करता है। लेकिन उस की पत्नी "स्टेनो कंचन" अफसर के पास पहुँचते ही कमरा बन्द करके अपने सभी द्वार खोल देती है। पति-पत्नी के बीच के सम्बन्ध की सूचना "तीसरा वर्ल्क" ने यों दिया है "फिर मैं ने तय किया कि दफ्तर में हम अपने को अविवाहित बतायेंगे और एक दूसरे से बात भी नहीं करेंगे। फिर हम ने तय किया कि हम करेंगे कुछ नहीं। करने से बच्चा आ सकता था।[73]" पति के विचारों का तिरस्कार करने की ताकत कंचन रूपा को घर में नहीं है इसलिए वह पति के साथ संयम करती है। लेकिन दफ्तर में वह स्टेनो है, उस का अलग व्यक्तित्व है, साम्राज्य है, उसका नियंत्रण वह

---

71. आधी रात लक्ष्मी नारायण मिश्र, पृ.37, द्वि.सं.1957

72. वही, पृ.41

73. योअर्स फेथफुली मुद्राराक्षस, पृ.87

आप करती है । जो चीज़ पाने में पति को डर है, अफसर को उसे दिलाने में कंचल अधिक चाव रखती है ।

रमेश बक्षी ने "देवयानी" के माध्यम से विवाह सम्बन्धी बदली हुई मान्यताओं पर प्रकाश डाला है । कई पुरुषों के साथ नाता रखने में उसे मज़ा है । स्वच्छन्द-यौन सम्बन्ध वह चाहती है । कामोत्तेजना की पूर्ति का एक उपकरण मात्र है पुरुष । विवाह में और कोई दायित्व या पवित्रता देवयानी नहीं देती है । देवयानी कहती है "शादी केवल एक पास है जिस को हाथ में रखने से खुले आम घूमने, एक साथ बिस्तर में सोने और दुर्घटना के समय सामाजिक विरोध न होने का सर्टीफिकेट मिल पाता है ।[74]" देवयानी के इस स्वतंत्र विचार के विरुद्ध पुरुष के निजत्व को वह पसन्द नहीं करती है । उसके एक प्रेमी सुधीर कुछ विचित्र स्वभाव रखनेवाला था जिसे देवयानी ने छोड दिया । उसके कारणों को निर्लज्जभाव मे वह यों बताती है - "सुधीर को मेरे बालों में उँगली फंसाकर बैठे रहने में, और अधिक हुआ तो उरेजों सिर रखकर लेटे रहने में ही सारा सुख मिल जाता था । वह दो महीने में एक दिन को पन्द्रह मिनट केलिए ऐसी जगह नहीं ढूँढ पाया कि हम एक दूसरे को ठीक से देख तो सकते । और किस्सा खतम कि एक सुबह मैं ने उसे रिजेक्ट कर दिया ।[75]" स्त्री को यन्त्र जैसा मानकर कठिन परिश्रम करा के, रस निकाल के छोड देने की पुराने पुरुषों की कथा आज बदल गई है । आधुनिक कहलानेवाली राह भूली कुछ युवतियाँ पुरुष को केवल उपभोग का यन्त्र समझती है जिस का उदाहरण यहाँ बक्षी ने दिखाया है ।

---

74. देवयानी का कहना है रमेश बक्षी, पृ.27, (सं.1972)
75. वही, पृ.20

शादी रचने के पहले पिता, माँ, नातेदार आदि की सम्मति के साथ पुराने ज़माने में जो शादी संपन्न हो रही थी, वे सब अब परिवर्तित हो गयी है । शादी केलिए कहीं से किसी को ढूँढ निकालने का काम युवक-युवतियों का हो गया है । इस में गुण-दोष की चिन्ता केलिए जगह नहीं है । सिर्फ शरीर का आकर्षण और मन का निश्चय । लक्ष्मीनारायण लाल ने हरिपदम और पूर्वी के शादी-निश्चय के समाचार को अखबार में देने से माँ-बाप को चौंका दिया है । हरिपदम ने अपनी शादी की वार्ता समाचार पत्र में छपवाया । पत्र पढ कर हरिपदम के पिता ने अपने पुत्र को बुलाकर पूछा "न लड़की के कुल शील का पता, न उसके खानदान के बारे में पता, न उसके माँ-बाप से भेंट, बस बीच में ही खिचडी पक गई ..... ।"[76]

विष्णु प्रभाकर ने युवक-युवतियों की, विवाह के पहले विश्वभ्रमण केलिए निकलने की पश्चिमी आदत को व्यक्त करने केलिए "टूटते परिवेश" को माध्यम बनाया है । युवक "विवेक" की युवति "ज़रीन" के साथ विश्व-यात्रा केलिए निकलने का प्रसंग प्रस्तुत किया है । जाने से पहले पिता के पास युवति सहित आता है । पिता से "विवेक" का विवेक रहित कथन ऐसा है "नये लोग, नयी धरती, आकाश नया, बादल नये, पक्षी नये, यहाँ तक कि हवा भी नयी, आवाज़ें भी नयी, मौन भी नया, सब कुछ नया और नया .... ।"[77] आज युवक-युवतियों के साथ भ्रमण करने की प्रथा बढ रही है जिन से लक्ष्य भूल जाने की संभावना भी है ।

---

76. दर्पन लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.21

77. टूटते परिवेश विष्णु प्रभाकर, पृ.48

शादी-पूर्व यौन-सम्बन्ध का अभिशाप

स्वतंत्र भारत के युवकों ने दुनिया के विविध भागों के बारे में अध्ययन किया तो उनको भारत के सिद्धान्तों को त्यागने की सोच आयी। हमारे धर्म ग्रन्थों के सिद्धान्तों को अनदेखा किये उनके मन में डार्विन के सिद्धान्तों ने घर कर दिया कि मानव जानवर की पीढ़ी का है। "फ्रॉइड" के सिद्धान्तों ने उन्हें यह जानकारी दी कि सभी मानवी-प्रवृत्तियाँ यौन-विकारों से प्रेरित हैं। "जानवर का शरीर और लैंगिक-विकारों के दास" की जानकारी की रजत-रेखा से नियंत्रित आधुनिक मानव अपने जीवन-पथ में यह भूल गया कि जानवर और मानव में अन्तर है। यौन-सम्बन्धी कोई नियम जानवर को नहीं है। लेकिन मनुष्य इस से कितने भिन्न हैं कि उस का यौन-सम्बन्ध नियम बद्ध है। कहने का तात्पर्य यह है कि यौन-सम्बन्ध"कौन" "किस के साथ" "क्यों", "कब" करता है, इन पर समाज-सम्मत मान्यताओं का पालन करना एक स्वस्थ समाज की स्थिरता केलिए अनिवार्य है। शादी-पूर्व यौन-सम्बन्ध हमारी मान्यता के बाहर है। शादी पूर्व यौन-संपर्क के दोषों पर हिन्दी नाटकों में विचार किया है। "पैर तले की ज़मीन" में एक त्रिकोण की तीन भुजाओं के रूप में हैं अयूब, सलमा और डाक्टर। जीवन में ये तीनों अशान्ति का अनुभव करते हैं। नाटक के दम्पति हैं अयूब और सलमा, डाक्टर और पत्नी। लेकिन दोनों परिवारों में अशान्ति है। सलमा के प्रेमी थे डाक्टर जिस के साथ सलमा ने विवाह पूर्व यौवन के प्रारंभ में यौन सम्बन्ध किया था। बाद में सलमा की शादी अयूब से हुई। यहाँ सलमा के साथ यौन-संपर्क किये दो पुरुष हैं - डाक्टर और पति अयूब। इनके जीवन का

विश्लेषण यह कटु सत्य स्थापित करता है कि तीनों का जीवन यातनाओं से पूर्ण है । डाक्टर अपनी पत्नी से खुश नहीं है, अयूब भी अपनी पत्नी से खुश नहीं है । इस का प्रमाण अयूब के ही वार्तालाप से मिलता है "कहने को सब कुछ है - घर है, बीबी है, दो बच्चे हैं, फिर भी मैं जानता हूँ कि यह सारा ताना-बाना एक न चाहते मन के चारों तरफ बुना गया है, हालांकि बुननेवाले सिर्फ दूसरे ही नहीं हैं, मैं भी हूँ । बल्कि जब कभी ताना-बाना ढीला होता नज़र आया, मैं ने खुद उस में और धागे बुने हैं, खुद अपने को उन धागों में और जकड लेना चाहा है, और इसी से मन की छटपटाहट और बढती गई है" "डाक्टर अपनी बीबी सकीना को पाकर खुश नहीं हो सका उसी तरह जैसे मैं सलमा से शादी कर के ।"[78] विवाह पूर्व पर-पुरुष से या अन्य-स्त्री से यौन संपर्क करने से भविष्य में आयी अशांति का वर्णन यहाँ मिलता है ।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने "राजयोग" में "चम्पा" की दयनीय हालत व्यक्त की है । चम्पा ने छात्र जीवन में ही कौमार्य-भंग किया था । इस घटना ने उसके जीवन को मथ डाला था । "शत्रु सूदन" के साथ बाद में चम्पा की शादी हुई । "नाम" के अनुसार ही पति चम्पा के दिल का शत्रु है । लेकिन मित्र और पति समझ कर शरीर - समर्पण करती रहती है - दाम्पत्य जीवन की मधुरता पान किये बिना । उसके हृदय के अन्दर से प्रेम-पूर्ण बर्ताव या वार्तालाप नहीं निकलता है । चम्पा कहती है "मैं अपने को निर्दोष तो नहीं कह रही हूँ । विवाह होने के पहले ही मेरा जीवन बिगड चुका था पढाई के दिनों में ही हृदय उलझ गया उनसे प्रेम करने लगे उनके साथ सिनेमा देखने जाया करती थी .... रोशनी बुझ जाने पर नसों में बिजली दौड जाती था ...... ।"[79]

---

78. पैर तले की ज़मीन मोहन राकेश, पृ.59,60, तृ.सं.1982
79. राजयोग लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.81, 81 §छठा सं.1982

विवाह पूर्व-यौन सम्बन्ध से भविष्य में - याने विवाहोपरान्त ऐसे स्त्री-पुरुषों के जीवन में मानसिक संघर्ष हो जाता है। पूर्व घटित घटनायें आजीवन उस के स्मृति मण्डल में कुरेदती रहती हैं जिनके कारण कई प्रकार के रोग महसूस होते हैं। "सन्देह" सब से बडा रोग है। अपनी पत्नी, दूसरे पुरुष के साथ शरीर-संपर्क की हुई जान कर, दूसरी स्त्री के साथ अवैध नाता रखने के लिए जानेवाले पुरुष भी है।" पैर तैले की जमीन" में ही इस का उदाहरण मिलता है। अयूब की पत्नी सलमा, झुनझुनवाला के साथ भी यौन-संपर्क करती है। इस पर निराश अयूब पत्नी को जजाने केलिए लडकियों को बलात्कार करने की चेष्टा करता है पत्नी के सामने ही। इस पर सलमा अयूब से कहती है "मुझे तुम हमेशा चेहरों को लेकर शर्मिन्दा कर सकते हो खुद भी अगर शर्मिन्दा हो सकते हो शायद हम एक दूसरे के चेहरों को ज्यादा पहचान पाते तुम ने कल यहाँ उस लड्की रीता के साथ जो कुछ करने की कोशिश की वह भी तो एक चेहरा है उस केलिए भी तुम शर्मिन्दा नहीं हो सकते ....[80]।"

विवाह-पूर्व यौन सम्बन्ध "प्रेम" के नाम में शुरू होता है जो आज कल एक फैशन बन गया है। बेचारी युवति पुरुष को विश्वास करके आत्म समर्पण करती है। लेकिन उसके माँ बन जाने पर चारों ओर उसका तिरस्कार होता है और पुरुष बच जाता है। जगदीशचन्द्र माथुर ने "कोणार्क" की गरीब "सारिका" के द्वारा इस समस्या को दिखाया है। "कोणार्क" का शिल्पी "विशु" अपने द्वारा सारिका माता बनती बात जानकर दूर चला जाता है। विशु मित्र से इस का रहस्योद्घाटन करता है "जब मुझे ज्ञात हुआ कि वह माँ बननेवाली है, तो कुल और कुटुम्ब के

---

80. पैर तले की ज़मीन मोहन राकेश, पृ.68

भय ने मुझे ग्रस लिया । नदी पर बढती साँझ की तरह उस भय की तद्रा मेरी बुद्धि परछा गई और मैं भाग गया, सारिका और उसकी अज्ञात सन्तान से दूर बहुत दूर-भुवनेश्वर मंदिर की छाया में - कला के अंचल में अपना मुँह छिपाने ।"[81]

"नया समाज" में उदयशंकर भट्ट ने अवैध सम्बन्ध से होने वाले शिशु की हत्या का उदाहरण दिया है । मनोहरसिंह पडोस की एक स्त्री से शरीर-संपर्क करता था । फौज के नौकर की पत्नी अपने पति के अभाव की पूर्ति मनोहरसिंह से करती थी । अपने यौवन के पागलपन की घटना जो अब मनोहरसिंह के मन को मथती है, जिस का बोझ हलका करने केलिए वह कहता है "वह मेरे पाप की कमाई है दादा । उस समय मैं जवानी के नशे में पागल था मेरे पडोस में एक ठाकुर रहते थे । वे फौज में नौकर थे । उस की पत्नी से मेरा प्रेम हो गया, उसी से यह सन्तान हुई । सबेरे सबेरे हम ने इसे गाड दिया ।"[82]

"अंधा कुआँ" की "सूका" भी विवाह-पूर्व यौन-संपर्क का विष अपने जीवन भर पीती रहती है । "इन्दर" सूका का पूर्व प्रेमी है । लेकिन उस की शादी क्रुद्ध भगौती के साथ हुई । विवाह के बाद सूका इन्दर के साथ भाग गई । सूकाको पकड लाकर भगौती पीडित करता है । रात में इन्दर आकर सूका को बन्धन मुक्त करता है तो सूका कहती है

"यह कौन आया है ? यह कौन है ? इसके साथ फिर भागूँ ? नहीं, अब मैं नहीं भागूँगी ? तू मुझे नहीं बचा सकता । जा, चला जा, मेरी आँखों के सामने से - मुझे फिर से बान्धकर चला जा ।"[83] यहाँ हम देखते हैं कि सूका के सामने दो पुरुष हैं - इन्दर और भगौती । इन्दर सूका को छुडाने केलिए मार-पीट करता है, भगौती सूका को मारता है । याने पर-पुरुष की छाया उस घर के वातावरण को मात्र नहीं, उस

81• कोणार्क जगदीशचन्द्र माथुर, पृ•32

82• नया समाज उदयशंकर भट्ट, पृ•65

83• अंधा कुआँ लक्ष्मीनारायणलाल, पृ•68

गाँव को प्रकंपित करता है । एक के बाद अनेक मारपीट की परम्परायें उस गाँव में चलती हैं । शादी पूर्व यौन-संबन्ध का दोषफल समाज में आज प्रत्यक्ष रूप में दृष्टव्य है । इस का उदाहरण कई जगहों में मिलता है "कई युवक विवाह पूर्व यौन-संपर्क से निराश होते हैं जिस के कारण उनमें गलती की भावना बढती है, और आत्म-सम्मान खो जाते हैं[84] ।"

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विवाह एक पवित्र आचरण है । उसकी पवित्रता में कलंक लगाने को यदि कोई चाहेगा तो अवश्य उसके, दोषफल उसे ही भोगना पड़ेगा ।" पैर तले की ज़मीन" के अयूब, डाक्टर, सल्मा, "राजयोग" की चम्पा, "कोणार्क" के विशु, सारिका, "नया समाज" का मनोहरसिंह, "अंधा कुआँ" के इन्दर, भगौती, सूका, विवाह के तिरस्कार से सब के दाँत खट्टे हुए थे । विवाहित होते हुए भी, या यौन-सम्बन्ध रखकर सुख पाने के बाद भी घुट घुट कर मर रहे हैं । विदेशी शिक्षा का प्रभाव हो या स्वतंत्रता का बोध हो, भारतीयता मिट रही है । विवाह-पूर्व यौन सम्बन्ध के बारे में The Sexually Responsive Woman में ऐसा बताया गया है "यह बहुत आश्चर्य की बात है कि वर्तमान पीढ़ी के अमरिका की युवतियों में पचास प्रतिशत विवाह पूर्व कोई यौन-सम्पर्क नहीं रखती हैं और शेष पचास प्रतिशत विवाह-पूर्व यौन-सम्बन्ध रखती या न रखती विवाह में प्रविष्ट होते समय कन्यकायें नहीं होती हैं[85] ।"

पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारतीय जीवन में भी पड गया है । शिक्षा प्राप्त कुछ लोग विदेशी-यौनक्रमों को भारत में लागू करने के प्रयत्न में अपने निबन्धों, रचनाओं को लिखते हैं। "नैतिकता के प्रयोग"

---

84. "Many youth have further found premarital sex to be bitterly disappointing. The result? feeling of guilt and diminished self-respect."
Young people Ask, p.183

85. "Surprisingly enough,only about half the American woman of the present generation seem to enter marriage with any previous experience of intercourse. The other fifty per cent still approach married life,if not without any prior sex experience,nevertheless technically as virgins".
The Sexually Responsive Woman:By Dr.Phyllis and Eberhard Kronhansen,p.95

शीर्षक निबन्ध में रमेश बक्षी ने इस विषय पर यों लिखा है - "मैं समझता हूँ स्कूल-कालेजों में ठीक-ठीक यौन-शिक्षा का प्रबन्ध अनिवार्य है । शहर में वेश्यायें होनी चाहिए हर आदमी के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब उसे किसी औरत के पास जाना पड़ता है और वह तनाव दूर करती है इसलिए उसकी आवश्यकता असंदिग्ध है । डेटिंग जैसी चीज़ इस देश की सेक्स-जन्य कुंठाओं को दूर करने केलिए ज़रूरी है - अंग्रेज़ी में जिसे नकिंग और पेटिंग कहते हैं उस की खुली छूट होनी चाहिए । इससे लड़के-लड़कियों के मन में कोई गिरह नहीं बनती । यह भी आवश्यक है कि कन्ट्रोसेप्टिव्ज़ के बारे में जान लेना बेहतर है । दो-चार मिनट के सुख केलिए कोई लड़की गर्भवती हो बैठे यह बेवकूफी है ।[86]" ऊपर के विचार बिलकुल पाश्चात्य है । इसे स्वीकारने को भारत के अधिकांश लोग तैयार नहीं होंगे ऐसा मेरा विश्वास है । लेखक के कई नाटकों में उन्होंने इन सिद्धान्तों का प्रकटीकरण चाहा है भी । "वामाचार" का "पाजिटीव" वास्तव में यही करता है । "यामिनी" को अपनी जाल में फंसाने केलिए पाजिटीव का कथन इस का प्रमाण है - "क्या है गलत ? यह मैक्सी गलत है ? खुले बाल गलत है ? मेरे सफेद कपडे गलत है ? यदि ये गलत नहीं हैं तो तुम्हारा मेरे बिस्तर पर लेटना भी गलत नहीं है ।[87]" "वामाचार" के अन्त में हम देखते हैं कि "पाजिटीव" युवक-युवतियों को शराब पिलाकर एक युवक के साथ एक युवति के क्रम से आपसी नृत्य और अनुचित कार्य कराता है ।

---

86. नैतिकता के प्रयोग रमेश बक्षी, नई धारा, पृ.66-67

87. वामाचार रमेश बक्षी, पृ.19, प्र.सं.1977

विवाह-पूर्व-यौन-सम्बन्ध से पुरुष या स्त्री में या दोनों में भविष्य में ऊब होना स्वाभाविक है । कोई स्त्री विवाह पूर्व किसी पुरुष को प्रेम के नाम पर शरीर-स्पर्श करने देती है तो उस पुरुष में उसके प्रति सन्देह और ऊब हो सकता है । "परितोष गार्गी" ने "छलावा" के "लालू" और "बेला" के माध्यम से यह दिखाया है । बेला ने पूरे तीन साल तक चांदनी रातों में प्यार की कसम खाती हुई "लालू" के साथ भ्रमण किया । जब शादी करने की बात आयी तो "लालू" का पौरुष जागरित होता है । इस विषय पर लालू ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा - जिस दिन से यह सिलसिला शुरू हुआ है, चलते फिरते, उठते-बैठते, मेरी आँखों के सामने अजीब तारे से बन बन कर ढलते रहते हैं मगर मैं क्या कर सकता हूँ । मैं बेला से ऊब गया हूँ । उस का प्यार मुझे बासी और फीका लगता है ।"[88]

शादी-पूर्व स्त्री-पुरुष यौन-सम्बन्ध की मान्यता भारत में नहीं है । दुनिया के कई भागों में कई धारणायें इस विषय पर है । "पूर्व-आफ्रिका के "किप्सीस लोग युवक-युवतियों के बीच के प्रेमभाव को प्रोत्साहन करते हैं । इस बीच युवति के हामिला बन जाने पर भी शादी में कोई बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि यह इस का स्पष्ट प्रमाण है कि उस की मंगेतर एक बाँझ नहीं है और युवक, युवति की सन्तान को सम्मति देते हुए उस शिशु को भाग्यवान मानता है ।"[89] दक्षिण आफ्रिका के "सुलु" वर्ग के लोगों के बीच की प्रथा कुछ दूसरी है । विवाह-पूर्व युवक-युवतियों का सम्पर्क वे निषिद्ध करते हैं । लेकिन "कोंगो के गोबे" (Ngombe of Congo) के बीच की प्रथा अलग है - "एक युवक शादी के पहले कुछ वर्षों केलिए एक युवति के साथ रहेगा और फिर दूसरी युवति के साथ । फिर यह तय किया जाएगा कि किस युवति के साथ

---

88. छलावा : परितोष गार्गी, पृ.14, प्र.सं.1961
89. "The Kipsigis in East Africa also encourage love affairs among young people, and if the woman becomes pregnant that is no special deterrent to marriage, since it is a proof of fertility and the future husband oftains title to the child and is regarded as fortunate." Customs and Cultures : Eugene A. Nida, p.98

स्थिर रूप से भविष्य में रहना अच्छा है[90]।" पश्चिम देशों की हालत पर विचारने से यह स्पष्ट होता है कि स्कूली लडकियाँ माँ बनती जाती हैं। वहाँ यौन-संपर्क सम्बन्धी रोक लगाने में माँ-बाप असमर्थ हैं क्योंकि बच्चों को पूर्ण स्वतंत्रता सब बातों में दी जाती है। भारतीय वातावरण में पले हुए माँ-बाप, नौकरी प्राप्त होकर वहाँ रहनेवाले, अपने बच्चों को पलते देखकर आग खा रहे हैं। क्योंकि पाश्चात्य देश के कई स्कूलों की "दस लडकियों में एक की गिनती में माता बनती रहती है जिस की संख्या बढती जा रही है[91]। इस प्रकार ग्यारह-तेरह बरस की अपनी बेटियाँ स्कूल में, बसटाप में, पार्क में लडकों से बलात्कार किये जाने पर हामिला न बन पाने केलिए गर्भनिरोधक गोलियाँ खिलाकर ही उन्हें माता स्कूल भेजती हैं।

शादी-पूर्व यौन-सम्बन्ध से कई प्रकार के दोष हैं - बालिकाएँ माता बन जाने से उन का भविष्य अन्धकार मय हो जाता है। शरीर का काफी विकास न होने के कारण, शिक्षा बीच में बन्द होने के कारण, समाज से निन्दित हो जाने के कारण उसकी शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक अवस्थाएँ शिथिल होती हैं। युवक-युवतियों के बीच में, "शादी-पूर्व यौन-सम्बन्ध" पर चलाये शिक्षण - निरीक्षण के बारे में "यंग पीपिल आस्क" नामक किताब में ऐसा बताया गया है - "कई युवक शादी-पूर्व यौन सम्पर्क से निराश होते हैं जिस के कारण उनके मन में "गलती की भावना" बढ जाती हैं और आत्म-सम्मान खो जाते हैं[92]।"

---

90. Customs and Cultures   Eugene A. Nida, p.99
91. Young People Ask, p.184
92. Many youths have further found premarital sex to be bitterly disappointing. The result? Feeling of guilt and diminished self respect."
    Young People Ask,

वर्तमान पाश्चात्य युवा-पीढी, अपने यौवन के आरंभ में ही कई प्रकार के लोगों के साथ यौन-संपर्क कर के कई रोगों के शिकार बन गयी हैं। मानसिक - संघर्ष बढ कर कई बीमारियाँ उनके बीच में हैं। विदेश से भारत में आनेवाले ऐसे अनेक युवक-युवतियों को रोज़ "बस्टाप", "पार्क" "बीच" में हम देखते हैं जो अपने मानसिक सन्तुलन खोकर गंजा, चरस, शराब आदि की लत में एक प्र कार का पागलपन दिखाकर बेफिक्र घूमते हैं।

शादी-पूर्व यौन संपर्क का एक और दोष है - शादी के बाद दम्पतियों में कलह का बढना। पहली युवति से लुक छिप कर जो शरीर सुख पाया था, उसकी याद में युवक-युवतियों का खो बैठना स्वाभाविक है। नव-विवाहित दम्पतियों की पूर्वकथायें आपस में कह सुनाने पर, या दूसरों से सुनने पर, उसके नाम पर कलह अवसर होता है। लक्ष्मीनारायणलाल ने "रात रानी" के "कुन्तल जयदेव" दम्पतियों के जीवन से इसका उदाहरण दिया है। कुन्तल ने प्रेमपत्र भेजा था निरंजनको, उसके साथ शादी चाही थी। दोनों साथ साथ चलते फिरते बातचीत करते थे। लेकिन भविष्य में कुन्तल की शादी दूसरे पुरुष जयदेव के साथ हुई। जयदेव कुन्तल को सन्देह की दृष्टि से देखा करता है। नौकरी करने प्रेस में गये बिना घर बैठा रहता है, ताश खेलता हुआ। जयदेव अपने पारिवारिक कलह, एवं निजी पीडा को व्यक्त करते हुए कहता है - "मनुष्य की पीडा अजीब होती है। वह अपने दुःख दर्द को किसी से बंटा नहीं पाता; क्योंकि उसे हर दम अपने पुरुष होने का ख्याल है। स्त्रियाँ ही भाग्यवान है - वे रोकर अपना दुःख दर्द बाँट लेती हैं। लेकिन पुरुष अपने दुख को छिपाने केलिए ऊपर से कपट करता है। झूठ छिपाने केलिए कभी क्रोध का जामा पहनता है और कभी सिद्धान्त का।"[93]

---

93. रात रानी लक्ष्मी नारायणलाल, पृ.95

विवाह पूर्व स्त्री-पुरुष रिश्ते, एक स्वस्थ पारिवारिक जीवन में कई प्रकार के सन्देह पैदा करते हैं। इसलिए उठती जवानी में युवक युवतियों को सतर्कता से रहना भावी-जीवन केलिए परमावश्यक प्रतीत होता है।

शादी से नफरत करती नयी पीढी

शादी किये बिना आजीवन अविवाहित रहना चाहती नव पीढी की कतार प्रबल होती आ रही हैं। उनमें पुरुष और स्त्री दोनों हैं। पुरानी पीढी के सदस्यों के या अपने माँ-बाप के आपसी झगडा देखकर विवाह किये बिना रहने को चाहनेवाले कुछ लोग हैं। उनमें व्यक्ति स्वतंत्रता चाहनेवाली स्त्रियों की संख्या अधिक है। नये हाथ" की शालिनी स्त्री-स्वातंत्र्य के पक्ष में है। अजय के साथ बातें करती हुई, दासी के रूप में नारी की हालत की कटु आलोचना करती हुई वह कहती है "अपने समाज में पत्नी दासी की तरह तो होती है। मैं किसी की गुलामी नहीं कर सकती। भगवान ने स्वतंत्र पैदा किया है, फिर जान बूझ कर जंजीरों में मैं क्यों बंधूं ?"[94]

उपेन्द्रनाथ अश्क ने "अंजोदीदी" के "श्रीपत" में विवाह-विरुद्ध मनोवृत्ति को दर्शाया है। 'अंजो' का भाई श्रीपत अपनी बहिन के संयमनात्मक जीवन का कट्टर विरोधी है। उसे खान-पान, बात-चीत, रहन-सहन आदि किसी में संयमन की आवश्यकता नहीं है। वह विवाह को बन्धन मानता हुआ कहता है "शिष्टाचार शादी का, यों कह लो कि बन्धन का प्रतीक है। उधर आप की शादी हुई, इधर आपके गले में शिष्टाचार का जुआ पडा। ये आपकी सास हैं, इन के सामने

---

94. नये हाथ विनोद रस्तोगी, पृ.40 {द्वि.सं.1967}

सिर नीचे किये शिष्टता से यों मुस्कराओ मानों आप के मारे दांत झड गये हैं। वे आपकी सलहज हे - इनके सामने विनम्रता से ऐसे हंसो मानो बत्तीसी मोतियों की है। ये आप की पत्नी है - आचार-व्यवहार, सदाचार और शिष्टता की मौसी।"[95]

उदय शंकर भट्ट ने "नया समाज" में "कामना" के मनोभावों को इस प्रकार प्रकाशित किया है कि शादी करके स्वतंत्रता नष्ट करना वह चाहती नहीं है। उसकी मनोकामना के अनुसार के पुरुष के अभाव में वह अपने पिताजी के सामने रोग का अभिनय किया करती थी। इस के बारे में सहेली छाया से "कामना" का कहना इस प्रकार है "बीमारी! बीमारी मेरा सहारा है। नहीं तो बाबा अब तक मुझे किसी न किसी के साथ बांध देते। मैं बंधना नहीं चाहती। केवल प्यार चाहती हूँ।"[96]

उपर्युक्त नाटक के स्वतंत्रता-कांक्षी पात्र शादी किये बिना स्वतंत्र जीवन के इच्छुक हैं। लेकिन शादी करने के बाद कुछ ही दिनों के अन्दर, पति-पत्नी रहकर यांत्रिक शादी-नाता रखकर जीवन से असन्तुष्ट दम्पतियों की संख्या अधिक हैं। "अलग-अलग रास्ते" की रानी चन्द दिनों के दाम्पत्य-जीवन से तंग गई है। शादी के समय दहेज रूप में रुपए और "कार" देने के वादे को रानी के पिता ने निभाया नहीं। इस पर त्रिलोक ने रानी को मायके में भेज दिया। रानी के पिता जब महल और कार देने को तैयार हुए तो रानी को साथ ले जाने त्रिलोक आया। इस प्रसंग में त्रिलोक के साथ रहने की रानी की अनिच्छा वह व्यक्त करती हुई पिताजी से कहती है "आप यह समझते हैं कि ये मकान मेरे नाम करके मुझ पर कोई उपकार कर रहे हैं। ये मेरे गले में सदा

---

95. अंजो दीदी उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.50

96. नया समाज उदय शंकर भट्ट, पृ.30

केलिए दासता की बेडी डाल रहे हैं। मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ रहने को विवश कर रहे हैं जिस केलिए मेरे मन में लेश-मात्र भी सम्मान नहीं।[97]

वर्तमान पीढ़ी के शादी से नफरत करने के कारणों पर नज़र डालने से यह स्पष्ट होता है कि आज का पारिवारिक वातावरण बिलकुल विषाक्त है, अशान्त है, अतृप्त है। उस प्रकार के एक नरक पूर्ण जीवन से अच्छा है शादी किये बिना रहना। क्योंकि "ब्याह तो आजकल अन्धेरे में तीर मारने के बराबर है निशाने पर लग गया तो ठीक... हाथ से निकला तीर तो वापस आता नहीं।"[98] "अलग-अलग रास्ते" के पूरन का यह कथन अपने अनुभवों से है। उस की बहन की शादी धूम-धाम से चलायी गयी, पर बहन राज कुछ ही दिन के अन्दर ससुरालय से व्रणी हृदय से लौट आयी है।

---

97. अलग अलग रास्ते उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.112 (प्र.सं.1954)
98. वही, पृ.65

अध्याय - तीन

राजनैतिक क्षेत्र में मूल्य विघटन

राजनैतिक क्षेत्र में मूल्यविघटन

भारत के संविधान में, प्रत्येक नागरिक के कर्तव्यों में ऐसा बताया गया है "वह भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।[1]" लेकिन समकालीन राजनैतिक परिवेश, जो बिलकुल विषाक्त हो चुका है, पर नज़र डालने से यह सत्य स्पष्ट हो जाता है कि भारत का कोई भी नागरिक इन कर्तव्यों को पूरी तरह नहीं निभा रहा है। परिणामतः पूरे राष्ट्र की एकता खतरे में है। राजनैतिक क्षेत्र में आये मूल्य शोषण पर विचार करने के पहले स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनैतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा।

स्वातन्त्र्योत्तर राजनैतिक परिस्थितियाँ

सदियों से भारत गुलामी की बेडी पहनी पडी रही थी। भारत की, सदियों के पूर्व की, जो सुव्यवस्था थी, सबों में विदेशियों के कुशासन ने परिवर्तन कर दिया। इस विषय पर "फ्रान्क ताकुर दास" ने

---

1. "The Constitution of India" - Part IV A, 51 A,C, p.15

अपने विचार व्यक्त किये है "भारत के सीमित ग्रामीण जीवन में जो कुछ अच्छे अनुभव लोगों ने प्राप्त किये थे, दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन ने सबों का सर्वनाश किया[2]।" विदेशियों के नौकर रहकर गुलामी की मनोवृत्तिवाहक भारतीय जनता की धमनियों से बहते रक्त में भी दासता फैली हुई थी । उनमें स्वतंत्रता के मूल्य भरने का काम छोटा नहीं था । बिगडी हुई हालत से देश का उन्नमन और देशवासियों की मन:स्थिति में परिवर्तन लाना अति आवश्यक था । स्वतंत्रता के प्रकाश का बोध भारतीयों में भरने केलिए हमारे नेताओं को कठिन परिश्रम करना पडा । इस केलिए नेताओं ने ज़ोरदार भाषण दिये जिन से प्रभावित आम जनता ने यह समझ लिया कि स्वातंत्र्योदय से उनके जीवन में प्रगति होगी । पिछली सभी यातनाओं के स्थान पर सुख-समृद्धि मिल जाएगी । इस के सम्बन्ध में ए.एस. नारंग ने ऐसा परामर्श दिया है "स्वतंत्रता-संग्राम के समय जनता ने यह समझ लिया कि विदेशी सरकार का शासन समाप्त होने से और विदेशियों के इस देश से जाने से उन की दी हुई यंत्रणायें समाप्त होगी और हमारे जीवन में सुख-समृद्धि के दिन आ जाएगी[3]।" इसलिए जनता ने नेताओं को पूर्ण सम्मति दी । भारत के नेताओं, आम जनताओं, शिक्षित वर्गों, कलाकारों, विदेशी सरकार के कुछ अधिक भारतीय सरकारी नौकरों के सम्मिलित परिश्रम एवं यातनाओं के फलस्वरूप स्वतंत्रता रूपी जीवन-मूल्य की प्राप्ति 15 अगस्त 1947 में भारत को हुई[4] तो हमारे सामने हल करने की अनेक समस्यायें आयीं ।

---

2. "Two hundred years of colonial rule had destroyed whatever experience people had of an extremely restrictive type of democracy in their village life."
Indian Political Culture amid Transition; Frank Thakurdas - Society and Religion, p.15

3. "During the independence struggle the people were fed on the idea that all their suffering and miseries were due to the alien rule and once the British left the country they would have an era of plenty and all their sufferings would come to an end."
Indian Government and politics : Dr.A.S.Narang,p.204

4. Encyclopaedia of Indian events and dates
S.B. Chattacherje, p.10

उनमें पकिस्तान से आये शरणार्थियों का पुनर्वास पहली समस्या थी । अपनी अपार संपत्ति, घरबार आदि छोड्कर भारत भूमि से पकिस्तान चले गये मुसलमान भाइयों की स्थिति ठीक करने केलिए 55 करोड रुपए पकिस्तान को देने का बोझ भी नव भारतोदय के साथ ही साथ हमें उठाना पडा । स्वतंत्रता पूर्व विशाल भारत के हिन्दू और मुसलमान जो पास पडोस में भाई-भाई के रूप में मैत्री-भाव के साथ रहते थे, भारत और पकिस्तान के रूप में बाँटे गये तो स्वतंत्रता की खुशबू फैलाने की जगह आपस में तलवार चलाकर खून की बदबू से वातावरण को कलंकित करते थे जिस का प्रभाव अब भी देश के विभिन्न प्रदेशों में, विभिन्न समस्याओं के रूप में, अभिशाप के रूप में निकलता रहता है । हिन्दू मुसलमान झगडा बंगाल, पंजाब, दिल्ली जैसे अनेक केन्द्रों में हो रही थी, जिस पर व्रणी हृदय से, लकुटिया टेक कर "राम-नाम जपते हुए, गान्धीजी ने अकेले श्मशान यात्रा की थी । लोगों के मन में परिवर्तन लाने केलिए कलकत्ते में, और दिल्ली में उन्होंने उपवास किये ।
इस समय के गान्धीजी के विचारों का अनुस्मरण यशपाल जैन ने लिखा है "स्वराज्य मिलने के बाद स्वतंत्र भारत केलिए उन्होंने जो स्वप्न देखे थे, उनके चरितार्थ होने की अब उन्हें उम्मीद नहीं रही थी । चारों ओर उन्माद था । लोगों के विवेक पर जैसे पर्दा पड गया था[5] ।"
भारत सरकार से पकिस्तान को 55 करोड रुपए, गान्धीजी ने दिलाया तो हिन्दुओं ने गान्धीजी को मुसलमान का समर्थक मान लिया था । स्वतंत्र भारत में जीवित रहने को उनके विरोधियों ने, उन्हें छः महीने की अवधी भी नहीं दी । साढे पाँच महीने के अन्दर याने 30 जनवरी 1948 को गान्धीजी की हत्या हुई[6] । गाँधीजी अपनी मृत्यु के पहले अवसर

5· साबरमती का संत यशपाल जैन, पृ·53-54

6· 100 Great Modern Lives p.341

कहा करते थे, "प्रेम का रास्ता खाडे की धार पर चलने के समान है । प्रेम की खातिर सुकरात को विष का प्याला पीना पडा और ईसा को सूली पर लटकाया गया था[7] ।"

देश-विभाजन के साथ, क्षेत्र फल की दृष्टि से भारत विश्व में सातवें स्थान पर आया । "भारत का क्षेत्र-फल 12,61,597 वर्ग मील है । उत्तर में कश्मीर से दक्षिण में कन्याकुमारी तक भारत की लम्बाई करीब दो हज़ार मील हैं तथा पूर्व में असम से पश्चिम में गुजरात तक चौडाई करीब 1850 मील हैं[8] ।" देश-विभाजन के पश्चात् जनसंख्या के 82 प्रतिशत नव भारत में आया, लेकिन कृषि-क्षेत्र 75 प्रतिशत ही मिला । गेहूं उपज केलिए प्रसिद्ध पंजाब और सिन्ध के विशाल प्रदेश पकिस्तान के पास रह गये । याने स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ ही साथ खाद्यान्न की समस्या ने भी सिर उठाया । इनके अलावा, सरकार की शासन-प्रणाली, आन्तरिक और बाह्य-नीति, नागरिकों की रक्षा, सीमा सुरक्षा, यातायात के साधन आदि कई कार्यों पर सजगता से आगे बढना पडा । 1950 जनवरी 26 को लागू किये गये हमारे संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों को सुरक्षित रखा गया है[9] । ये अधिकार हैं "समता का अधिकार, स्वातंत्र्य अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, संपत्ति का अनिवार्य अर्जन, सांविधानिक उपचारों का अधिकार[10] ।" प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति केलिए ये अधिकार दिये गये हैं । जनता की भलाई केलिए सरकार ने कई प्रकार के कानून निर्धारित किये, जैसे - ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून, फैक्ट्री कानून, न्यूनतम वेतन-कानून, बालक श्रम-कानून,

---

7. साबरमती का संत यशपाल जैन, पृ.55
8. Simon's Hand Book on India A.Simon George,p.2
9. Collins Concise Encyclopedia, p.283
10. The Constitution of India,Part III, pp.5-11

प्रोविडेन्टफनट आक्ट कर्मचारी बीमा कानून, किरायेदारी कानून आदि । छुआछूत मिटाना, पिछडी जातियों की शिक्षा की ओर ध्यान देना, उनके स्तर को ऊपर उठाना, आदि कार्यों पर सरकार ने कई कई सराहनीय कदम उठाये । जनता के नैतिक-स्तर को उन्नत करने एवं उन्हें स्वस्थ रखने केलिए मद्यनिषेध की नीति, वेश्यावृत्ति रोकने के कानून आदि बनाये । सरकार की ओर से सामाजिक मूल्यों की स्थापना हुई । इतना बहुत अधिक करने पर भी, बेकारी, अशिक्षा छुआछूत, अन्धविश्वास आदि फैलकर समाज कमज़ोर हो रहा है । देश-प्रेम, एकता आदि बढने के स्थान पर भ्रष्टाचार, शोषण, स्वार्थता आदि पनप कर भारत का कलेबर विकृत एवं विश्लिप्त हो गया है ।

स्वतंत्र भारत में चुनाव के द्वारा शासकों का निर्णय हो रहा है । आज़ादी केलिए आम जनता को तैयार करके उन में आत्मविश्वास भरकर एकता के सूत्र में बान्धने का कार्य गान्धीजी के नेतृत्व के कांग्रेस कर रहा था । आदर्शवान नेताओं के नियंत्रण में शासन सुचारु रूप से चलने का संकल्प आम जनता ने किया । इसलिए चुनावों में एक ही पार्टी कांग्रेस की जीत बार बार होती रही । प्रथम चुनाव §1951§ में, भारत-रत्न नेहरूजी के नेतृत्व को जनता ने स्वीकार किया और प्रधान मंत्री के रूप में नेहरू विराजमान रहे । उनके नेतृत्व की सरकार ने प्रथम-पंचवर्षीय योजना §1951-1956§ के द्वारा जन-जीवन का प्रतिमान ऊँचा करना, जनता को अधिक समृद्ध व विविध प्रकार के जीवन बिताने का अवसर देना, प्राप्त मानवीय और भौतिक साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग करके आर्थिक विषमता दूर करना, और अन्ततोगत्वा लोगों को काम और रोज़ी देना" आदि कार्य करने की योजना चलायी [11] ।" प्रथम चुनाव में विभिन्न पार्टियों के उम्मीदवार भाग लेते थे जिनमें राज्यों के 3278

11· भारत ज्ञान-कोश 1969-70, पृ·143

स्थानों केलिए 17,000 और लोक सभा के 497 स्थानों केलिए 1823 उम्मीदवार थे।[12] यह विचारणीय बात है कि स्वतंत्रता के पौ फटे, प्रथम-मंत्रिमण्डल में देश के सभी नेताओं के बार-बार प्रार्थना करने पर भी गान्धीजी ने सत्ता का स्वाद लेना इन्कार किया था। इसी गान्धी जी के देश में चुनाव द्वारा सत्ता प्राप्त करने की जल्दबाज़ी चन्द वर्षों के अन्दर आयी है। इतने पदलोभी उम्मीदवारों से बहुत कम ही विजयी हुए और अधिकार का स्वाद जिन को न मिला उनका सरकार की आलोचना करना और सत्ता में आने के षड्यंत्र रचते रहना स्वाभाविक भी है। सरकार के सामने कई समस्यायें आयीं। चढ़ती कीमतों को कम करना, कच्चे माल की कमी और उपभोक्ता माल की कमी को पूरा करना, और विस्थापितों को पुनः बसाना और योजनाबद्ध आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रारंभ करना आदि लक्ष्यों को प्रधानता देकर पंच वर्षीय योजना आगे बढ़ी।

लोक-सभा के दूसरे चुनाव (1957) में, केन्द्र में और केरल को छोड सभी राज्यों में कोंग्रेस अधिकार में आया। "कम्यूनिस्ट" पार्टी ने केरल राज्य में, सर्वप्रथम सरकार बनायी। केन्द्र में जवहरलाल नेहरू फिर प्रधानमंत्री बनाये गये। "जनता के रहन-सहन का मान ऊँचा करना, उद्योगों की स्थापना व विकास करके औद्योगिकरण तेज करना आर्थिक-विषमता दूर करना आदि लक्ष्यों को ध्यान में रखकर द्वितीय-पंचवर्षीय योजना (1956-61) आगे बढती रही।[13] लोक-सभा के तीसरे चुनाव (1962) में भी कोंग्रेस की जीत हुई और जवहरलाल नेहरू प्रधान मंत्री बने। "तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) शुरू हुई। खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना और कृषि पैदावार को बढाना,

---

12. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग 2, पृ.274

13. भारत ज्ञान-कोश 1969-70, पृ.144

राष्ट्रीय आय में प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत वृद्धि करना, मूल उद्योगों का विस्तार करना, उद्योगीकरण के और विकास केलिए मशीन-निर्माण-क्षमता का निर्माण करना और दस साल के अन्दर अपने देश के साधनों के ही भरोसे आर्थिक विकास करना, जन-शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग और रोजगार की सम्भावनाओं को बढाना, आर्थिक विषमता को दूर करना और आर्थिक शक्ति का समान वितरण करना आदि उद्देश्य थे तीसरी योजना के।[14]" लेकिन यह काल, भारत के इतिहास में, कई विपत्तियों से गुज़र रहा था। 1954 में भारत-चीन के बीच पंचशील सिद्धान्तों के अनुसार भाई-भाई के रूप में रहने का समझौता यद्यपि हुआ था, तो भी सन् 1962 सितम्बर 19, में चीन ने भारत पर आक्रमण शुरू किया।[15] सन् 1964 मई में नेहरूजी का स्वर्गवास हुआ। प्रधान मंत्री पद पर लालबहादुरशास्त्री पधारे गए। 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण शुरू किया।[16] ताष्कन्ट चर्चा के समय 1966 जनवरी 11 में, प्रधान मंत्री शास्त्री जी का देहान्त हुआ तो जनवरी 19 को श्रीमती इन्दिरा गान्धी प्रधान मंत्री पद पर आसीन हुई।[17] दो लडाइयाँ, दो प्रधान मंत्रियों के देहत्याग आदि अप्रत्याशित घटनाओं से योजना-कार्यक्रम में अधिक प्रगति नहीं हुई। राष्ट्रीय सीमा सुरक्षित करने केलिए सरकार को अधिक ध्यान देना पडा। ऐसे संकट काल में भी विरोधी पार्टियों ने, सरकार की आलोचना करने में संकोच नहीं किया।

---

14. Malayala Manorama Year Book 1962, p.270
15. Malayalam Encyclopaedia Vol.4/ p.122
16. Illustrated World Encyclopedia, p.2727
17. The Times of India Directory and Year Book,1967/ pp.976-977

लोक-सभा के चौथे चुनाव में (1967) में कोंग्रेस की जीत हुई । प्रधान मन्त्री के रूप में इन्दिरा गान्धी दुबारा बिठायी गयीं । लेकिन चुनाव जीते कोंग्रेस सदस्यों की संख्या बहुत कम (279) हुई ।[18] कोंग्रेस पार्टी के अन्दर अधिकार के नाम पर मुठभेड होती रही । /ने नेताओं के बीच में पद प्राप्ति की इच्छा बढती रही । बूढे वर्ग और युवक वर्ग में अनैक्य बढ गया । चौथे चुनाव के पूर्व ही मतैक्य नष्ट हुए थे । इस का परिणाम है कम संख्या में उम्मीदवारों की जीत । हाथ में कोंग्रेस का झंडा लिये, मन ही मन अपनी ही पार्टी के उम्मीदवार को हराने के विचार से चलनेवाले छोटे-बडे कई नेता थे । चुनाव के समय कई प्रकार के तंत्रों का आविष्कार इस केलिए करते थे । इस तन्त्र ने ही 1967 के चुनाव में पश्चिम बंगाल, बिहार, पंजाब, उडीसा, मद्रास, केरल जैसे प्रान्तों से कांग्रेसी शासन को समाप्त किया । इस प्रकार चुनावों के बढने के अनुसार कांग्रेस के सीटों का घटना भी संभव हुआ । याने 1952 में कोंग्रेस को 42·20 प्रतिशत वोटे मिले, 1957 में 44·97 प्रतिशत, 1962 में 43·53, तथा 1967 में 39·96 प्रतिशत वोट ।[19] इस बीच जुलाई 1969 में अखिल भारतीय कोंग्रेस पार्टी का विघटन हुआ दो खण्डों में, एक सत्तारूढ पार्टी जिस का नेतृत्व इन्दिरा गान्धी कर रही थी और दूसरा संगठन कोंग्रेस जिस का नेतृत्व कामराज ने किया । भारत को एक बार और पकिस्तान से युद्ध करना पडा पूर्वपकिस्तान में । इस लडाई का परिणाम यह निकला कि सन् 1947 में बंटवारे के समय का पूर्व पकिस्तान 1970 में बंगला देश बन गया ।[20] युद्धजन्य समस्याओं के कारण पंचवर्षीय योजना की प्रगति में मन्दता पडना स्वाभाविक था ।

---

18. विश्व विज्ञान कोश भाग 2, पृ·276

19. Indian Government and Politics Dr.A.S.Natang, p.289

20. Malayalam Encyclopaedia, Vol.4,p.125

ऐसी फीकी परिस्थिति में, याने चीन एवं पकिस्तान के साथ की लडाइयों से जन्मी हालत में, 1966 से 1969 तक के काल में तीन वार्षिक योजनाएँ चलायी गई।[21] चतुर्थ पंचवर्षीय योजना §1969-1974§ में, ग्रामीण जनता की आय में वृद्धि तथा खाद्य में आत्मनिर्भरता, भवन निर्माण केलिए अधिक सामग्री जुटाना, रसायन, मशीन-निर्माण, खनिज, बिजली, यातायात तथा धातु के क्षेत्रों में निरन्तर विकास, उत्पादन-क्षमता में विकास, रोज़गार तथा सामाजिक न्याय में वृद्धि, परिवार-नियोजन को व्यापक पैमाने पर लागू करना आदियों को विशेष बल दिया था।[22]

पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश में प्रगति अवश्य हुई है। लेकिन जनसंख्यावृद्धि सभी प्रगतियों को निगलती है। सन् 1941 से 1961 तक की जनसंख्या-वृद्धि पर दृष्टिपात करना इस समय समीचीन लगता है। अस्वतंत्र भारत की जनसंख्या 1941 में 31 करोड 48लाख थीं। 1951 में, स्वतंत्रता और गणतंत्रता और गणतंत्रता के विजयोल्लास में, हमारे जन-संख्या 35,68,79,394 रही। लेकिन 1961 में दो आम चुनावों के बीतने के बाद हम बढे 43,92,34,771 तक।[23] याने पिछले बीच साल में हुई जनसंख्या-वृद्धि से हमें यह शिक्षा मिलती है कि पंचवर्षीय योजनाओं से देश में जो प्रगति चाहिए थी वह जनसंख्या वृद्धि से अप्राप्य रह गयी है। इस विषय को व्यक्त करते हुए डा॰ एस॰चन्द्रशेखर ने, जो स्वास्थ्य, परिवार नियोजन मंत्री थे, सन् 1968 में ऐसा विचार प्रकट किया कि - पंचवर्षीय योजनाओं से जो कुछ लाभ हुआ, वह जनसंख्या वृद्धि के कारण व्यर्थ हो गया है। इसलिए विकास संबंधी गतिविधियों को

---

21. Malayala Manorama Year Book 1982, p.484
22. Malayala Manorama Year Book 1986, p.231
23. The Times of India Directory and year Book 1968,p.1

उद्देश्यपूर्ण बनाने केलिए जनसंख्या की वृद्धि की रोक थाम परमावश्यक है ।"[24] अपने विचार की पुष्टि केलिए वे आगे, डरानेवाली जनसंख्या-वृद्धि की यह तालिका निकालते हुए कहते हैं कि - 1968 के मध्य भारत की जनसंख्या 52 करोड है । भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का 14 प्रतिशत है । भारत में प्रत्येक 1 1/2 सेकेन्ड में एक बच्चा पैदा होता है । अर्थात् प्रतिवर्ष भारत में दो करोड दस लाख बच्चे पैदा होते हैं । भारत में प्रतिवर्ष 80 लाख व्यक्तियों की मृत्यु होती है । मृत्युदर प्रतिवर्ष, प्रति सहस्र 16 है । इस प्रकार देश की जनसंख्या में प्रतिवर्ष एक करोड तीस लाख की वृद्धि होती है । देश की औसत आयु 1950 में 32 वर्ष थी । 1968 में वह 51 वर्ष हो गई । 1947 की स्वतंत्रता से 1968 तक भारत की जनसंख्या में 18 करोड 27 लाख की वृद्धि हो चुकी हैं ।[25] 1971 की हमारी जनसंख्या 546 955 945 तक पहुँच गयी है ।[26]

पाँचवें लोक-सभा चुनाव (1971) में इन्दिरा गान्धी के नेतृत्व के कोंग्रेस की जीत हुई । वे तीसरी बार प्रधान मंत्री चुनी गई । कोंग्रेस के बहुसंख्यक पुराने नेता, अलग कोंग्रेस (ओ) के रूप में इन्दिरा कोंग्रेस के विरुद्ध लड़ते रहे फिर भी 1971 चुनाव में इन्दिरा कोंग्रेस को 43·7 प्रतिशत वोट मिले थे ।[27] पाँचवीं योजना (1974-78) काल में कई समस्याओं से राष्ट्र को गुज़रना पडा । एक ओर रूपए का मूल्य घटाया गया तो दूसरी ओर गरीबी बढ गई । गरीबी से पीड़ित आम जनता की उन्नति को लक्ष्य कर के कई कार्य किये, लेकिन

24· भारत केलिए जनसंख्या-वृद्धि पर नियंत्रण आवश्यक है
डॉ·एस·चन्द्रशेखर, नई धारा, पृ·119

25· Harver World Encyclopedia,Vol12,p.2218

26· भारत केलिए जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण आवश्यक है
डॉ·एस·चन्द्रशेखर, नई धारा, पृ·118-119
मार्च 1969

27· Indian Government and politics A.S.Narang,p.288

सब के सब जल-रेखा पडी । देश की प्रगति को लक्ष्य कर के सरकार ने बीस-सूत्री कार्यक्रमों की घोषणा की । नेताओं की ओर से बनायी समस्याओं से भारत का वातावरण विक्षुब्ध बना । बेकारी, गरीबी दोनों समस्याओं से आमजनता की विवशता के बीच, देश की चिन्ता के ऊपर कुर्सी प्राप्त करने के विचार में थे कई नेता लोग । इस प्रकार दल-बदल राजनीति की स्थापना हुई । एक पार्टी के नेता, दूसरी पार्टी में जाने लगे । आम जनता में नेताओं के प्रति आदर के स्थान पर विद्वेष की भावना पैदा हुई । पद और सम्मान प्राप्त करने केलिए अनैतिक राह अपनानेवाले नेताओं के विरुद्ध आम जनता ने आवाज़ उठाई । इस प्रकार, पाँचवीं योजना समाप्त होने के पहले ही, भारत के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हुआ - 1975 में देश भर में आपात काल की घोषणा हुई[28] ।

आपात्स्थिति में देश-भर में क्या-क्या हुआ इस पर कई कथाएँ प्रचलित थीं । आपातकालीन हालत का परामर्श करते हुए डॉ· विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने यों लिखा है - "26 जून, 1975 को देश में अचानक आपात् स्थिति की घोषणा हुई । बडे बडे नेता गिरफ्तार किये गये । चारों ओर आशंका और भय की डरावनी छाया मण्डराने लगी । कोई नहीं अनुमान लगा सकता था आगे रास्ता कहाँ मुडेगा और कौन-सा मोड कहाँ ले जाएगा । ....[29] ।" आपात्काल में देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता छीन ली गई थी । इसके बारे में मृदुला गर्ग ने यों लिखा है - "भारत में आपातकाल के दौरान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता छीन ली गई । विदेशी सत्ता समान एक सत्ता हमारे ऊपर थोप दी गई । अधिकतर लोग डर कर चुप हो गए । इन में बहुत सारे

28· Malayalam Encyclopaedia Vol.4, p.65

29· आपात्स्थिति, लेखक और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता
डॉ·विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - लेखक और और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता,पृ·106,

लेखक भी थे।...... ।[30]" आपात्काल में देश के कई पत्रकारों ने उस का समर्थन करते हुए लिखे। कई व्यापारी खुश हुए कि उन की फाक्टरियों में यथासमय काम शुरू हुई। स्कूल-कालेजों में छात्र और अध्यापक अपने कार्यव्यापार में लगे हुए थे। बस्टापों में भीड ने कतार में खडे होकर धक्का धूम के बिना यात्रा करना सीखा। लेकिन देश में आपात्काल के बिना भी ये नियम चला सकते हैं। देश में अनुशासन बढने और आर्थिक प्रगति के साथ ही साथ नागरिकों की स्वतंत्रता परम आवश्यक है। आपात्‌काल की आलोचना करते हुए 1976 अगस्त 25 को प्रधान मंत्री इन्दिरा गान्धी को केरल राज्य के तिरुवल्ला से, ईसाई धर्म के 'मार्तोम्मा मेत्रा-पोलीता डॉ॰यूहानोन बिषप' ने जो पत्र लिखा जिस का सारांश ऐसा है "आपात्काल की घोषणा के फलस्वरूप शिक्षा क्षेत्रों में शांति और कार्य कुशलता आयी है, खेती में आयी प्रगति भी सराहनीय है। लेकिन मोरारजी जैसे नेताओं को जेल में बन्द करने और नागरिकों के रायप्रकटन पर लगाये प्रतिबन्ध एवं अखबारों पर लगाये नियंत्रण आदि हमें निराश करते हैं। इसलिए अपात् स्थिति हटाये जाने को देश के हज़ारों के नाम पर मैं कहता हूँ। एक और प्रार्थना यह भी है कि आपात्काल की छाया में देश में चुनाव न चलावे तथा संविधान में सुधार भी न कर पावे .... ।[31]" आपात्काल की छाया में जब देश भर में गिरफ्तारी ज़ारी रही तो उस खतरे की परवाह किये बिना भारत के अन्य नेता एवं बिषप चुप्पी धारण करते समय ही उन्होंने ऐसा खत लिखा था। शायद आपात्काल को समाप्त करने में इस खत ने भी अपनी भूमिका निभाई होगी। पाँच महीने के अन्दर 1977 जनवरी 18 को प्रधान मंत्री ने चुनाव की घोषणा की और 1977 मार्च 21 को आपात्काल समाप्त किया गया।[32]

---

30. यह हर नागरिक का अनमनीय अधिकार है मृदुल गर्ग
लेखक और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता, पृ॰88

31. 'Abraham Malpante Naveekaranam' : Dr.M.M.Thomas,p.70-71 (Malayalam)

32. Malayala Manorama Centerary Year Book 1988, p.111

छठे लोक-सभा चुनाव [1972], जो आपात्काल की छाया में हुआ था, में जनता पार्टी के हाथ में शासन-चक्र मिल गया। 43 प्रतिशत वोट और 298 सदस्यों के साथ विजयी जनता-पार्टी में कोंग्रेस पार्टी के पुराने नेता भी शामिल थे।[33] इस प्रकार वह शासन जो कोंग्रेस की ही बपौती थी, नव पार्टी के हाथ में आ गया। प्रधान मंत्री के रूप में मोरारजी देशायी[34] चुने गए जो कोंग्रेस मंत्री-मण्डल के भी भागीदार थे कई साल। मार्च 24 को मोरारजी देशायी प्रधान मंत्री बने। लेकिन संयुक्त मन्त्रिमण्डल होने के कारण प्रधान-मंत्री पद पर अनेक नेताओं की आँखें एक साथ जमने लगीं। उस संयुक्त मन्त्रिमण्डल में पद और ओहदे के पीछे पडे नेताओं की भरमार थी, कुर्सी हथियाने केलिए वे गिद्द चील और उकाब की तरह आपस में नोच खाते थे। ऐसी परिस्थिति में मोरारजी ने विवश होकर 1979 जुलाई 15 को त्याग पत्र दिया। 1979 जुलाई 28 को चरणसिंह प्रधान मंत्री बने। अगस्त 21 को लोकसभा स्थगित की गई। इस प्रकार एक महीना पूरा करने का सौभाग्य तक चरणसिंह को न मिला। याने 25 दिन के प्रधान मंत्री चरणसिंह भी, प्रधान मंत्रियों की कतार में आये।

पाँचवीं योजना के समाप्त होने के एक वर्ष पूर्व 1978 मार्च में जनता सरकार ने पंचवर्षीय योजना समाप्त की।[35] उस के बाद एक एक वर्ष की प्रगति के अनुसार योजना को नवीन करके चलाने की योजना शुरू की। अगली पंचवर्षीय योजना की चर्चा तक पूरा किये बिना शासन को समाप्त करना पडा प्रधान मंत्रियों को।

---

33. Indian Government and Politics A.S.Narang,p.299

34. Encyclopaedia of Indian Events and Dates S.B.Bhattacharje,p.229

35. Malayala Manorama Year Book 1982, p.486

सप्तम लोक-सभा चुनाव जनवरी 1980 में हुआ ।

जन सम्मति कोंग्रेस के पक्ष में थी । श्रीमती इन्दिरा गान्धी प्रधान मंत्री बनीं । 1980 - चुनाव में 42·5 प्रतिशत वोट प्राप्त करके कोंग्रेस की जीत हुई थी । पिछले चुनाव में, याने 1977 में कोंग्रेस को 34·5 % से पराजित होना पडा था, और अब जनता पार्टी को कुल 18·9 प्रतिशत अथवा 31 सीटों से तृप्त होना पडा ।[36] छठी पंचवर्षीय योजना [37]§1980-85§, पिछली योजनाओं की हार-जीत की पृष्ठभूमि में आरंभ हुई । भारत की आर्थिक हालत बढाना, वैज्ञानिक-शिक्षा को लक्ष्य करना, ऊर्जा उत्पादन बढाना आदि प्रमुख उद्देश्यों के साथ आगे बढी । इसके साथ ही साथ बीस सूत्री कार्यक्रम भी आगे बढ रहे थे । भारत-भर में कई प्रकार की घटनाएँ एक एक करके हुई सन् 1980 से । पूर्वकाल की अपेक्षा विविध प्रान्तों में दलों में विघटन एवं शासन में परिवर्तन आये । 1981 में असम में अराजकता फैली, छात्र पढाई छोड्कर क्लास से बाहर आये । तमिलनाड में ए·ऐ·डी·एम·के· का शासन 1980 में शुरू हुआ । कोंग्रेस के दो दल मिलकर 1982 में एक दल बना । आन्ध्र में, तेलुगुदेशम पार्टी के रामराउ 1983 में शासन में आया । उसी वर्ष जनता पार्टी का रामकृष्ण हेगुडे कर्नाटक में शासन में आया । असम में 1983 में कोंग्रेस का हितेश्वर सेयकिया अधिकार में आया । उसी वर्ष ही जम्मू-कश्मीर में नाषनल कोन्फ्रन्स का फरूक अब्दुल्ला शासन में आया । 1983 में पंजाब में राष्ट्रपति शासन आरंभ हुआ । इसी काल में पंजाब में एक स्वतंत्र राष्ट्र-खलिस्तान केलिए कुछ लोगों ने माँग की । वहाँ के सुवर्ण क्षेत्र में, भारत के विरुद्ध लडाई शुरू करने केलिए हथियार ढेर किये गये । भारत की एकता को बनाये रखने केलिए 1984 जून 6 को सुवर्णक्षेत्र में "ओपरेषन ब्लूस्टार" शुरू किया । इस में कुपित सिक्कों ने देश-भर में

---

36. Indian Government and Politcs A.S. Narang,p.299

37. Encyclopaedia of Indian events and Dates, p.235

हत्याएं शुरू की, रेलगाडी में बस में दिल्ली के कई जगह सिक्खों ने बम फेंके तथा 1984 अक्टूबर 31 को दिल्ली में प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी पर गोली चलाकर वध किया। देश की ऐसी हालत में प्रधान मंत्री के रूप में राजीव गान्धी आसीन हुए।

आठवें लोकसभा चुनाव 1984 दिसम्बर में हुआ। लोकसभा के 403 सीट कांग्रेस को मिले तो राजीव गान्धी प्रधान मंत्री बने।[38] सप्तम पंचवर्षीय योजना (1985-90) में, भारतीय जनता को सम्पन्नता, आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक न्याय की ओर अग्रसर कराने का लक्ष्य निहित है।

1989 के नवम लोक-सभा चुनाव में किसी भी पार्टी को शासन-चक्र चलाने की जनसम्मति नहीं मिली है। फिर भी बी·जे·पी·, सी·पी·एम·, सी·पी·आई, कांग्रेस,एस, आदि छोटी छोटी पार्टियों की सहायता से जनता दल शासन में आया। प्रधान मंत्री के रूप में वी·पी· सिंह विराजमान हुए, जो पिछले कांग्रेस मंत्री-मण्डल के प्रमुख भागीदार थे। लेकिन वी·पी· सिंह को प्रधान-मंत्री के रूप में चुनने में जनता-दल के नेताओं में पूर्णरूप से मतैक्य नहीं था। उप-प्रधान मंत्री के रूप में देवीलाल बिठाये गये। प्रधान मंत्री और उपप्रधान मंत्री के बीच में अनैक्य बढ गया तो अन्य दल के नेता आकर उनको सान्त्वना देते रहे। इस बीच उत्तर भारत में "पिछडे वर्ग को दिये जानेवाले आरक्षण के नाम पर निर्बोध बालक तक आत्माहुति करते रहे। "मण्डल-कमीशन रिपोर्ट" के वक्ता और संचालक के रूप में वी·पी·सिंह आगे आये तो देश-भर में

---

38. Encyclopaedia of Indian events and Dates p.241

नरहत्या, लूट, झगडा आदि फैलकर देश के लोग दो श्रेणी में बँट गये। इस विषय पर "संचेतना" में ऐसा लिखा गया - "किन्तु यह सवाल तो मुझे मथता ही है कि इस मुद्दे को लेकर उत्तर भारत में इतना तूफान क्यों उठा ? क्यों इतने अबोध लड़के लड़कियों ने आत्मदाह कर के अपने अपने प्राणों की आहुति दे दी ? ऐसा लगता है, जैसे एक सही बात गलत ढंग से देश के सामने रखी गई, जिस के परिणाम स्वरूप देश का जनमत दो ध्रुवों में विभाजित होने लग गया।[39]" मंत्री-मण्डल के सदस्य इस विषय में मतैक्य में नहीं आये। इस बीच ही "राम-जन्म-भूमि - बाबरी मस्जिद" समस्या ज़ोर पकड़ती आयी। मंत्री मण्डल का समर्थन देते आये भारतीय जनता पार्टी और प्रधान मंत्री में "रामजन्म-भूमि-बाबरी मस्जिद समस्या" पर मतैक्य नहीं हुआ। बी·जे·पी· के बार बार आग्रह करने पर भी, वी·पी· सिंह की ओर से इस समस्या का कोई समाधान नहीं हुआ। इस बीच 25 सितम्बर 1990 में अड्‌वानी की रथयात्रा सोमनाथ से अयोध्या की राम-जन्म-भूमि को लक्ष्य करके प्रारंभ हुई। आरक्षण के नाम पर जो कलह देश भर में हो रहा था, उस आग में घी डालने का कार्य इस से हुआ। धधकते जन समूह को रोकने केलिए सरकार को देश के विभिन्न प्रदेशों में सेना भेजनी पडी। "कर सेवा" केलिए समूचे भारत से हज़ारों की संख्या में युवक, स्त्री, पुरुष अयोध्या को लक्ष्य करके निकले। 23 अक्टूबर 1990 को बिहार के समस्तिपुर में अड्‌वानी गिरफ्तार किये गये और पूर्व निर्णय के अनुसार भारतीय जनता पार्टी ने सरकार का अपना समर्थन वापस लिया।[40] प्रधान मंत्री में अविश्वास प्रकट करते हुए कई लोक सभा

39· समीकरणों की सच्चाई - अपनी ओर से - संचेतना - सम्पादक महीपसिंह, पृ·13, दिसम्बर 1990

40· "कालक्रम के अनुसार अयोध्या की घटनाएँ" - ज्योत्सना, पृ·29 अक्टूबर 1990

सदस्य सामने आये । मंत्री-मण्डल के कई सदस्यों ने वी॰पी॰ सिंह में अविश्वास घोषित करते हुए त्याग पत्र दिये। फिर भी प्रधान मंत्री ने त्याग पत्र नहीं दिया । लोक सभा सम्मेलन में "वोट" के द्वारा जब वे पराजित हुए तब वी॰पी॰ सिंह ने त्याग पत्र दिया ।

इस बीच जनता दल का विभाजन हो चुका था । लोक सभा के जनता दल के बहुत अधिक सदस्यों ने मिल कर चन्द्रशेखर को, नेता के रूप में घोषित किया । सदस्य संख्या में लोक सभा की बडी पार्टी कोंग्रेस-ऐ ने, ऐसी विपत्तिदायक हालत में एक चुनाव से देश को बचाने केलिए, चन्द्रशेखर का समर्थन किया । इस प्रकार चन्द्रशेखर, जिस ने अभी तक किसी ओहदे पर विराजने से अपने को वंचित रखा था, भारत के प्रधान मंत्री बने ।

इस प्रकार राजनैतिक क्षितिह पर नज़र डालने से मालूम होता है कि हमारे चारों ओर कई समस्यायें मुँह बाये खडी हैं । कश्मीर समस्या पर पकिस्तान की ओर से युद्ध की सूचना, खलिस्तान की स्थापना केलिए सिक्खों द्वारा माँग से जनित घटनायें, तमिलनाड में श्रीलंका से आये शरणार्थियों की समस्याएँ, उत्तर भारत में एवं देश की कई जगहों पर राम-जन्म-भूमि - बाबरी मस्जिद समस्याएँ, इराक द्वारा कुवेट पर आक्रमण करने से कुवेट से लौटे भारतवासियों की समस्यायें, इराक-कुवेट लडाई से होनेवाले आर्थिक एवं राजनैतिक समस्यायें आदि अनेक समस्याओं से सारा वातावरण निराशाजनक हो गया है । इन के बीच भी नेताओं की आँखें लाभ उठाने में परख रही हैं ।

सन् 1947 से 1990 तक के शासन ने कई करवटें बदलीं । पिछले 43 वर्ष के अन्दर हमें जो प्रगति प्राप्त करनी थी, वहाँ तक पहुँच न पाये । कई पार्टियों के हाथ से शासन-चक्र घूम गया, पर देश में आशा-

वादी परिवर्तन नहीं हुआ । इसके कारणों पर प्रकाश डालने से हम यह पा सकते हैं कि भारत में नेता लोगों की स्वार्थता ने नये नये दलों को जन्म दिया है । स्वतंत्रता के समय, 1947 में भारत में पार्टियों की संख्या बहुत कम थी । सब का विचार देश की स्वतंत्रता था । लेकिन स्वतंत्र धर्म निरपेक्ष भारत में, एक छोटी बारिश के बाद उगनेवाले कुकुरमुत्तों की तरह, जाति के नाम पर, भाषा के नाम पर, प्रादेशिकता के नाम पर पार्टियाँ उगने लगी । इन पार्टियों का फिर व्यक्तियों के नाम पर विघटन होने लगे । इस प्रकार जाति-धर्म आदि के नाम पर पार्टियों का पनपना देश की एकता केलिए खतरनाक है । दो-पार्टियों का आपसी टकराव, देश के सभी क्षेत्रों में फैले हुए हैं । कारखानों में, स्कूल, कालेजों में, खेतों, सडकों पर, दफ्तरों, अस्पतालों में किसी न किसी गठित समस्या पर संघर्ष साधारण सी बात हो गयी है जिस से प्रगति अवरुद्ध होते हुए एक प्रकार से "ठप" की स्थिति फैली हुई है । इस उजडी हुई राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने से उसके मूल उत्स ढूँढ निकाल सकते हैं । ये मूल उत्स हैं - चरित्रहीन राजनीतिज्ञ, उन की सर्वग्रासी स्वार्थ लिप्सा, गान्धीवाद का हनन, प्रजा तंत्र का खोखलापन, आमजनता की अन्धश्रद्धा, अकर्मण्यता, निरक्षरता आदि ।

चरित्रहीन राजनीतिज्ञ

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपनायी राजनीति, सुचारु प्रशासन, परिवर्तन या जनकल्याण के स्थान पर सुविधाएँ पाने, सम्मान प्राप्त करने और धन बटोरने का यन्त्र मात्र बन कर रह गई है । प्रत्येक राजनीतिज्ञ केलिए सत्ता प्राप्त करना सब से बडा लक्ष्य बन गया है । इसकेलिए वे कुछ भी करने को तैयार हैं । इस पर टिप्पणी करते हुए

श्री• महीप सिंह ने लिखा है - "हम ने देखा, कल तक त्याग और बलिदान की दुहाई देने और देश भक्ति के तराने गानेवाला नेता वर्ग सत्ता मिलते ही भूखे भेडियों की तरह धन और यश कमाने पर टूट पडा है। चारों तरफ एक अजीब सी हफरा-तफरी है। कोई भी मौका चूकना नहीं चाहता, समय रहते सभी इतना एकत्र कर लेना चाहते हैं कि गद्दी न रहने के बाद भी किसी प्रकार की चिन्ता न रहे।"[41] इस तरह के चरित्रहीन, चरित्ररिक्त राजनीतिज्ञों और सिद्धान्त शून्य जन नायकों के गलत हाथों में देश का नेतृत्व चले जाने के कारण उस का भविष्य अन्धकारमय बन गया है। मानव मूल्यों का सर्वाधिक अवमूल्यन करनेवाले, भारतीय राजनैतिक जीवन की, विसंगतियों को पूरे तीखेपन के साथ नाटककारों ने प्रस्तुत किया है।

आत्मसुख की अन्धी-दौड

पाषाण युग से वैज्ञानिक युग तक सत्ता के हथकंडों और शोषित जनता का सजीव अंकन "सुशीलकुमार सिंह" अपने राजनैतिक व्यंग्यप्रधान नाटक" सिंहासन खाली है" में करता है। नाटक के प्रारंभ में ही उन्होंने व्यक्त किया है "मानव सभ्यता के क्रमिक विकास के क्षणों में, जब पहली बार "सत्ता", "सिंहासन" तथा "राजा" की स्थापना हुई होगी, शायद तभी ने बहुत स्वाभाविक रूप में राजा और प्रजा के मधुर सम्बन्धों के बीच यह ज़हर व्याप्त हो गया होगा। राजा इस विश्वास के साथ बनाया जाता है कि वह सत्ता और सिंहासन की ताकत से प्रजा का पोषण और रक्षण करेगा, परन्तु राजा, राजा बनते ही निरंकुश हो जाता है और पोषण तथा रक्षण की बात भूलकर शोषण तथा

41• विद्रोह और साहित्य सम्पादक - नरेन्द्र मोहन, देवेन्द्र इस्सर, पृ•35, सं•1974

भक्षण करने लगता है ।"[42] युग युग के इस करुण सत्य को सुशीलकुमार सिंह ने हमारे सामने रखा है कि राज-सत्ता आदि काल से वर्तमान काल तक सरदार-शाही, राजशाही और लोक-तंत्र के विभिन्न मुखौटे ओढ़कर निरीह जनता के विश्वास और श्रद्धा से खेलती रही है । नाटककार की राय में राजनीतिक नारों का अर्थ खो गया है । इसलिए वे नारों के सही अर्थ की खोज ज़रूरी समझते हैं और उनके समक्ष दूसरी, सब से गंभीर समस्या एक सत्पात्र की खोज की है जिसे सिंहासन पर बिठाया जा सके - "अनादिकाल से, सिंहासन खाली नहीं रहा .... लेकिन आज

आज यह सिंहासन खाली है अभी अभी खाली हो गया है क्योंकि इस पर बैठनेवाला राजा सत्य, अहिंसा और न्याय की हत्या करके भाग गया है । हर युग में, हर सभ्यता ने एक नया शाही जामा पहनकर मानवता को भटकाया है । न जाने कितने लोग आये और चले गये नश्वरता के इस अनन्त चक्र का अवशेष रह गया, सत्ता का प्रतीक यह सिंहासन जो आज भी सुपात्र की प्रतीक्षा में आहत और पीड़ित जनसमूह के कांपते हुए विश्वास को संजोये, सुपात्र की खोज केलिए सिसक सिसक कर प्रार्थना कर रहा है ।[43]

नेताओं की अवसर वादिता

देश की घिनौनी राजनीति, राजनीतिज्ञों की अवसरवादिता, स्वार्थान्धता, गैरईमान्दारी, छद्मवेशी जन नेताओं के जनविरोधी आचरण आदि का बखूबी चित्रण सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने "बकरी" में किया है । सक्सेना जी ने गाँव के तीन डाकुओं - कर्मवीर, सत्यवीर

---

42. सिंहासन खाली है सुशील कुमार सिंह, पृ.5 (दो शब्द)(प्र.सं.1974
43. वही, पृ.7, 40

एवं दुर्जनसिंह को नेता बनते हुए दिखाकर आज के राजनीतिज्ञों का मुखौटा उतारकर दिखाया है । नाटककार के शब्दों में "बकरी हमारी स्वाधीनता की तलछट का चित्रण है । वह तलछट जो समय बीतने के साथ साथ गहरी होती चली गई है ।"[44] आज की राजनीति में किस प्रकार छुटभैया - छुट भैया लोग नेता बन जाते हैं, इस विडम्बना का प्रत्यक्ष चित्रण लेखक कर्मवीर, सत्यवीर और दुर्जनसिंह के माध्यम से दिखाते हैं । इन केलिए आत्मसेवा ही प्रमुख है, समाजसेवा बाद में । इसलिए वे गाँव की गरीब औरत विपती की बकरी को हडप लेते हैं और गाँववालों को उल्लू बनाकर उन्हें यह विश्वास दिलाने में सफल निकलते हैं कि उस बकरी की माँ की माँ की माँ की मा गान्धीजी की बकरी थी । अतः वह गान्धीजी की बकरी है । अनपढ ग्रामीणों की अन्ध श्रद्धा का खूब लाभ उठाते हुए वे तीनों बहुत सारे रुपए कमाते हैं और चुनाव जीतते हैं । इन तीनों नेताओं के माध्यम से नाटककार ने यह दिखाया है कि देश के नेता जनता जनार्दन की सेवा के नाम पर लम्बे लम्बे भाषण देकर जनता को लूट रहे हैं । इस सम्बन्ध मे गिरीश रस्तोगी की राय है - "डाकुओं का, आगे नेताओं में बदल जाना स्वतः सहज व्यंग्य हो जाता है । नेताओं के लम्बे लम्बे भाषण न केवल नेताओं के झूठे दावों, शब्दावली और टोण को सामने लाते हैं, बल्कि हमारे राजनीतिक नेताओं के व्यक्तित्व और चरित्र को उनके कारण उत्पन्न हुई विसंगतियों को तोडने की कोशिश है ।"[45]

"अब गरीबी हटाओ" नाटक में भी सक्सेना जी राजनैतिक मूल्य विघटन के विविध पक्षों को उद्घाटित करते हैं । प्रस्तुत नाटक में सक्सेना राजा और मन्त्रियों के माध्यम से छल-छद्म पूर्ण राजतन्त्र का पोल

---

44. बकरी - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - भूमिका, पृ.सं.1974

45. समकालीन हिन्दी नाटककार गिरीश रस्तोगी, पृ.183, सं.1982

खोल देते हैं । नाटक के मुख्यमंत्री और कृषिमंत्री वर्तमान राजनीतिज्ञों का ऐसा जीता जागता प्रतीक है जो जनता का अधिकाधिक शोषण करके भी अपने को उन के सेवक घोषित करवाना चाहते हैं । प्रस्तुत नाटक के सरपंच का भाषण इस का स्पष्ट प्रमाण है "भाइयो, और बहनो, मुख्यमंत्री त्रिपाठी जी अभी आप लोगों के बारे में पूछ रहे थे, बहुत चिन्तित थे वे हमारे बुलाने पर आप लोगों केलिए सारा काम काज छोड़कर आए हैं, आप लोगों की दुर्दशा उनसे छिपी नहीं, गरीबी हटाने केलिए उन्होंने ही जान की बाजी लगा दी है।[46] चुनाव जीतने केलिए, सत्ताधारी बनने केलिए झूठे आश्वासनों के मीठे वचनों से भाषण देकर जनता को धोखा देना आज के राजनीतिज्ञों की प्रवर्तन-शैली बन गई है । "सिंहासन खाली है" नाटक में नेता का भाषण इस का उदाहरण है - "मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि आप की उन्नति और तरक्की केलिए नये नये कल-कारखानों का उद्घाटन करूँगा । भारी लागतों के बडे बडे बाँधों का शिलान्यास करूँगा, सूखा, बाढ, अकाल और भूकम्प से पीड़ित क्षेत्रों का दौरा करूँगा । टैक्सों का नामोनिशान मिटा दूँगा । विदेशों मे भारी सहायता प्राप्त करूँगा - धरती पर स्वर्ग उतार दूँगा ।

अपने अनमोल वचनों की भीनी-भीनी फुहार से देश की गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी और तमाम समस्यायें पलक झपकते सुलझा दूँगा ।[47] लेकिन पीछे हम देखते हैं कि वही नेता शासक बन जाने पर जनता का शोषण कर रहा है । नाटक की ही महिला को अपनाने केलिए उस के पति को मारनेवाले राजा के सामने, ईश्वर से उस महिला की प्रार्थना इस का उदाहरण है - "हम ने एक लुटेरे को राजा बनाया,........ एक डाकू को सिंहासन दिया, ताकि वह हमारा सब कुछ छीन कर हमें बेघरबार कर दे ? हमारी इज्जत-आबरू लूटकर हमें नदी में फिंकवा दे ।

---

46. अब गरीबी हटाओ सक्सेना, पृ.27
47. सिंहासन खाली है सुशील कुमार सिंह, पृ.11

कब मिलेगा छुटकारा इस "पापी से   इस अत्याचारी दुराचारी से ?
हे भावान, हमने इसे राजा क्या बनाया   क्यों बनाया ?[48]

राजनीतिज्ञों में उन्नत आदर्श की कमी आज सर्वत्र देखी जाती है । आदर्श के स्थान पर, स्वार्थता ने घर कर लिया । पुराने नेताओं में जो आदर्श हीनता पनप रही है जिसे देखकर नई पीढी भी उसका अन्धानुकरण करते हैं । इस के बारे में विष्णु प्रभाकर कहते हैं - "राजनीति के स्तर पर जो नंगापन उभरा है उसका प्रभाव भी नई पीढी पर पडा है । परन्तु वह प्रभाव भी स्वार्थ साधन की दूषित प्रेरणा देता हैं, उससे विमुख नहीं करता, न स्वस्थ और सुन्दर की खोज की ओर प्रेरित करता है ।"[49] "टूटते परिवेश" की युवा पीढी का "दीपक" मंत्री बनता है । मंत्री बनने केलिए उस ने अपने पक्ष के विद्यार्थियों से मुख्यमंत्री को घेराव कराने की धमकी दी है । इस विषय पर अशोक कहता है - "मंत्री बनना क्या कोई आसान काम है, कितनी जोडतोड की है दीपक ने । विद्यार्थियों पर उस का प्रभाव है । उसे कहना पडा कि अगर वह मंत्री नहीं बनता तो मुख्य मंत्री विद्यार्थियों द्वारा घेराव केलिए तैयार रहें ।[50] पद और सत्ता प्राप्त करना, फिर प्राप्त पद का संरक्षण करना, उसकेलिए षड्यन्त्र रचना आदि कई प्रकार के चालाक पूर्ण कार्य करनेवाले ही राजनीति में जड पकड सकते हैं । कोटिकरण की प्रक्रिया वर्तमान राजनीति की खूबी है । प्रत्येक दल के नेताओं के बीच में कोटियाँ और उपकोटियाँ बनायी गई हैं । इन कोटियों के खिंचाव और प्रलोभन से वर्तमान राजनीति विषाक्त हो गयी है । इस विषय को स्पष्ट करते हुए "कृष्णनाथ" यों लिखते हैं "भारतीय मस्तिष्क

48· सिंहासन खाली है   सुशीलकुमार सिंह, पृ·32
49· टूटते परिवेश   विष्णु प्रभाकर - दो शब्द, पृ·5, प्र ·सं·1974
50· वही, पृ·29

परम्परागत रूप से कोटिकरण, कोटियाँ बनाने और इनके अन्तर को निखारने और कायम रखने में रस लेता रहा है । उदाहरण केलिए, प्रधान मंत्री से उप-प्रधान मंत्री की राजनीति, या एक कोंग्रेसी नेता के मुकाबले में एक समाजवादी नेता की राजनीति । या फिर एक साहित्यिक गुट के नेता से दूसरे साहित्यिक गुट के नेता की राजनीति.... असल में तो जैसे बुद्धिजीवियों में, वैसे ही राजनीतिकों में भी आत्मतुष्ट राजनीति है, जो राजनीति की "रूटीन" में मस्त है । अगर सरकारी दल में है तो एम.एल.ए., एम.पी. बनकर, उपमंत्री, मंत्री बनने के चक्कर में है, और अगर विरोधी दल में है तो जैसे भी हो गद्दी तक पहुँचने केलिए उतावले हैं, या अगर वह न भी हो तो अपने क्षेत्र में और अपनी असेंब्ली, पार्लमेन्ट में मस्त हैं । क्षेत्र बने, सुरक्षित रहे, और असेंब्ली, पार्लमेन्ट में भाषण हो, छपे, पढा जाय या पढवाया जाय । यही अलम् है ।[51]"

दल बदल राजनीति

दल-बदल राजनीति ने भारत के वर्तमान राजनीति की नींव हिलायी है । एक पार्टी छोड़कर चुनाव के करीब निकट दूसरी पार्टी बनाकर आमजनता के सामने चुनाव-सम्बन्धी व्याख्यान देनेवाले एक नेता का भाषण "त्रिशंकु" में मिलता है । एक बेकार, शिक्षित युवक को अपने जाल में फंसाने के परिश्रम में है धोखेबाज नेता । नेता के प्रलोभन पूर्ण वचन यों है - "आज सरकार की स्वार्थ परायण नीति से तंग आकर हम ने एक नये दल का निर्माण किया है, एक नई सेना बनायी है, जिस का उद्देश्य देश में व्याप्त शोषण, करप्शन को जड से उखाड कर राष्ट्र को खुशहाल बनाना, जन जन को रोटी, कपडा, मकान देकर

---

51. बुद्धिजीवी और परिवर्तन की राजनीति कृष्णनाथ - नई धारा पृ.4, अगस्त 1968

छोटे-बडे ऊँच-नीच के भेद-भाव को आमूल-चूल कुचलकर राजे महाराजों को बनाये रखकर, सही और सच्चा समाजवाद स्थापित करना है जिस केलिए हमें तुम जैसे क्रांतिकारी जवांमर्दों की ज़रूरत है । तुम हमारे दल का सदस्य हो जाओ और चुनाव में हमारी मदद करो । हमारे दल में आने से तुम्हें फायदे हैं । तुम्हें चुनाव लडा सकते हैं, चुनाव में हार गये तो राजदूत बना सकते हैं, चुनाव जीतते ही किसी मिल मालिक या ठेकेदार से पाँच हज़ार क्या दस हज़ार नकद दिला देना हमारे बायें हाथ का खेल है।[52] देश को खुशहाल करने और करप्शन उखाडने के नाम पर पुराने दल को छोडकर, नये दल बनाकर बडे बडे कारखानों एवं लुटेरों से नकद प्राप्त करनेवाले जननायकों के वेष में अभिनय करनेवाले नेताओं का यहाँ नाटककार ने मुखौटा उतारा है । युवकों को अपने दल में आकर्षित करके दल के पोषक बनाने की प्रवृत्ति के बारे में, "फ्रान्क ताकुरदास ने" व्यक्त करते हुए यों लिखा है "देश की सत्ता हथियाने का तेज़ हथियार चुनाव हो जाने के कारण, विशेष कर नेहरूजी की मृत्यु के बाद, देशीय और प्रान्तीय दल के नेता, सदियों से गुलामी के गर्त में पडे स्वातंत्र्योत्तर पीढी के युवक और छात्रों को नये राष्ट्रीय-स्वतंत्रता-बोध में उन्मत्त करके अपनी पार्टी के तेज़ वक्ता और पोषक बनाना चाहते थे।"[53] नेताओं की स्वार्थता की आग में देश की प्रगति जल जाती है । विष्णुप्रभाकर के नाटक "टूटते परिवेश" की दीप्ति इस की आलोचना करती हुई गान्धीभक्त अपने पिता विश्वजीत से कहती है

"देश है कहाँ ? कौन पहचानता है उसे ? देश के भीतर एक और देश बनाये बैठे हैं हम । इस देश का नाम है स्वार्थ, जो प्रांत, प्रदेश, धर्म

---

52. त्रिशंकु : बृजमोहनशाह, पृ.88

53. "As elections acquired a sharper edge in terms of capture of political power, particularly after the death of Nehru, party leaders both at the national and regional levels have sought to strengthen themselves by mobilising the post-Independence generation i.e. the youth and the students who, freed from centuries, old customary ties and intoxicated by the new ethos of freedom and opportunity for education all too readily fell into the seductive folds of the party leaders and provide them main power block for furthering the parties ends."

Indian political Culture amid - transition - Society and Religion, p.18, Edited by Richard W. Taylor

और जाति आदि नाना रूपों में प्रकट होता रहता है ।[54] "न्याय की रात" में भी देश की चिन्ता रहित स्वार्थी नेताओं, व अफसरों के बारे में जुगल किशोर कमला से यों कहता है "यहां देश की चिन्ता किसी को नहीं है । सब को अपनी अपनी चिन्ता है । कहीं दोस्ती चलती है, कहीं घडेबन्दी चलती है और कहीं प्रान्तीयता की सडी-गली भावना चलती है ।"[55] "टूटते परिवेश" की दीप्ति और "न्याय की रात" के जुगल किशोर ने स्वार्थी नेताओं, अफसरों की आलोचना की है, "अब्दुल्ला दीवाना" का चपरासी कहता है - "जी हां, पहले वह तिरंगी कपडे पहनता था, फिर लाल, सफेद, फिर काला, फिर लाल, फिर पीला और गेरुआ । फिर आने लगा, जाने लगा, आए राम, गये राम । कहने लगा, एक ही रंग का कपडा मैं रोज़ - रोज़ नहीं पहनूंगा, फिर वह हर रोज रंग बदलने लगा, जी हां, रोज ।[56]" "टूटते परिवेश" के "दीपक" झंडे के रंग के बदलने मात्र से तृप्त नहीं है । मंत्री बनने केलिए ही उसने पार्टी बदली है । मुख्य मंत्री के घर जाकर दिवाली की शुभकामनाएं देकर लौटे, प्रसिद्ध गान्धी भक्त विश्वजीत के, पुत्र के बारे में पिताजी से ही दीप्ति कहती है - "पापा जबसे दीपक भैया ने अपना दल छोड़कर मुख्य मंत्री के दल का साथ दिया है, तब से उनके मंत्री बनने की बडी चर्चा है । शायद आज रात को ही घोषणा हो जाय ।[57]" "दल-बदल राजनीति" से देश में स्थिर शासन नहीं बनता है । दो-दिन के मंत्री रहकर समाज के सम्मुख प्रत्यक्ष होनेवाले "पूर्व-मंत्री" के प्रति जनता में विद्वेष की भावना पैदा होना स्वाभाविक है । एक बार किसी न किसी छल कपट से मंत्री या एम.एल.ए. या एम.पी. बने शोषक नेता, जन हितकारक कोई कार्य न करके पुन: चुनाव जीतने केलिए

---

54. टूटते परिवेश विष्णु प्रभाकर, पृ.46
55. न्याय की रात चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ.77, सं.1958
56. अब्दुल्ला दीवाना लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.86 (प.सं.1973)
57. टूटते परिवेश विष्णु प्रभाकर, पृ.22 (प.सं.1974

आते हैं तब जनता के मन में उस के प्रति घृणा पैदा होती है ।
"सिंहासन खाली है" में अपने नारीत्व पर कलंक लगाने की कोशिश करनेवाला नेता जब पुनः वोट मांगने केलिए आता है तो उस को धिक्कारते हुए महिला का कथन है - "चुप रहो, यह सिंहासन तुम में से किसी को नहीं मिलेगा । तुम सब धूर्त हो धोखेबाज हो,.... मक्कार हो.....सेवा सेवा सेवा के नाम पर तुम अब तक हमारा शोषण करते आये हो और अब यह सेवा में तुम में से किसी को नहीं करने दूंगी ।"[58] दल-बदल राजनीति से आम जनता अब परिचित हो चुकी हैं । आज की आमजनता ऐसे नेताओं के सामने ही ऐसे निर्लज्ज कामों की कटुआलोचना करने लगी हैं । राम की लडाई में नेताई के सामने मसखरा का कथन इस का उदाहरण है - "आज से चालीस साल पहले आप ही इस गाँव में तिरंगा झंडा लेकर आये । पांच साल बाद समाजवादी झंडा लाये और तिरंगे झंडे को उलट कर झोला सिला लिया ।"[59]

चुनावी धक्के

भारत में सत्ता में आने का मार्ग चुनाव है । यहाँ अठारह साल के ऊपर के लोग - चाहे शिक्षित हो, या अशिक्षित, स्त्री हो या पुरुष, गरीब हो या अमीर - मतदाता हैं । किसी भी मूल्य पर मतदाता को अपने हिमायती बनाना ही नेताओं का लक्ष्य है । इसलिए वोट पाने केलिए किसी भी तरीके का चाहे भाषा का, जाति का, वर्ण का, संपत्ति का या गरीबी का हो - अपनाने से वे नहीं हिचकते हैं ।

---

58. सिंहासन खाली है सुशील कुमार सिंह, पृ.61 [प्र.सं.1974]
59. राम की लडाई लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.26

शिक्षितों से वोट पाना आसान कार्य नहीं है । लेकिन अशिक्षितों, गरीबों, जैसे समाज के पिछडे वर्गों को बहकाकर जनसम्मति पाने केलिए नेताओं की अपनी अपनी चाल है । किसी को रूपए देकर, और किसी को पिस्तौल दिखाके डराकर वोट पाने के तंत्र लक्ष्मी नारायण लाल ने चित्रित किया है । "राम की लडाई" में अपने पिता को धमकी देने केलिए आये नेताओं के भीषण रूप याद करती हुई विमला कहती है "इलेक्शन से पिछली रात की । उस दिन सुबह से तीनों पार्टियों के लोग झोले में रूपए, पिस्तौल, हथगोला भरे पिताजी के पास आते रहे । हर तरह से दबाव डालकर अपने हक में वोट लेने केलिए ....[60] ।" दरअसल राजनीति एक पेशा बन गयी है । चुनाव जीतने के बाद पद ओहदों का बंटवारा किस प्रकार किया जाता है और कौन कौन उस में भाग लेते हैं इस का जीताजागता चित्र "सिंहासन खाली है" में मिलता है । नाटक का "नेता" अपने विरुद्ध बोलनेवाले पात्रों एक, दो, तीन - को प्रलोभन देते हुए वादा करता है - "भाइयो, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सिंहासन पर बैठते ही सर्वोच्च पद में तुम लोगोंमें ही वितरित करूँगा । आप लोगों को कोई भी शिकायत नहीं होगी । और देश की सुख-सम्पदा हम सब मिल-बाँट कर खा सकेंगे [61] ।" इस प्रकार देश की संपत्ति छली, विश्वासघाती और अयोग्य लोगों में बाँटनेवाली कई घटनायें रोज के अखबारों द्वारा आम जनता जानती आयी है । किसी किसी को राजपाल पदवि, चेयरमैनशिप, कमटियों की सदस्यता, योग्यता पत्र, विशेष-पर्यटन-सुविधा, अवार्ड, न जाने कितने प्रकार के अनैतिक कार्य होते हैं !! इसका दोष यह है कि योग्य व्यक्ति समाज में मूल्यहीन रह जाता है । "अमुक अयोग्य व्यक्ति" का, इस प्रकार सम्मान मिलने पर साधारण लोग भी उसी राह को अपनाने में अपनी सफलता मानेंगे ।

---

60. राम की लडाई लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.28

61. सिंहासन खाली है सुशील कुमार सिंह, पृ.48

देश का धन या पद अयोग्य, चरित्रहीन व्यक्तियों के द्वारा आडम्बरपूर्ण जीवन केलिए न व्यय करने केलिए ही "भारत का संविधान" में सुनिश्चित रूप से बताया गया है _ "आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण केलिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो।"[62] छले राजनीतिज्ञों के द्वारा देश की धन-राशी ठाटबाट केलिए लागू करने पर आमजनता भूख से तडप जाएगी।

स्वार्थी जननेताओं के द्वारा आडम्बरपूर्ण जीवन बिताने से आम जनता को, समाज के सदस्यों को दुःख भोगना पडेगा। इस प्रकार भूख से पीडित एक जनसमूह का चित्र ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने "शुतुरमुर्ग" में प्रस्तुत किया है। "शुतुरमुर्ग" के राजा सोने के शुतुरमुर्ग की प्रतिष्ठा केलिए सरकार के धन का व्यय करने में तुले हुए हैं। लेकिन राजा के चालाक मंत्रियों ने सारे रूपए अपनी जेब में रखे हैं और शुतुरमुर्ग कागज़ में ही रह जाती है। शोषक राजा के मंत्री ने राजा से कहा "आप के योग्य मंत्रियों ने आप के साथ बहुत बडा छल किया है। महाराज, आपका सोने का शुतुरमुर्ग सिर्फ कागज पर बना होगा और कागज पर ही टूट गया। लेकिन असली शुतुरमुर्ग तो आप हैं, जो हमें खाकर और हमें पीकर अपने आप को बनाते हैं।"[63]

चुनाव के समय चरित्रहीन राजनीतिज्ञ और मंत्री सरकार के कर्मचारियों से अनैतिक कार्य कराते हैं। चुनावी खर्च केलिए आम जनता से और व्यवसायियों से नेताओं केलिए कलक्टर जैसे ऊँचे ओहदों पर बैठने वालों को रूपए जमा करना पडता है। "मिस्टर अभिमन्यु" का कलक्टर राजन ऐसे मंत्रियों के इशारे पर नाचने केलिए मजबूर एक सरकारी नौकर है। राजन के प्रति मंत्री की खुशी का कारण खुद मंत्री के शब्दों से स्पष्ट है

---

62. भारत का संविधान भाग 4, 39 ग, पृ.13

63. शुतुरमुर्ग ज्ञानदेव अग्निहोत्री, पृ.67

"मिस्टर राजन, आपके काम से हमें बहुत खुशी है, तभी आप को इतनी इम्पार्टेन्ट कमीशनरी का चार्ज दिया जा रहा है । आनेवाले जनरल एलक्षेन केलिए वहाँ से आप को बारह लाख रुपयों का इन्तज़ाम करना है ।[64]"

चुनाव जीतने के उपायों में एक और उपाय है जनता को मूक या प्रश्नहीन बनाना । इस केलिए नेताओं द्वारा किये जानेवाले कार्यों को लक्ष्मीनारायणलाल ने प्रस्तुत किया है "हर युग में लोग अपने अपने ढंग से किसी न किसी "कल्की" की प्रतीक्षा करते रहते हैं । हर शासक नियन्ता और अधिपति को अपने अस्तित्व केलिए किसी ऐसी ही मिथक का सहारा लेना पड़ता है । बल्कि, इतना ही नहीं, उसकी स्थिति अक्षुण्ण रहे, इस केलिए आवश्यक होगा कि वह लोगों को उसी बहाने प्रश्नहीन कर दे । सोचना, विचारना, शंका करना, अनुभव करना, वह व्यक्तिगत विषय न रहने दे । वह लोगों को यथार्थ से अयथार्थ की ओर दे । लोगों को प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर टाँक दे तथा उनकी गणना करता रहे । मध्ययुग में जो तंत्र साधना के नाम पर शवसाधना थी, वही आज प्रजातंत्र के नाम पर मत गणना नहीं है क्या ?[65]

चरित्रहीन राजनीतिज्ञ जनता के वोट मिलने केलिए उन्हें उल्लू बनाकर उनके बीच के मतैक्य को नष्ट करने के कामों में लगे रहते हैं जिस से ग्रामीण जनता कई तहों में बँट जाती है । नाटककार सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने इस पर विचार किया है । "बकरी" नाटक में ग्रामीण लोगों को उल्लू बनाकर उन को वोट पाने का मार्ग देवी का नाम रटना है । महिला की छीनी हुई बकरी को कर्मवीर और उसके मित्रों ने मिलकर गान्धीजी की बकरी घोषित की । फिर "बकरी स्मारक निधि,

---

64. मिस्टर अभिमन्यु लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.6

65. कल्की लक्ष्मीनारायणलाल - भूमिका से (प्र.सं.1969)

बकरी मण्डप आदि के नाम पर ग्रामीणों से पैसे वसूल करते हैं । फिर "बकरी-थन" चिन्ह पर वोट मांगते हैं । एक ग्रामीण युवक बकरी के पीछे के छल को पहचानता है तो कर्मवीर, दुर्जनसिंह, सिपाही मिलकर ग्रामीणों से कहते हैं - "हम कुछ सुनना नहीं चाहते । अपना फैसला हम ने बता दिया । यदि यह नहीं हुआ तो खैर नहीं, पर हमें देवी प्यारी है। उसका हुक्म, हुक्म है । यदि वह कोई सज़ा कहेगी तो वह भी हमें देनी होगी । जो बदमाशी करेगा, उसे परलोक भी भेजा जा सकता है । उसकी कृपा से हम आदमी को ठीक करना जानते हैं । पर हम अपनी मर्जी से कुछ नहीं करेंगे । सब देवी के आदेश से होगा । हम सख्ती नहीं करना चाहते । अभी समय है । खूब सोच लो ।[66]" हंसी की बात है कि उस ग्राम के अशिक्षित लोगों ने "देवी शाप" से बचने केलिए कर्मवीर को वोट दिये, वह विजयी हुआ । इतने से विजयी कर्मवीर और उनके स्वार्थी मित्र तृप्त नहीं हुए । सब चालाक मिलकर उस बकरी को मारकर उसके मांस खाते हैं । इस प्रकार के निरक्षर, भोले भाले लोगों की अन्ध भक्तिपूर्ण अज्ञता, स्वार्थी नेताओं को पनपने की मिट्ठी हो जाती है ।

चाहे चपरासी हो, चाहे अफसर हो, सब को अपने अपने पद की नियुक्ति केलिए निश्चित योग्यता निर्धारित की जाती है । इसमें शैक्षणिक-योग्यता का मुख्य स्थान है । भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त युवक तक नौकरी की खोज में घूमते हैं । लेकिन खेद की बात यह है कि राज नैतिक नेता, एम·एल·ए·, एम·पी·, मंत्री आदि बनने केलिए, निश्चित उम्र की पूर्ति के सिवा, और किसी योग्यता की गुंजाइश नहीं है । याने मंत्री केलिए कोई शैक्षणिक योग्यता अनिवार्य नहीं है, यहाँ तक कि निरक्षर शिक्षा-मंत्री, अस्वस्थ स्वास्थ्य-मंत्री बन सकते हैं ।

66· बकरी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ·45 (प्र·सं·1974)

राम की लडाई में डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल ने इस रहस्य का उद्घाटन किया है । मंत्री और लखपतिया चुनाव-सम्बन्धी वार्तालाप में हैं । उम्मीदवार बनने का अपना आग्रह प्रकट करते हुए लखपतिया ने मंत्री के सामने अपनी योग्यताएँ बतायी "सर मैं हाईस्कूल में सात बार फेल । चाकू, छुरा, पिस्तौल, कट्ठा चलाने में होशियार, बम बनाने में इक्सपर्ट । हडताल, घेराव, मारपीट, चोरी-चंडाली में इधर कोई मेरा सानी नहीं । बस एक बार आप से टिकट मिल जाय।"[67]

चुनाव जीतने के उपायों में एक और उपाय है जाति के नाम पर मतदाताओं के सामने प्रत्यक्ष होना । नेता लोगों ने जाति की दुहाई देते हुए जनता को विभिन्न तहों में बाँटने का तरीका अपनाया है। मतदाताओं में जाति के अनुपात में बहुसंख्यकों की समस्याओं के निर्वाहक के रूप में समाज में प्रत्यक्ष होने केलिए हर पार्टी मे एक प्रकार की होड चल रही है । हरिजन और पिछडे वर्ग के संरक्षक के रूप में आनेवाले नेताओं की हँसी उडाते हुए "आज नहीं तो कल" का पात्र "पाँच" का कथन इस का उदाहरण है - "हरिजन समस्या इस देश की सब से बडी समस्या है, और एक महत्वपूर्ण कुंजी है सत्ता में बने रहने केलिए इसलिए सुबहशाम हरिजनों का नाम जपो····· हरि मिल जाएगा जन की पर्वाह मत करो।"[68] आम जनता में फूट फैलाकर उनके वोट पाने के तंत्र से जनित समस्याओं से आज सारा देश कलुषित है । "न्याय की रात" की भूमिका में नाटककार, स्वाधीन-प्राप्ति के बाद के हमारे सामने की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं - "स्वार्थ-साधन, फूट और ईर्ष्या का वातावरण इस देश में सदियों से है, देश की अन्ध विश्वासी साधारण जनता जागरूक नहीं है, इससे तिकडबाज़ स्वार्थी लोग देश तक को बेच खाने और अपने स्वार्थों केलिए देश में वैमनस्य और विभाजक प्रवृत्तियों को बढाने की चेष्टा करते रहते हैं।"[69]

67· राम की लडाई डॉ॰लक्ष्मी नारायणलाल, पृ·58
68· आज नहीं तो कल सुशील कुमार सिंह, पृ·18
69· न्याय की रात चन्द्र गुप्त विद्यालंकार - भूमिका, पृ·4-5

चुनाव जीतने केलिए अवतार पुरुषों के वेष में भाषण और अभिनय एक साधारण सी बात हो गयी है । राम की लडाई में चुनाव की पिछली रात विभिन्न दल के नेता रूपए, पिस्तौल, हथगोले के साथ मतदाताओं के पीछे घूमने का समाचार मिलता है । लेकिन धर्म के नाम सुनने पर झूकनेवालों को बहकाने केलिए आदर्श-पुरुषों के वेष में आना ही चाहिए । नाटक में "मसखरा" से "रमई का कथन इसका प्रमाण है "- आइये बनियेराम ! लीला करने का मतलब ही यही है कि कोई भी राम बन सकता है, राम का अवतार त्रेतायुग में हुआ था, यह तो कथा है, पर सच्चायी यह है कि राम का अवतार आज भी होता है । जो चाहे वह राम हो सकता है ।"[70]

चरित्रहीन राजनीतिज्ञों की नयी पीढी भारत में आ गई हैं । वे कालेज, स्कूल सब जगह पढाई-भी कर के अपने विजयोल्लास में मस्त रहते हैं । लक्ष्मी नारायणलाल ने छात्र-यूनियन-नेताओं के मन में आये हुए विचारों का प्रतिपादन किया है "यक्षप्रश्न" में । सहदेव, छोटा नेता है जिस ने यूनिवर्सिटी को बन्द कराया । इस पर वायस-चान्सलर ने उससे कहा - "ठीक है, तुम्हें पढना नहीं है, पर हज़ारों लड्के-लडकियाँ जो यहाँ पढने आये हैं, उन का क्या होगा ?" ......, "अपने स्वार्थ केलिए इतने सारे छात्रों की जिन्दगी और उन के भविष्य के साथ खेल रहे हो सब कुछ उसी हिंसा, दबाव, आंदोलन के सहारे कर डालना चाहते हो ? मेरा और प्रोफसरों का घेराव करके क्या तुम लोगों ने अपना नाश नहीं किया" ? "याद रखो कहीं भी भूल-मर्यादा की हार होती है, तो वह हमारी हार है, सब की हार है, हम सब की ।" सहदेव, वायसचान्सलर की चेतावनी के सामने तनिक भी

---

70. राम की लडाई लक्ष्मी नारायणलाल, पृ.51-52 {द्वि.सं.1988}

घुटने टेकनेवाला नहीं था । नेता गिरी का नशा चढे हुए उस के भेजे पर मात्र भविष्य के ऊंचे पद, ओहदे के स्वप्न ही मण्डराते हैं । इसलिए वह कहता है - "इस तरह भेंट नहीं होगी, मैं मंत्री हो सकता हूं- शिक्षा-मंत्री - मेरे बंगले पर आप से भेंट हो सकती है । मैं दीक्षान्त भाषण देने आ सकता हूं । एअरपोर्ट पर आप मेरे स्वागत में खडे होंगे...।"[71] छोटा नेता-सहदेव का यह उत्तर किसी भी महत्वाकांक्षी छात्र-नेता का उत्तर हो सकता है । राजनीति जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुकी है । कोई भी क्षेत्र इससे मुक्त नहीं है । भावी पीढियों को रूपायित करनेवाली शैक्षणिक संस्थाएं भी आज राजनीतिज्ञों का अड्डा बन चुकी है । अपने काम चलाने केलिए वे राजनीतिज्ञ मासूम छात्रों को अपने हाथ की कठपुतली बनाते हैं - "उसमें चाबी भरी जाती है, वह उछलता है, कूदता है, बोलता है, हंसता है, रोता है और चाबी खतम हो जाती है, नीचे ढह पड़ता है ।"[72]

गान्धीवाद का हनन

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के सिद्धान्तों की चर्चा आज भारत की सीमाओं को लांघ कर विश्व भर में पहुंच गयी है । सदियों से गुलाम रहे भारत को स्वतंत्रता दिलाकर एक आदर्श राष्ट्र के रूप में भारत का निर्माण करना गान्धीजी का चिरस्वप्न था । उनमें प्रथम भाग की पूर्ति हुई, दूसरे की कोशिश के पहले उन की हत्या हुई, बाद के राष्ट्रनेता गान्धीजी के विचारों की पूर्ति भूल गये । इस प्रकार गान्धीवाद का हनन हो गया । सत्य, अहिंसा, विकेन्द्रीकरण,

---

71. यक्ष प्रश्न लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.18,19,21

72. आधुनिक निबन्धावली - सम्पादक विद्या निवास मिश्र,पृ.133 (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

ट्रस्टीशिप, हृदय-परिवर्तन, ब्रह्मचर्य, सत्याग्रह, अस्पृश्यता निवारण, खादी प्रचार, शिक्षा, राष्ट्रभाषा प्रेम, स्वदेश प्रेम, मद्यवर्जन, श्रम का महत्व, नारी उत्कर्ष आदि गान्धीवाद के अन्तर्गत आते हैं। धर्म, नीति, अध्यात्म, सदाचार, दर्शन, संस्कृति, राजनीति आदि से गान्धीवाद का प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध है। गान्धीजी के नाम पर शासन में आये सत्ताधारियों के शोषणपूर्ण शासन को लक्ष्य करते हुए हिन्दी में कई नाटक लिखे गये हैं, उनमें कुछ एक पर हम विचार करेंगे।

गान्धीवाद का प्राणतत्व सत्य है। सत्य के मार्ग पर चलनेमात्र से ही जीवन में कल्याण होगा, ऐसा विचार गान्धीजी रखते थे और सत्य-पालन केलिए प्राण छोडने को भी तैयार थे। लक्ष्मीनारायण लाल ने "सुन्दररस" में भट्टाचार्य के द्वारा सत्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है। नाटक के पण्डितराज "सुन्दररस" के आविष्कारक है। सुन्दर-रस-सेवन से सुन्दर बनने की चाह से कई स्त्री, पुरुष, युवक युवति, वकील, सरकारी कर्मचारी आकर सुन्दर-रस खरीदते हैं। लेकिन कोई सुन्दर नहीं बनता है। अन्त में विवश होकर विक्रेता पण्डित राज ने इसका रहस्य बताया "इस सुन्दर रस से वस्तुत: कोई सुन्दर नहीं होता, इसके विधिवत सेवन से हृदय एवं मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव अवश्य पडता है कि पीनेवाला अपने आपको सुन्दर समझने लगता है।"[73] व्यापारी वर्ग के विज्ञापन के ज़रिये असत्य का उद्घाटन करके देश की जनता को पिसने का चित्रण यहाँ मिलता है।

गान्धीजी के सिद्धान्तों में सत्याग्रह का स्थान विश्वव्यापी हो गया है। विदेशियों से भारत को स्वतंत्र करने केलिए गान्धीजी ने सत्याग्रह का मार्ग अपनाया था। भारत को, भारत में व्यापार केलिए वर्षों पूर्व आकर शासक बने विदेशियों से स्वतंत्र करने का आग्रह वास्तव में

---

73. सुन्दररस लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.78

सत्य आग्रह थे । सत्याग्रह के बारे में "सोसैटी एन्ड रिलिजयन" नामक किताब में ऐसा बताया गया है - "सत्ता में रहनेवाले शासकों के द्वारा शासित या शासक वर्ग को कोई हानिकारक प्रवर्तन या निर्णय हो जाने पर उससे मुख मोडने केलिए प्रार्थना करने और ज़बर्दस्ती विमुख कराने का नैतिक प्रवर्तन सत्याग्रह है । अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह नैतिक है । पश्चिमी लेखक तोरू और रस्किन से सत्याग्र ह का आशय गान्धीजी ने उधार लिया था[74] ।" लेकिन आज "सत्याग्रह" को राजनैतिक नेता और छात्र तक देश भर में प्रगति-भंग करने के काम में लागू करते हैं । "घेराव", धर्ना, बन्द, मोर्चा, रैली, स्ट्रैक, आदि सत्याग्रह के विविध रूप भारत में रोज़ हम देखते आये हैं । "न्याय की रात" में असत्यपालन, नारीशोषण, नशाखोरी, व्यभिचार आदि गैर गान्धी सिद्धान्तों का संगमस्थान नाटककार ने दिखाया है । हेमन्त की बहन का पति राजीव ने एक बार हेमन्त से उसकी नौकरी के बारे में पूछा तो निर्लज्जता के साथ उसका जवाब ऐसा है "मेरा पेशा है, बेईमान व्यक्तियों केलिए परमिटों का इंतज़ाम करना, बेईमान और लालची व्यवसाय पतियों को बडे बडे ठेके दिलवाना, और यह सब मैं कर पाता हूँ ऊँचे ओहदों पर विद्यमान कुछ बेईमान और विश्वासघाती सरकारी अफसरों की सहायता से[75] ।" नारी शोषण का स्पष्ट उदाहरण भी इस में है । सरकारी अफसरों को अनैतिक कार्य केलिए कहीं से युवतियों को पहुँचा देने के द्वारा हेमन्त भारत के दुष्ट नेताओं की श्रेणी में आता है । शरणार्थी युवति कमला को सदानन्द के दफ्तर में नौकरी देने के पीछे के उद्देश्यों के बारे में हेमन्त और सदानन्द के वार्तालाप से यों मिलता है

"लडकियों से काम निकाला जा सकता है खिलवाड किया जा सकता है आसानी से फंसाया जा सकता है उन्हें फटे-पुराने कपडों की तरह जब चाहे उतारकर फैंक दिया जा सकता है[76] ।" नाटक के अन्त तक आते आते हम देखते हैं "कमला को व्याज तम्बाकू कम्पनीकी

---

74. Society and Religion - Edited by Richard W. Taylor p.19

75. न्याय की रात चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ.108

76. वही, पृ.81,82

सेक्रेटरी पद पर नियुक्ति पहले की तारीख डालकर करना, कोरे कागज़ों पर कमला से हस्ताक्षर कराना, कमला को पिस्तौल दिखाकर उसकी आत्महत्या सूचित पत्र हस्ताक्षर-सहित जबर्दस्ती लिखवाना, फिर गोली चलाकर मारने की कोशिश करना बन्द कमरे में रखकर आदि आदि घिनौने कार्य हेमन्त करता है।[77]" नारी-शोषण के इतने उदाहरण इस नाटक में मिलते हैं। दया, ममता, करुणा आदि मानवीय मूल्यों के प्रति हेमन्त के विचारों को भी नाटककार ने व्यक्त किया है - "यह दुनिया कमज़ोरी केलिए नहीं है। दया, ममता, करुणा - इन सब को मैं कमज़ोरी मानता हूँ। शक्ति की स्थिति, प्रमाण और निरन्तरता केलिए मैं हिंसा और अपहरण को अपरिहार्य मानता हूँ।[78]"

"बकरी" में गान्धीजी को हँसी का विषय बनाकर राष्ट्र प्रेम के विरुद्ध कार्य नाटक के आदि से अन्त तक दिखाया गया है। परिश्रम का महत्व, ट्रस्टीशिप, मद्यवर्जन आदियों का नग्न उल्लंघन इस में किया गया है। ग्रामोद्दार केलिए गान्धीजी ने युवकों को एकत्रित किया था। "बकरी" के गाँव में कुछ युवकों को पथभ्रष्ट करने का कार्य हुआ है। एक साधारण बकरी की चोरी करके उसे गान्धीजी की बकरी की माँ की, माँ की, माँ की बकरी घोषित की गई है। बेचारी स्त्री का अपहरण करके जेल भेजने की धमकी द्वारा गान्धीजी के प्रेम, करुणा, ममता आदि सिद्धान्तों का तिरस्कार हुआ है। गाँववालों को शिक्षा देनेवाले गान्धीजी के नाम पर बकरी को दुर्जनसिंह, कर्मवीर, सत्यवीर आदि मिलकर देवी घोषित करते हुए, अशिक्षित ग्रामीणों को बहकाते हुए कहते हैं "इस बकरी में देवीशक्ति है जिसे पहचानने की ज़रूरत है आप का हर दुख, हर तकलीफ यह हल कर सकती है।[79]"

---

77. न्याय की रात चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ.86,89,139

78. वही, पृ.85

79. बकरी - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ.27,28

माँस भोजन के विरोधी गान्धीजी के नाम की स्थापना करने के बहाने बकरी-आश्रम, बकरी संस्थान, आदि करके लोगों की सम्मति उन नेताओं ने पायी । अन्त में "उसी बकरी" की हत्या की जिसे देवी रूप में आश्रम बनाकर पाला था । "बकरी वध" के द्वारा नाटककार ने गान्धीजी के वध का निन्द्य कार्य दर्शाया है । मद्यपान, विदेशी नृत्य आदि के विरुद्ध विचार रखते गान्धी के वेष में, बकरी माँस-भोजन के समय ही "मिश्ती" को नृत्य कराया है[80] ।

"वितस्ता की लहरें" में गान्धीवाद का परामर्श पुरु के वार्तालाप से मिलता है । भारत को स्वतंत्र करने केलिए अस्त्र रहित लडाई चलाई गई थी । नाटक के पात्र पुरु ने शास्त्र से बढ़कर दया की महिमा का प्रतिपादन करते हुए अलिकसुन्दर से कहा - "शस्त्र से जो सम्भव नहीं उससे कहीं अधिक दया और शील से सम्भावित है । .... यह तुम न भूलोगे कि शत्रु के प्रति भी स्नेह और शील के अवसर होते हैं[81] ।"

आज की रुग्ण राजनीति की इलाज गान्धीवाद रूपी दवा से की जा सकती है । इस विषय पर श्याम मोहन आस्थाना की राय सही लगती है - "इस देश की समस्यायें लोक तंत्र के कारण नहीं हैं ।

इस देश की असली समस्या सामाजिक मूल्यों का ह्रास है और इसे दूर किये बिना न लोक तंत्र बचेगा, न देश । आज देश को एक गहरे सामाजिक आन्दोलन की ज़रूरत है । गान्धीवाद की पुन: प्रतिष्ठा के बिना इस देश की राजनीति को अपने पैरों पर नहीं खडा किया जा सकता[82] ।"

80· बकरी सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ·60

81· वितस्ता की लहरें लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·11, सं·1985

82· भारतीय लोकतंत्र पर घिरते बादल श्याम मोहन आस्थाना, नई धारा, पृ·7, अप्रैल-मई 1968

प्रजातंत्र का खोखलापन

भारत के संविधान में यह घोषित किया गया है "सभी नागरिकों को वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का, शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का, संगम और संघ बनाने का, भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का, भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का और कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा।[83]" इन अधिकारों पर जो कोई अनुचित नियंत्रण करने लगेगा और इन का दुरुपयोग करने लगेगा तो स्वतंत्रता का मूल्य नष्ट होगा। सन् 1947 तक विदेशी शासन चलने के कारण व्यक्ति का कोई अधिकार नहीं था और किसी भी प्रकार की प्रगति उसे प्राप्य नहीं थी। लेकिन स्वतंत्रता मिलते ही नागरिकों में यह आशा हुई कि उनके जीवन में एक नया मोड आएगा। लेकिन भारत का बागडोर "गोरों" के हाथ से "कालों" के हाथ में आने के बाद भी आम जनता को आश्वासन नहीं मिला। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रजातंत्र जनता के द्वारा, जनता केलिए, जनता का शासन होता है। लेकिन सच यह निकलता है कि जनता के द्वारा जनता का शोषण है। ऐसी हालत में प्रजातंत्र खोखला रह जाता है। याने प्रजातंत्र में प्रजा के कल्याण होने के स्थान पर जनता का शोषण जनता के ही द्वारा होता है।

---

83. Constitution of India Article 19, p.6

लक्ष्मीनारायण लाल ने "कल्की" में साधारण जनता के शोषण का चित्र प्रस्तुत किया है । किसानों की अज्ञता का लाभ, सहस्र शवसाधना के नाम पर, उठाने में लगे हुए हैं अवधूत । हेरूप अवधूत से कहता है "मनुष्य को पहले दिशाहीन करना, वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर निर्वीर्य कर उन्हें शव बना देना, फिर उस की गणना करते रहना । उन के यथार्थ से उन्हें बैलों की तरह हाँक कर अयथार्थ के जंगल में डाल देना और हर क्षण संशय को संकल्प में, विद्रोह को स्वीकार में बदलते जाना [84] ।" यहाँ हम देखते हैं कि संविधान में निर्धारित वाक्स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को शवसाधना के नाम पर निर्वीर्य कर दिया गया है ।

भारत के संविधान में "राज्य की नीति के निदेशक तत्व" के अन्तर्गत यह व्यक्त किया गया है - "राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानता को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहनेवाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा [85] ।" लेकिन इसका उलटा आचरण हर एक राज्य में दीख पड़ता है जिस की ओर ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने संकेत किया है । शुतुर मुर्ग में राजा, शुतुरमुर्ग का स्वर्णबिंब बनाकर आम जनता को अकाल से पीडित करता है । राजा से भूख मिटाने की प्रार्थना करती जनता को "भूख-समस्या-कमीशन" से तृप्त होना पड़ता है । राज महल में रहती राणी के द्वारा पढी गई भूख की समस्या उस देश के सभी भूखों को तृप्त करने में पर्याप्त नहीं है "भूख अब एक शारीरिक स्थिति नहीं है, बल्कि मन:स्थिति मानी जाएगी ।

---

84. कल्की लक्ष्मीनारायण लाल, (प्र.सं. 1969), पृ. 16

85. Constitution of India, Part IV, 38-2, p.13

पेट में भूख लगकर मरने का राज्य जिम्मेदार है । परन्तु मस्तिष्क में भूख लगने का नहीं । और चूँकि हमारी घोषणा के अनुसार भूख सिर्फ मस्तिष्क को लग सकती है । अत: इस नयी परिभाषा के अनुसार सदैव केलिए भूख समस्या का अन्त सत्यमेव जयते ।"[86] हमारे देश में बड़ी से बड़ी समस्याओं का समाधान "कमीशन" की नियुक्ति करके रिपोर्ट लिखवाने तक सीमित रह जाते हैं और पीड़ित जनता की समस्याओं का समाधान नगण्य रहता भी हैं । "शुतुरमुर्ग" में नाटककार ने इसे स्पष्ट किया है ।

आम जनता को दिशाहीन करके देश की समस्या से निश्चिन्त करने का एक और मार्ग है सरकार की ओर से त्योहार, महोत्सव आदि चलाना । देशीय व जातीय महोत्सव शहरों में धूम धाम से चलाकर थोड़ी देर केलिए जनता के भूखे मानस को तृप्त करने का जादू करना आज शासकों का एक टेक्निक बन गया है । डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने कौमुदी महोत्सव चलाने से जनमानस में जादू भरने का लक्ष्य प्रतिपादित किया है । शासकों के विलासमय जीवन से जनता भूखी-नंगी हैं । "अग्निशिखा" में यशोवर्मन और पुष्पदत्त के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कौमुदी महोत्सव में कुसुमपुर के निवासी अपनी नगरी की शोभा देखकर अपने वैर-विरोध को भूल सकते हैं । नगरी का ऐश्वर्य देखकर उनके विचारों की दिशा में परिवर्तन हो सकता है । कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कुसुमपुर को सजाने में नायक ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है । सोन और गंगा के संगम पर एक शत नौकाओं को सम्राट के शुभनाम के आकार में सजाकर उन पर चालीस हाथ ऊपर आकाश-दीपों की व्यवस्था की गई है, जिससे शरद चन्द्रिका के हास के साथ सम्राट का नाम भी दीपों का आलोक मण्डल बनाता हुआ नागरिकों के हृदयों में

86· शुतुरमुर्ग ज्ञानदेव अग्निहोत्री, पृ·58 ‌§प्र·सं·1968§

प्रवेश कर जावे । विश्राम के क्षणों को निद्रालु बनाने केलिए राज नर्तकी के नृत्य की आवश्यकता भी होगी[87]।" औसत आदमी की बुनियादी ज़रूरतों को अधूरा छोड़कर नेता या शासक का विलासमय जीवन बिताना नंगी भूखे लोगों के अपमान के बराबर है । त्योहार, उत्सव, विनोदयात्रा, विदेश पर्यटन, खेल-तमाशा, शिलान्यास, उद्घाटन समारोह आदि के नाम पर सरकारी संपत्ति नष्ट करनेवाले नेताओं की भरमार सभी पार्टियों में है । हमारे देश में प्रगति के स्थान पर आयी हुई दयनीय हालत का विश्लेषण करते हुए डॉ॰ बच्चनसिंह ने लिखा है "हमारे देश में इस स्थिति के लाने की प्रमुख जिम्मेदारी आज के खोखले लोक-तंत्र की है । यह स्वाभाविक अर्थ में लोक-तंत्र नहीं तंत्र-लोक है । इस का आरंभ उसी समय से है जिस समय से व्यक्तिपूजा शुरू हुई । व्यक्तिपूजा से अभिभूत होने का फल यह होता है कि लोग शक्तियों का एक व्यक्ति में केन्द्रित कर देते हैं और उनका अपना कुछ नहीं रह जाता है[88]।"

राजनीतिज्ञों की यंत्रणाओं की शिकार बननेवाली आमजनता

इस सत्य का निराकरण कोई भी नहीं कर सकता है कि सत्ता की जबर्दस्त ताकतें आम आदमी को लूटने, खसोटने और उल्लू बनाने में लगी रही हैं । सब से बड़ी हास्यास्पद स्थिति यह है कि जनता का रक्षक उनका भक्षक बन गया है । "न्याय की रात" नाटक की भूमिका में नाटककार इस विषय पर अपना विचार व्यक्त करते हैं "मध्ययुग में यह प्रथा थी कि युद्ध में जीत जाने पर विजयी सेनायें खुली लूटमार किया करती थीं, जिस के जो हाथ लगता था, लूट लिया करता था । शायद यही उनकी तनख्वाह मानी जाती थी । आज भी हमारे देश में

87· अग्नि शिखा डॉ॰ रामकुमार वर्मा, पृ॰58,59,60 (सं॰1987)

88· डॉ॰बच्चनसिंह - गुमशुदा पहचान - तलाश की प्रक्रिया-समकालीन कहानी डॉ॰घनश्याम, पृ॰90

कुछ उसी तरह का वातावरण दिखाई दे रहा है । कुछ अजीब तरह की आपाधापी की दौर जारी है।[89]" स्वतंत्र भारत में विदेशियों के चले जाने के बाद राष्ट्रीय नेताओं में आये मन:परिवर्तन का यथार्थ चित्रण चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने व्यक्त किया है कि आम आदमी को लूट कर हाथ मारना नेताओं का काम बन गया है । लेकिन यहाँ लूट-सम्बन्धी युद्धनीति से भी अधम कार्य कर रहे हैं कि विदेशियों के देश से नहीं लूट रहे है, बल्कि अपने ही भाई का शोषण वे नेता कर रहे हैं ।

हमारा भारत जितना विशाल है, उतना सम्पन्न भी है । आबादी अधिक होने पर भी सम्पदा का वितरण-क्रम और भी उचित रीति से करने पर यहाँ भूखे-नंगे लोग नहीं हो पायेंगे । लेकिन चीज़ों, खेतों का वितरण यथायोग्य नहीं चलता है जिससे देश-हितकारी मूल्यों का विघटन होता है । जन नायक ही इस विभाजन में बाधक होते हैं । वे अपनी खेती मे खेती और मकान मे मकान और रुपए मे रुपए मिलाते हैं जिन से आमजनता भूखे रहने को विवश होती हैं । राजनीतिक दल के नेता, अफसर लोगों मे मिलकर गरीबों का शोषण करते है । कलक्टर और नेता का सम्मिलित शोषण-कार्य "राम की लडाई" में मसखरा और नेताई के वार्तालाप के बीच मसखरा के मुँह से मिलता है "सरकार की तरफ से जो अन्न, कपडा मिला सब ऊपर ही ऊपर बेचकर खा लिया । घर बनवाने केलिए "फी" घर पाँच-पाँच सौ रुपए दिये सरकार ने । यही शाहजी और नेताजी ने मिलकर इससे अंगूठा-लगवाया लिया और सारी रकम हडप कर गये ।[90]" आम जनता को तंग करने में नेताओं की सहायता केलिए सरकारी कर्मचारियों के सहयोग का एक दूसरा रूप "बकरी" में मिलता है ।

---

89. न्याय की रात चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, भूमिका, पृ.5
90. राम की लडाई डॉ.लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.13

ग्रामीण अशिक्षित नारी की एक मात्र संपत्ति बकरी को दुर्जनसिंह, सत्यवीर, कर्मवीर आदि मिलकर "गान्धीजी की बकरी" का आरोप लगाकर चुराते हैं। बकरी वापस मिलने को बेचारी रोती चिल्लाती है। लुटेरों के सहायक के रूप में सिपाही भी मौजूद है। धमकी देते हुए सिपाही कहता है "तेरा दिमाग फिर गया है? तू इस को मामूली बकरी समझती है? यह गान्धी महान की बकरी है। यहाँ से दफा हो, वरना इस बकरी को बिना खाना-पीना दिये कमज़ोर कर मार डालने की साजिश पर भारत सुरक्षा कानून के अन्दर तू हवालात की हवा खाएगी। इस बकरी की जो हालत तू ने कर रखी है, वह कितना बडा जुर्म है, जानती है तू?"[91] यहाँ यह सत्य स्थापित हो जाता है कि देश में लुटेरों के साथी के रूप में सिपाही काम करते हैं। अशरण स्त्री की एक मात्र बकरी को लूटने के बाद उसे धमकी देकर जेल की सजा दिलवाने तक हमारा समाज आज बिगड गया है। सत्य केलिए यहाँ स्थान नहीं है। झूठ के पक्ष में सिपाही और नेता एकाकार होते हैं। इस विषय का स्पष्टीकरण करते हुए डॉ॰ हेतु भरद्वाज ने "आज के परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य में" व्यक्त किया है "सत्य के मार्ग पर चलनेवाला और श्रम तथा ईमान्दारी से जीनेवाला हर आदमी अपने को अकेला महसूस कर रहा है। क्योंकि उसके बहिष्कृत करने के प्रयास चल रहे हैं। लेखक का काम इस आदमी की पक्षधरता करना है और अपनी रचना के माध्यम से इस व्यक्ति की प्रतिभा को लूटने से बचाना है। आज के लेखक के समक्ष यह सब से बडी चुनौती है।"[92]

---

91. बकरी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ॰21।

92. परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य डॉ हेतु भरद्वाज, पृ॰15

"बकरी" में अनाथ स्त्री की बकरी का अपहरण नेता द्वारा होता है तो "सिंहासन खाली है" में नेता द्वारा एक पुरुष को मारकर उसकी पत्नी के अपहरण की कोशिश है। पर-पुरुष नेता के द्वारा बलात्कार के परिश्रम से स्त्री बच जाती है तो उसे अपनी ओर खींचने केलिए नेता कहता है "मूर्ख, मत भूलो कि मैं राजा हूँ। मुझे दैवीय अधिकार भी प्राप्त है। ईश्वर ने अपनी असीम शक्ति का एक छोटा सा अंश देकर मुझे तुम्हारा राजा बनाया है। ..... ईश्वर ने मुझे आदेश दिया है कि इस औरत को मैं अपने पास रखूँ।"[93] शासक या नेता जनता के रक्षक होते हैं। यहाँ रक्षा के स्थान पर बलात्कार, हत्या, छल आदि रचने में अपनी सफलता मानते हैं। इस के बारे में नाटककार ने स्वयं यह घोषित किया है "सत्ता के साथ विरोध जन्म लेता है और विरोध प्राय: संघर्ष, षड्यन्त्र और हत्याओं की रचना करता है।"[94] अत्याचारी, अन्यायी, एवं अनैतिक राह पर चलनेवाले शासक निष्क्रिय भी रह सकते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में आनेवाली समस्याओं का समाधान किये बिना निष्क्रिय रहनेवाले शासक का उदाहरण दैनिक जीवन में हम देखते हैं। हमारी शासन-व्यवस्था की यह एक बडी कमी है। शासक के निष्क्रिय रहने पर छोटी समस्या, बडी बन जाएगी। इस के बारे में नाटककार लक्ष्मीनारायणलाल ने यह व्यक्त किया है "हरएक दूसरे पर उत्तरदायित्व फेंक रहा है, और स्वयं उससे मुक्त बने रहने के प्रयत्न में, कहीं अपने आप से साक्षात्कार न हो जाय। इसलिए, हम देखते हैं कि हमारे चारों ओर इतने खोखले आकर्षण, इतने आडम्बर, इतने सिद्धान्त विचार, इतने बहाने, इतने स्पष्टीकरण, इतने भागने-छिपने की आधुनिक गुफाएँ निर्मित होती चली जा रही है कि लोग खुले में बहुत मुश्किल से दिखते हैं। आज चारों ओर हर दिशा और

---

93. सिंहासन खाली है सुशीलकुमार सिंह, पृ.29, प्र.सं.1974
94. सिंहासन खाली है सुशीलकुमार सिंह, दो शब्द, पृ.5

क्षेत्र में सत्य का रहस्य, मूक बना खडा है । इस रहस्य का उत्तर हमें अपनी ही शक्ति से देना है ।"[95]

चरित्रहीन, स्वार्थी, छली एवं चालाक नेताओं का निरादर समाज में होना स्वाभाविक है । क्योंकि जनता नेताओं से अधिक चरित्रवान होते हैं । ऐसे समाज में नेता को, आदर, पद, सम्मान आदि बनाये रखने केलिए अपनी जेब के रुपए खर्च करके अभिनन्दन पत्र छपवाना चाहिए । अपने यश का धुआं फैलाने केलिए अपनी जेब से खर्च करने वाले "येचरमैन" का कथन सुशील कुमारसिंह के नाटक "आज नहीं तो कल" में मिलता है (क्लर्क से चेयरमैन का वार्तालाप) - "अभिनन्दन पत्र मैं ने खुद ही तैयार कराया है, और जहाँ तक सिलवर सिगरट केस का सवाल है, वह भी मैं ही खरीद कर लाया हूं । अभिनन्दन पत्र को "फ्रेम" भी मैं ने ही कराया है, हालाकि सौ-डेढ-सौ रुपए खर्च हो गये । पर मजबूरी थी । उन लोगों ने तो इस के बारे में सोचा तक नहीं था[96] ।"

देश का धन उस देश के सभी नागरिकों का है । खासकर गरीबों का भी है । इस का बोध जिस देश के नेताओं, मंत्रियों और अफसरों को नहीं है, वहाँ जनता का शोषण अवश्य होता है । "मंत्री" केलिए अंग्रेज़ी में "मिनिस्टर" शब्द का प्रयोग होता है, जिस के अर्थ में "सेवा करना, शुश्रूषा करना, सहायता करना" आदि भी होते हैं[97] । याने मिनिस्टर या मंत्री जनता के सेवक, शुश्रूषक या सहायक होते हैं । अशरण, असहाय, निर्धन, निरक्षर आम जनता के सहायक रहने केलिए उन की ओर से जन-नेताओं को चुनते हैं । नेता या मंत्री आम जनता के ही प्रतिनिधि हैं । इन अर्थों की जानकारी मंत्री बनने के पहले उम्मीदवार

---

95. यक्ष प्रश्न लक्ष्मीनारायणलाल - भूमिका, पृ.8,10
96. आज नहीं तो कल सुशीलकुमार सिंह, पृ.54
97. The Concise Oxford Dictionary, p.756

या नेता को अवश्य चाहिए । उसी प्रकार भारत का संविधान, नागरिकों का कर्तव्य, सच्चरितता आदि से भी उन्हें भली भाँति अवगत होना चाहिए । लेकिन मौजूदा व्यवस्था में आम आदमी को लूटने खसोटने में लगे हुए नेताओं की संख्या बढ रही है । "न्याय की रात" का "हेमन्त" इस प्रकार के दुष्ट नेताओं का प्रतिनिधित्व करता है । हेमन्त मंत्रियों का मित्र है, एक जानेमाने नेता है, नशेपान और आवारगी में अपना विवेक खो बैठा है । "कमला" नामक शरणार्थी युवति को एक ब्याज कम्पनी के सेक्रटरी, के रूप में कई महीनों के पहले की तारीख डालकर नियुक्त करता है, एवं उन महीनों के वेतन पाये हुए कागज़ों पर हस्ताक्षर कराता है । पुरस्कार रूप में कमला को हेमन्त ने एक रकम दी, पर उसने इनकार किया । इसी समय, गरीब जनता का शोषण करते हुए सरकारी पैसे का दुरुपयोग करनेवालों को चेतावनी देते हुए प्रधान मंत्री का रेडियो-भाषण सुनाई पडा । इस भाषण में प्रधान मंत्री ने ऐसा उपदेश दिया है "सरकारी पैसा हिन्दुस्तान के गरीब किसानों की जेब का पैसा है । भारत के किसान पसीना बहाकर जो कमाते हैं, वह टैक्स वगैरह के रूप में हमारे पास आता है और हम उसे खर्च करते हैं । हम सैकडों, करोडों रुपए इसलिए खर्च कर रहे हैं कि हम उस गरीब किसान को लाभ पहुँचाना चाहते हैं । अपना पेट काटकर हज़ार बातों में कमी करके हम यह पैसा खर्च कर रहे हैं । इसलिए कि बाद में लाभ हो । लेकिन यह एक गरीब देश के गरीब निवासियों का पैसा है । इन पैसों को खर्च करते हुए हमें यह ख्याल हमेशा रखना चाहिए कि इस रकम का एक पैसा भी जाया न हो । हर एक शख्स को, जो सरकारी मुलाजिम है, सोचना चाहिए कि आखिर यह पैसा गरीबों की जेब से आता है ।[98]" भाषण सुनकर हेमन्त असन्तुष्ट हुआ और वहाँ से

---

98. न्याय की रात चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ.96-97

चला गया । नाटक के अन्त में हम देखते हैं कि यही हेमन्त कमला को अपने कमरे में रात में बुलाकर पिस्तौल दिखाकर और कई कागज़ों पर हस्ताक्षर कराता है । स्वार्थता ने उसे अन्धा बनाया है । डॉ· कैलाश वाजपेयी का कथन हेमन्त के बारे में कितना सच निकला है "एक बार जब मूल्यों का विघटन प्रारंभ हो जाता है तो उनका प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में पडने लगता है ।"[99]

राजनीतिज्ञ, नेता और शासक विलासमय जीवन बितानेवाले हो जाने पर आम जनता का जीवन दुखमय हो जाना स्वाभाविक है । व्यापारी, सेना, चोर सब मिलकर जनता का शोषण करेंगे । डॉ· लक्ष्मीनारायण लाल ने यह व्यक्त किया है । "सूर्यमुख" नाटक में इस का प्रमाण मिलता है । कृष्ण की छोटी पत्नी वेनुरति कृष्ण के ही पुत्र प्रदुम्न पर अनुरक्ता होकर उसे जीवन-संगी बनाती है । याने माता स्थानीय वेणुरति पुत्रस्थानीय प्रदुम्न से देहसंपर्क स्थापित करती है । इस विषय में पिता-पुत्र में कलह भी हुआ है । देश के बच्चे बच्चे यह समाचार जानते हैं । पहाडी प्रदेश में मुखौटा पहन कर बैठनेवाले प्रदुम्न के पास रहस्य पहुँचानेवाला व्यास पुत्र द्वारिका की दयनीय हालत का चित्रण करते हुए कहता है - "मैं द्वारिका पहुँचा, वहाँ की दशा देखी है,

दक्षिण दिशा से उत्तरोत्तर समुद्र बढता चला आ रहा है, पर उसे रोकने का कोई प्रयत्न नहीं । रोगियों और भिखारियों की संख्या बढ गई है वस्तुओं के दाम इतने बढ गये हैं कि मनुष्य अपने को बेचकर भी उन्हें नहीं खरीद पाता ।····· उग्रसेन मृत्युशय्या पर है बभ्रु और साम्ब राजपद केलिए युद्धरत है ।

99· आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता डॉ·कैलाश वाजपेयी ज्ञानोदय, पृ·17, सितम्बर-जून, 1963-64

सारी नारायणी सेना अलग अलग शिबिरों में बँटकर हिंसा, लूट और व्यभिचार में डूबी है । निश्चय ही यह महाकाल का कोप है, लोगों का विश्वास है कि इस के मूल में तुम्हारा वही पाप कर्म है ।"[100] शासकों या नेताओं के द्वारा अनैतिक राहों को अपनाने पर समाज-भर में फैलती दुस्थिति का चित्रण ही उपर्युक्त कथन से मिलता है ।

स्वतंत्रता के बाद 43 वर्ष बीतने के बाद भी भारतीय आम जनता की हालत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । स्वार्थतापूर्ण नेताओं के और उनके एजन्टों के हाथ से शासन चक्र घूम रहा है तो काफी प्रगति नहीं होती है । यहाँ का राजनैतिक वातावरण विषावत हो गया है । कमलेश्वर के अनुसार - "मेला उठने के तत्काल बाद ही जैसे तोरण, अल्पनायें, सुतलियाँ, बल्लियाँ, बिखर और फैल छितरा जाता है, वैसे ही आज़ादी का यह मेला उठने देर नहीं लगा और चारों तरफ बिखराव अव्यवस्था और छितराव नज़र आने लगा । धर्मगुरुओं की तरह बडे बडे नेता अपने शीश महलों में जा घुसे और आवारा छोकरों की तरह स्थानीय और क्षेत्रीय नेताओं ने ध्वंस शुरू किया । यह चकित कर देने वाला तथ्य है कि आज़ादी से पहले के सत्याग्रही नेता एकायक भ्रष्टाचार अनाचार और अत्याचार के पक्षधर और भागी कैसे बन गए ?"[101] इस निरुत्तर प्रश्न के सामने इस सत्य को ग्रहण करने केलिए नयी पीढी मज़बूर हो जाती है कि नेताओं के द्वारा होनेवाले अनैतिक प्रवर्तनों से हमारा राजनैतिक वातावरण विषावत हो गया है । विषलिप्त पानी या हवा से, जैसे तन्दुरुस्ती बिगड जाती है, उससे भी अधिक राजनीतिज्ञों और उनके एजन्टों द्वारा कलुषित किये गये समाज में आम जनता दम घुटती मृतप्राय हो गई है ।

---

100. सूर्यमुख डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.17-18

101. नई कहानी की भूमिका कमलेश्वर, पृ.14, सं.1978

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत में जिस जनतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया उससे सामान्य जन लाभान्वित नहीं हुए। "अन्धायुग" में, आम जनता की अराजकता दृष्टव्य है। साधारण जनता, शासन के प्रति अपने मन के विचार, प्रहरियों के वार्तालाप के माध्यम से व्यक्त करते हैं - "हम जैसे पहले थे, वैसे अब भी हैं। शासक बदले, स्थितियाँ बिलकुल वैसी हैं, इससे तो पहले के ही शासक अच्छे थे, अन्धे थे, लेकिन वे शासन तो करते थे।[102] जनतांत्रिक व्यवस्था से केवल शासक वर्ग तथा उच्च वर्ग ही लाभान्वित हुए हैं। सामान्य जनता तब से लेकर पिसती जा रही है। चारों तरफ आपाधापी, चारित्रिक गिरावट की चरम स्थितियाँ, भ्रष्ट-व्यवस्था-तंत्र, राष्ट्र को हर समय कमज़ोर बनानेवाले असामाजिक तत्व और मुखौटे पहन कर देश का प्रतिनिधित्व करनेवाले सफेद-पेशा-नेता, जनता की भावनाओं से खिलवाड करते हुए उनकी मर्यादाओं और मूल्यों का खून चूसते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में किसी दल के प्रति लोगों की आस्था शेष नहीं रही। याने देश में शासन-तंत्र के प्रति जो आस्था भाव जागृत होना था वह नहीं जाग पाया। सामान्य जन की दयनीय स्थिति और त्रासद नियति केलिए जिम्मेदार ताकतों के बहुरूपी चेहरों को बेनकाब करके जनता में आत्म विश्वास एवं आक्रोश पैदा कर के उन्हें अन्याय और शोषण के विरुद्ध लडने केलिए तैयार करने का प्रयास नई पीढी के कुछ नाटककार करते हैं। "सिंहासन खाली है "नाटक में नेता ने महिला का अपहरण करना चाहा। उस महिला के पति को नेता के अनुयायियों एक, दो, तीन - ने पानी में डुबो मारा। महिला को अपनाने केलिए उस के पति की हत्या का वर्णन सुनाते वक्त महिला के वचन - "किस किस का मुँह बन्द करोगे तुम ? सभी कह रहे हैं, राजा, राजा बनते ही लुटेरा हो गया। हम ने एक लुटेरे को राजा

---

102. अन्धायुग धर्मवीर भारती, पृ. 109

बनाया एक डाकू को सिंहासन दिया ताकि वह हमारा सब कुछ छीनकर हमें बेघरबार कर दे ? हमारी इज्ज़त आबरू लूट कर हमें नदी में फिंकवा दे ? कब मिलेगा छुटकारा इस पापी से इस अत्याचारी से, दुराचारी से ? हे भगवान .....।"[103] वर्तमान शासक वर्ग के शोषण के विरुद्ध आक्रोश है ।

"सिंहासन खाली है" में विवाहित महिला के साथ नेता के द्वारा हुआ अपहरण है तो "न्याय की रात में" अविवाहित स्त्री के साथ नेता के द्वारा हुआ शोषण का परामर्श मिला है । समाज में सम्मानित, संपन्न, पर स्वार्थी एवं विकृत व्यक्तित्ववाला हेमन्त, जनसेवक का मुखौटा पहनकर शरणार्थी मिस कमला को आधी रात के समय अपने कमरे में फोण. द्वारा बुलाकर अनुचित कार्य करने केलिए प्रेरित करता है । बेईमान व्यक्तियों केलिए परमिटों का प्रबन्ध करना, बेईमान और लालच व्यवसायियों को बडे बडे ठेके दिलवाना, व्याज कंपनियों के नाम पर सरकार के रुपए अपनाना, ऊँचे ओहदों पर बैठनेवाले बेईमान और विश्वासघाती सरकारी अफसरों केलिए मदिरा और महिला का वितरण करना आदि नीच से नीच कार्य करनेवाला हेमन्त, रात में अपने कमरे में बुला लायी कमला को पिस्तौल दिखाकर कुछ कागज़ों पर जबर्दस्ती हस्ताक्षर करवाता है । हेमन्त ने कमला से, उसकी आत्महत्या की चिट्ठी लिखवायी । अपनी मृत्यु को आँखों के सामने देखती कमला ने हेमन्त के सामने जो कहा, वह स्वतंत्र भारत के कुछ एक राजनीतिज्ञों के विरुद्ध आक्रोश के रूप में कानों में आज भी गूँजता रहता है
(कमला हेमन्त के सामने आवेश से खडे होकर) "- मैं मौत से उतना नहीं डरती, जितना तुम जैसे लोगों से डरती हूँ । मैं ने अपनी आँखों के सामने

---

103. सिंहासन खाली है सुशीलकुमार सिंह, पृ.32

अपनी माँ की और अपने पिताजी की हत्या देखी है । मैं ने उन हत्यारों को देखा है जिन्होंने मेरी आँखों के सामने मेरे माता-पिता की हत्या की थी, पर तुम लोग तो उन हत्यारों से भी बडे अत्यारे हो । तुम लोगों का बस चले तो सारे देश को लूट-खसोट कर अपनी जेबों में भर लो ! तुम लोगों का बस चले तो अपनी सन्तान तक को बेच खाओ !" [104]

"बकरी" में ग्रामीण स्त्री की संपत्ति अपहरण प्रतिपादित है। उस स्त्री की एक मात्र संपत्ति को लूटने केलिए ग्राम के छोटे नेता एकत्रित हुए हैं सिपाही की सहायता से । बकरी के अपहरण केलिए, नेताओं ने बकरी को गान्धीजी की बकरी घोषित की । बेचारे लोगों को इस का बोध कराने केलिए बकरी की माँ की, माँ की, माँ की, माँ की बकरी को गान्धी ने पाला पोसा था ऐसा व्याख्यान दिया गया । "गान्धी भक्त" से ग्रामीणों को लूटने केलिए दुर्जनसिंह ने कहा "पच्चीस साल से, इस बकरी की खोज हो रही थी । सरकार का खुफिया विभाग, पुलिस, पलटन सब इसे खोज रहे थे, आखिर यह बकरी आपके गाँव में मिली है । यह गाँधीजी की बकरी है । गाँधी महात्मा की बकरी है जिन्हों ने आप को इस लायक बनाया कि आप आज इस तरह शान से खडे हैं । आपको आजादी दिलायी । सब लोग प्रेम से बोलिए - गान्धी महात्मा की जय !" [105] गान्धीजी का नाम सुनकर, वे भोलेभाले ग्रामीण महिला की बकरी को गान्धी की बकरी मानने लगे । इस प्रकार आदरणीय नेताओं के नाम रटकर और ईश्वर की शपथ खाकर भी लोगों का शोषण नेताओं के द्वारा होता है । अज्ञता और निरक्षरता ही इस के कारण हैं । "विदेशी दासता से मुक्ति भारत की गरीब जनता केलिए अपने नेताओं द्वारा छले जाने की शुरूआत थी ।

104· न्याय की रात चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पृ·137

105· बकरी सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ·39

यह एक विडम्बना ही थी कि छलने के सब से ज्यादा तरीके नई सत्ता ने उससे सीखे जिसने राजनीति में चरित्र का महत्व स्थापित करना चाहा था।"[106] वास्तव में "बकरी" में आम आदमी की पीडा को आम आदमी की भाषा में, आम आदमी के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कविता नागपाल ने बकरी नाटक के "निर्देशक की बात" में ऐसा लिखा है "व्यवस्था के समकालीन राजनीति के छद्म और उसके जनविरोधी एवं जनतंत्र विरोधी चरित्र पर प्रहार करता हुआ यह नाटक जनता, विशेष कर ग्रामीण जनता पर लादी गई धर्मान्धता और उसमें होनेवाले शोषण-उत्पीडन का चित्रण करते हुए एक ऐसे गुस्से का रेखांकन करता है, जिसे यदि समग्र यथार्थ से जोड़कर देखा जाय तो जनवादी चेतना के प्रसार में सहायक हो सकता है।"[107] "बकरी नाटक के बारे में गोपाल राय का मत बिल्कुल सार्थक लगता है "बकरी पिछले सत्ताईस सालों में आम जनता के अपने नेताओं के द्वारा ही छले जाने पर तीखा व्यंग्य है।"[108]

"सक्सेना" का "अब गरीबी हटाओ" भी उस जन के समर्थन का नाटक है जो सदियों से आज तक एक व्यापक अपमान और शोषण का शिकार बना हुआ है। "यह नाटक उस की आकांक्षाओं और घुटन को उस की यातना और उसके संघर्ष को उस चट्टान के नीचे दिखाने की कोशिश करता है जो हर बार व्यवस्था की सुरक्षा के नाम पर उस के ऊपर रख दी जाती रही है।[109] नाटक में हम देखते हैं कि शासन के ठेकेदार निरीह जनता से उस का प्राप्त और स्वप्न छीनकर उसे उल्लू बना कर अपनी मूँछों पर ताव दे रहे हैं और हर तरफ से उसे लूट रहे हैं।

---

106. बकरी सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मुखावरण पृ. 2
107. वही, निर्देशक की बात, पृ. 7
108. समीक्षा गोपालराय - मई-अगस्त 1975
109. अब गरीबी हटाओ सक्सेना, भूमिका, पृ. 7, प्र. सं. 1981

नाटक के हरिजन औरत और उसके पति ग्रामीण युवक और युवति शोषित जनता के प्रतिनिधि चरित्र है । हरिजन आदमी को सत्ताधारियों ने खून के इलजाम में जेल की सजा दी, उस की पत्नी दारोगा एवं सरपंच की वासनापूर्ति का शिकार बन गई, और उस के बच्चे का पता तक नहीं रह गया । इस तरह उनकी समस्त आशायें आकांक्षायें, व्यवस्थापकों ने धूल में मिला दीं ।

आम जनता अच्छे शासक की प्रतीक्षा में सदियों से रही है । लेकिन सुपात्र की खोज आज भी जारी रहती है । आहत-पीड़ित-प्रतीक्षित जनसमूह का चित्रण सुशीलकुमार सिंह ने किया है "हर युग में, हर सभ्यता ने एक नया शाही जामा पहनकर मानवता को भटकाया है । न जाने कितने लोग आए और चले गये नश्वरता के इस अनन्त चक्र का अवशेष रह गया, सत्ता का प्रतीक यह सिंहासन जो आज भी सुपात्र की प्रतीक्षा में आहत और पीड़ित जन-समूह के कांपते हुए विश्वास को संजोए, सुपात्र की खोज केलिए सिसक-सिसक कर प्रार्थना कर रहा है ।"[110]

आम जनता की मोह निद्रा

जनता के शोषण केलिए एक हद तक खुद वे ही दोषी हैं । दरअसल वे अपने आप को शोषक के हाथों में सौंप देते हैं । दूसरों की दी हुई जिन्दगी को वे ढोते हैं । नेताओं की अपेक्षाओं के अनुसार अपने आप को ढलने केलिए वे मजबूर हैं । दूसरों के द्वारा दिये जानेवाले गुरु मंत्र को वे रटते हैं । डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल ने "कल्की" में कल्की

110॰ सिंहासन खाली है सुशीलकुमार सिंह, पृ॰40

नगर की भोली-भाली, निरक्षर, आलसी, अन्धविश्वासी और परिवर्तन से भयभीत प्रजा से हमारा परिचय कराया है । उन्होंने अपना सारा अधिकार निरंकुश शासक अकुलक्षेम को सौंप दिया था । अकुलक्षेम ने अपनी निरंकुश सत्ता को नगर में कायम रखने केलिए प्रजा के बीच में अपरिवर्त-नीयता के भ्रम फैलाये, प्रजा को प्रश्नहीन बनाया, यहाँ तक कि जनता में यह धारणा रूढमूल हो चुकी है कि "प्रश्न करना महापापहै ।"[111] रघुवंशराय का कथन बिलकुल सही है कि "कलंकी जनता की अकर्मण्यता और मोह निद्रा के विरुद्ध एक आह्वान है ।"[112]

आम जनता चैन की बंशी बजाना चाहती है, गंभीर दा-यित्वों से बच निकलना चाहते हैं । कभी कभी सुविधाओं के सामने अपने आदर्शों को बेचकर सुविधाएँ खरीदते हैं । चालाकी व कूटनीतिज्ञ नेता जनता की इस कमज़ोरी से बिलकुल अवगत हैं और वे इसका खूब लाभ उठाते हैं । यही कारण है कि शुतुरमुर्ग नगरी में भूख प्यास से तडपनेवाली जनता का वक्ता बन कर सत्ता की कटु आलोचना करनेवाला विरोधी लाल बहुत जल्दी सुबोधीलाल बन जाता है । बुद्धिमान एवं चालाक राजा ने जब उसे मंत्री बनाया तो राजा की प्रशंसा करते हुए नव मंत्री के रूप में विरोधी लाल कहता है - "महाराज, आप वह पहले व्यक्ति है, जिसने मेरी प्रतिभा को पहचाना है । हाँ, महाराज मुझे शुतुर नगरी का विकास-मंत्री बनना स्वीकार है, एक बार नहीं, मुझे मंत्री बनना हज़ार बार स्वीकार है ।"[113] आज कल जनता के नेता के रूप में आकर शासक के पक्षधर बनकर साधारण लोगों को छलनेवालों की संख्या अधिक हैं । याने आम जनता वह ढोल है जिसे दोनों ओर - शासक की ओर से और

---

111. कलंकी डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.9
112. कृतिकार लक्ष्मीनारायणलाल सम्पादक रघुवंश, पृ.40
113. शुतुरमुर्ग ज्ञानदेव अग्निहोत्री, पृ.23

अपने साथी आम लोगों की ओर से मारखाना पडता है, मार सहकर थोडी देर में ही फट जाना पडता है ।

आम जनता के शोषण का एक प्रधान कारण यह भी है कि शासन में पिछडे वर्ग के लोगों का हिस्सा आज नहीं के बराबर है । याने प्रगति रहित ग्रामीण जनता की समस्याओं - भूख, प्यास, बस्ती का अभाव, सडकों का अभाव आदि से परिचित नेताओं की संख्या बहुत कम है और ऐसे नेताओं में विलसिता की चाह भी है । इसलिए आम जनता की समस्याओं का असला प्रतिफलन संसद में नहीं होता है । जनता के वक्ता के रूप में आनेवाले नेता साधारण जनता की ओर से चुना जाता नहीं है । वे आम जनता की अभाव ग्रस्त जिन्दगी से बिलकुल अनभिज्ञ हैं । क्योंकि या तो वह वरेण्य परिवार का होगा, या अपनी तिजोरी के बल पर या झूठे अनुयायियों के बल पर पार्टी टिकट खरीदनेवाला होगा । अपने रूपए के और अनुयायियों के बल पर विजयी ऐसे नेताओं को आम जनता के प्रति जिम्मेदारी की ज़रूरत नहीं है । "सिंहासन खाली है" में अपने अनुयाइयों - एक, दो, तीन - के बल पर विजयी नेता महिला को बलात्कार करने केलिए उसके पति को पानी में डुबो मारता है । एक, दो और तीन नेता के सभी अन्यायों में साथ देते हैं । नेता के द्वारा अन्याय और बलात्कार सहती महिला रोती चिल्लाती है तो नेता का कथन इस प्रकार है - "राजा बनाया नहीं जाता है । राजा अपनी शक्ति और सामर्थ्य से बनता है । राजा को सिंहासन दिया नहीं जाता, राजा उसे अपने बाहुबल और बुद्धि-कौशल से प्राप्त करता है ।"[114] इस प्रकार अनुयायी गुंडों के बल पर, रूपयों के बल पर, या छोटे नेताओं द्वारा नेता की योग्यताओं की रट लगाकर,

---

114. सिंहासन खाली है सुशील कुमार सिंह, पृ.32

दस-पन्द्रह दिन लगातार कार, जीप आदि की रैली दिखाकर विजय की धुआँ उड़ाकर नेता बनाया जाता है । रुपए खर्च कर के एम•पी• या एम•एल•ए• बनाये जाने के कारण पिछड़े वर्ग और शोषितों की समस्याएँ हल नहीं की जाती है ।

कायर आम जनता

आम जनता में प्रश्न करने की हिम्मत नहीं है । "बकरी" में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अन्याय देखकर भी साफ साफ बताने की शक्ति रहित एक कायर-जन-विभाग का चित्रण किया है । अशरण, असहाय ग्रामीण महिला की बकरी का अपहरण असल में नेताओं के द्वारा हुआ है । एक युवक ने कहा कि यह अन्याय है । लेकिन अधिकांश ग्रामीण खुले तौर पर नेताओं का विरोध करने केलिए तैयार नहीं है । वे नेता के पक्ष में मिलकर "बकरी-स्मारक-निधि", बकरी-संस्थान, बकरी-सेवा-संघ, बकरी-मण्डल आदि के काम में अग्रसर हुए हैं । इस प्रकार नेताओं के साथ मिलकर ग्रामीण लोग भी गरीबों को बकरी-सदृश दुहने लगे । ग्रामीणों की कायरता को चुनौती देने वाले युवक की आवाज़ में जन जागरण का सन्देश गूँजता है :- "अब भी कुछ समझे आप लोग ? आप लोगों ने बकरी को देवी माना । बाढ़ में सारा गाँव बह जाने दिया पर आश्रम को नहीं डूबने दिया । गाँव की ज़मीन खोद खोदकर आसरम की ज़मीन ऊँची करते रहे । सूखा पड़ा, खुद भूखे रहे, घर का अनाज आसरम को दे आये । आसरम में दावतें उड़ती रहीं, खुद भूखों मरते रहे । फिर उन्हीं लुटेरों को कंधों पर बैठाकर देश की बागडोर थमा आये । तब भी कुछ समझे आप लोग ?[115] बकरी ग्राम के उजड़ जाने का कारण जनता के बीच में एकता का अभाव है ।

115• बकरी सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ•56

युद्ध की विभीषिकाओं से संत्रस्त आम जनता

जितने भी युद्ध लडे हुए हैं उसके मूल में किसी व्यक्ति या गुट की स्वार्थ भावना काम कर रही है । युद्ध से सबसे अधिक आम जनता ही पिसी जाती है । दुष्यन्त कुमार "एक कंठ विषपायी" में युद्ध की विभीषिका और मानव-मूल्यों का संकट प्रस्तुत करते हुए एक जलते सत्य की ओर नज़र डालते हैं "आम जनता को ही युद्ध के दुष्परिणामों को सब से अधिक भोगना पडता है । नाटककार ने "सर्वहत" के माध्यम से शासन की चक्की के पाटों में पिसते जन सामान्य की मर्मान्तिक कराहट और घायल होते जीवन को साकार किया है । उस की आत्म चेतना सामान्य जनता की नीति को प्रभावित करनेवाली शक्तियों और शासक वर्ग के भीतरी इरादों को समझाने की बौद्धिक सजगता उसकी सामान्यता को वैशिष्ट्य प्रदान कर देती है ।"[116]

युद्ध का दुष्परिणाम "सर्वहत" को अधिक खटकता है । देवलोक के नेताओं, जो युद्ध मनोवृत्ति के पोषक हैं, पर वह व्यंग्य छेडता है -

कौन कहता है -
यहाँ कुछ भी नहीं है शेष
यहाँ शेष ही तो है सब कुछ
देखो, सारे नगर में ताज़ा
जमा हुआ रक्त है
और सडी हुई लाशें हैं

---

116. नई कविता की प्रबन्ध चेतना महावीर सिंह चौहान, पृ. 13

मुडी हुई हड्डियाँ हैं
क्षत विक्षत तन है
और उन पर भिन्नाते हुए
झीलों और गिद्दों के झुंड
और मक्खियाँ हैं -[117]

"सर्वहत राजलिप्सा तथा युद्धमनोवृत्ति के मारे हुए एक ऐसे व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो आधुनिक प्रजा का प्रतीक बन जाता है।"[118]

उन्नत-कुल-जात नेताओं की यंत्रणायें

भारत भर के राष्ट्रीय दल के नेताओं की गणना करने पर यह सत्य स्पष्ट हो जाता है कि निम्नवर्ग, हरिजन, न्यून-जन-विभाग, गरीब-पीडित-शोषित जनों के उन्नायक या वक्ता के रूप में आनेवालों में बहुसंख्यक नेता उन्नत-कुल-जात होते हैं। निम्न वर्ग के वोट के बल पर शासक बननेवाले वे जनता केलिए कुछ नहीं करते हैं। नेता या शासक बनने केलिए निम्न वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में आनेवालों से सारा वातावरण कलुषित हो जाता है। जगदीशचन्द्र माथुर ने "पहला राजा" में यथार्थ को झुठलानेवाली जनहन्ता राजनीति का विश्लेषण किया है। पहला राजा" बनने का वास्तविक अधिकारी अनार्य पुरुष कवष है। लेकिन रक्त की शुद्धता की दुहाई देनेवाले मुनि लोग कवष को पहला राजा बनाना नहीं चाहते हैं। वे उस का अपमान करते हैं, आर्य कुल के वंशज "पृथु" को ही "पहला राजा" बनाते हैं। ये महत्वाकांक्षी मुनि लोग -

---

117. एक कंठ विषपायी दुष्यन्त कुमार, पृ.45
118. नया प्रतीक मई 1976

शुक्राचार्य, अत्रि और गर्ग पुराण के ही पात्र नहीं बल्कि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनैतिक क्षेत्र के पात्र भी हैं जो सांप्रदायिकता का विष फैलाकर अपनी स्वार्थ-पूर्ति करने में लगे हुए हैं । अत्रि का कथन इसका प्रमाण है - "... आर्य जाति के रक्त की शुद्धता ही हमारी मर्यादा है । जो उस प्राण का घातक है, उस अमृत का शोषक है, उस मर्यादा का ध्वंसक है, क्या ऐसा निर्लज्ज पापी जिन्दा रहेगा ?..... कभी नहीं ! [119] ।

आम आदमी की अराजकता और नेताओं के शोषण से उन्हें बचाने केलिए उन्हें शिक्षित करना अनिवार्य है । इसका दायित्व साधारण शिक्षित लोगों को ही करना चाहिए । नवयुवक जब कर्मनिरत हो जाएंगे तब नेता अपने झूठे पथ से हटने को मजबूर हो जाएंगे । नवयुवकों को स्वतंत्रता-बोध से भरने का दायित्व साहित्यकार का अपना ही है । आम आदमी को असली आजादी का अनुभव प्राप्त कराने केलिए साहित्यकार की जिम्मेदारी व्यक्त करते हुए श्री धर्म वीर भारती ने ऐसी टिप्पणी की है - "भारत की स्वतंत्रता तब तक सार्थक नहीं है जब तक सामान्य जन स्वतंत्र नहीं है । साधारण जन के स्वतंत्र होने का मतलब यह भी है कि उसे भरपेट भोजन और कपडे मिले, साथ ही साथ उस के मानस में जो अन्धरूढियाँ हैं, कुण्ठाएँ हैं, अविवेक हैं, मूर्छना है, मृत परम्पराएं आदि प्रवृत्तियाँ हैं, जिस के कारण वह युग युग से दास बनता चला आया है, उनसे भी उन्हें मुक्त कराना है [120] ।"

119· पहला राजा जगदीश चन्द्रमाथुर, पृ·17 (तृ·सं·1972)
राधाकृष्ण प्रकाशन,

120· मानव मूल्य और साहित्य धर्मवीर भारती, पृ·74

व्यापक जन संघर्ष

प्रत्येक देश और काल में शोषण से मुक्ति का एकमात्र उपाय "व्यापक-जनसंघर्ष" है । सामान्य जन की दयनीय स्थिति और त्रासद नीति केलिए जिम्मेदार ताकतों के बहुरूपी चेहरों को बेनकाब करना और जनता में आत्मविश्वास और आक्रोश पैदा करके अन्याय और शोषण की शक्तियों के विरुद्ध लडने केलिए तैयार करना किसी भी लेखक का फर्ज है । नई पीढी के बहुत से नाटककारों ने अपने इस फर्ज को पूरी तरह निभाया है । कुर्सी के हकदार बनने के बाद जब शक्तिशाली सत्ता अपनी जनहन्ता राजनीति का कुचक्र चलाकर जनता को निर्वीय बनाना चाहती है तो आगामी चुनाव में जनता उन को सत्ता से निष्कासित कर देती है । आम जनता के नैतिक स्तर अक्सर शासकों के नैतिक स्तर से ऊपर होता है जिस से शोषक शासकों के विरुद्ध प्रतिषेध करने की शक्ति उन में आ जाती है । याने शासकों के नैतिक-स्तरों की गिरावट व्यापक जनसंघर्ष के कारणों में से है ।

डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल ने "सूर्यमुख" में राजा के विलासमय जीवन के विरुद्ध भिखारी द्वारा विरोध प्रकट किया है । राज्यशासक कृष्ण की पत्नी वेणुरती के साथ राजा का ही पुत्र प्रद्युम्न प्रेमपाश में आबद्ध हो जाता है । द्वारकाधीश महाराज उग्रसेन मृत्युशय्या पर हैं । उग्रसेन की आत्म-शान्ति केलिए दान दिया जा रहा है । दुर्गपाल के दिये दान भिखारी स्वीकार कर रहे थे कि महारानी रुक्मिनी दान बाँटने आयीं । इस समय भिखारी दान स्वीकार करना छोड देते हुए कहते हैं - "अधर्मी की माँ के हाथ का दान कौन लेगा ?"[121]

121• सूर्यमुख डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल, पृ॰20

इसी प्रकार तीसरे दृश्य में, प्रदुम्न को नगर में देखकर साधारण जनता ने आक्रोश किया - "अधर्मी को किस ने नगर में आने दिया ? निर्वासित कैसे आया नगर में निकल जाओ तुम हमारे नगर से, अधर्मी ! हम तेरा मुख नहीं देखना चाहते ....[122]।" "बकरी" में ग्रामीणों को उल्लू बनाने में तुले हुए नेताओं के विरुद्ध ग्रामीण युवक का आक्रोश चित्रित किया गया है । इस नाटक के अशिक्षित ग्रामीणों को उल्लू बनाकर, औरत विपती की बकरी को गान्धीजी की बकरी कहकर, सिपाही की सहायता से जननेता दुर्जनसिंह, कर्मवीर और सत्यवीर अपनाते हैं । इस के विरुद्ध अशिक्षित, अल्प बुद्धि विपती बोलती है तो नेता विपति को हथकडी पहनाकर सिपाही की सहायता से ले गये । इस समय ग्रामीणों में एक युवक अपने ग्रामीण निरक्षरों को समझाता हुआ कहता है - "कल को वह आप लोगों को भी जेहल ले जाएगी । आज बकरी गान्धीजी की हुई, कल को गाय कृष्णजी की हो जाएगी बैल बलरामजी के हो जाएगी । ये सब ठग हैं ठग...." "बकरी, बकरी है, देवी नहीं है । आसरम जाल है । ई सब चोर है, डाकू ।" "कोई छोटा बडा बन के नहीं आया । सब बराबर बनके आये ।" "हम खरपतवार नहीं है, हम भी इन्सान हैं[123]।"

कला और सौन्दर्य के नाम पर कारीगरों पर शासकों द्वारा अन्याय होने का उदाहरण "कोणार्क" में मिलता है । "कोणार्क" मन्दिर में सूर्यदेव की मूर्ति के प्रतिष्ठापन में देरी होने के कारण, बारह वर्ष लगातार मन्दिर-निर्माण में लगे रहे बारह सौ शिल्पियों की भुजाओं को काटने की बात विशु से चालुक्य कहता है । जड पत्थर के टुकडों में प्राण फूंक फूंक कर उन्हें चेतन बनानेवाले वे शिल्पी मूक रह जाते हैं । कोरी सौन्दर्य-साधना में अपने आप को डुबा देनेवाला प्रधान शिल्पी विशु इन अत्याचारों को अनदेखा करता है । उनकी राय में शासकों के

---

122. सूर्यमुख डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.28

123. बकरी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ.32,34,36

मामले में दखल देना शिल्पियों का काम नहीं है । लेकिन नई पीढी के, सोलह वर्षीय शिल्पी धर्मपद में अपनी कच्ची उम्र में ही अन्याय के विरुद्ध बोलने की ताकत है, निर्दयी शासक से निडर होकर प्रश्न करने की कूवत है । सौन्दर्य सृजन के सम्मोहन में अपने आपको भूले हुए शिल्पी विशु को धर्मपद धिक्कारता है - "जब मैं इन मूर्तियों में बंधे रसिक जोडों को देखता हूं तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका को खेनेवाले मल्लाह की, दिन-दिन भर कुल्हाडी लेकर खटनेवाले लकड हारे की ! इन के बिना जीवन अधूरा है, आचार्य ![124]" शिल्पियों की भूमि हडपकर तथा उन की स्त्रियों के साथ दासियों का - सा अमर्यादित व्यवहार कर के अमात्य चालुक्य ने जो अत्याचार किया था उसे विशु और शिल्पी लोग मौन रूप से पी रहे थे । धर्मपद अपने निडर और साहसी व्यक्तित्व का परिचय देते हुए कहता है - "मैं तो एक ऐसे संसार की ओर आप का ध्यान खींचना चाहता हूं जो कि आप के निकट होते हुए भी आप की आंखों से ओझल हो गया है । इस मन्दिर में बरसों से 1200 से ऊपर शिल्पी काम कर रहे हैं । इन में से कितनों की पीडा से आप परिचित है ! जानते हैं आप कि महामात्य के भृत्यों ने इन में से बहुतों की ज़मीन छीन ली है; कइयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पडा है और सारे उत्कल में अकाल पड रहा है ।"......, "जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ रही हों, शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तियां ही बनाता रहे । अगर मुझे महाशिल्पी के अधिकार मिले होते ..... ।[125]" युवक धर्मपद अपने इन विचारों से विशु और अन्य शिल्पियों को अत्याचारी चालुक्य के विरुद्ध लडने केलिए सन्नद्ध कराते हैं । नाटककार ने धर्मपद के माध्यम से जनवादी

---

124. कोणार्क जगदीश चन्द्र माथुर, पृ.34

125. वही, पृ.35

चेतना मुखरित कराई है । निरंकुश शासकों की हर आज्ञा का पालन कर्ता बनकर अपने आप को शोषक के हाथों सौंपने वाली जनता केलिए "धर्मपद" की वाणी एक चेतावनी है ।

शैक्षणिक संस्थाओं की सड़ी गली मान्यताओं का पर्दाफाश करते हुए डा॰ शंकरशेष ने "एक और द्रोणाचार्य" में प्रोफसर अरविन्द जैसे शिक्षक वर्ग द्वारा अपनायी जानेवाली स्वार्थपरता को पूरी सच्चाई के साथ शब्दबद्ध किया है । अपनी रोटी की सुरक्षा केलिए और अपने पद-ओहदों को ऊँचे उठाने केलिए सारे आदर्शों को बिकनेवाले प्रोफसर अरविन्द को शासकों के पक्षधर के रूप में घोषित करके छात्र विमलेन्दु उसकी कटु आलोचना करते हुए कहता है "तू द्रोणाचार्य है । व्यवस्था और सत्ता के कोड़ों से पिटा हुआ द्रोणाचार्य ... । इतिहास की धारा में लकड़ी के ठूंठ की तरह बहता हुआ, वर्तमान के कगार से लगा हुआ - सड़ा-गला द्रोणाचार्य व्यवस्था के लाइट हाउस से अपनी दिशा मांगनेवाले टूटे जहाज-सा द्रोणाचार्य ।"[126] अध्यापकों की ओर से अन्याय होने पर आलोचना करने की ताकत छात्रों में आ गयी है । एकलव्य के अंगूठे के कटवाने के विषय में द्रोणाचार्य से कृपी का कथन यों है - "मैं पूछती हूँ तुम्हारा आचार्यत्व कहाँ मर गया था ? क्या वह केवल एकलव्य का अंगूठा कटवाने या सूतपुत्र कहकर कर्ण की अवहेलना करने तक सीमित था ? तुमने अपने शिष्यों को रोका क्यों नहीं ? क्या तुम्हारा उन पर कोई नैतिक अधिकार नहीं था ?[127] जनसंघर्ष का पहला चरण है विचारों का परिवर्तन । इस परिवर्तन केलिए साहित्यकार कलम का इस्तेमाल करते हैं तो जनता के विचारों में परिवर्तन आ जाएगा और यथासमय वे संघर्ष करेंगे । "बकरी" में अशिक्षित ग्रामीणों के विचारों में परिवर्तन करने का काम युवक ने शुरू किया ।

126॰ एक और द्रोणाचार्य शंकर शेष, पृ॰108 (प॰सं॰1978)

127॰ एक और द्रोणाचार्य शंकर शेष, पृ॰84 (चतुर्थ सं॰1983 पराग प्रकाशन, दिल्ली)

परिवर्तन शुरू करने केलिए निकलनेवालों को पहले कठिन परिश्रम और त्याग करना पड़ेगा । क्योंकि पुराने विचारों के दास बनी पुरानी पीढ़ी के बूढ़ों, अभिभावकों की सम्मति पाना मुश्किल है । विष्णु प्रभाकर के नाटक "टूटते परिवेश" में स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व की पीढ़ी और स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी इन दोनों के मन के परिवर्तित विचारों को व्यक्त किया है । "स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व की पीढ़ी और उसके मूल्य एक विशेष उद्देश्य से जुड़े थे । वह लक्ष्य था - स्वतंत्रता प्राप्त करने का । इसीलिए आदर्श, नैतिकता, आत्मबलिदान और मानवता जैसे एक पवित्र बोध ने सब को जकड रखा था । समाज-सुधार के युग से लेकर गांधी नेहरू के युग तक ही नहीं, उस के ठीक बाद के लोग भी, कई रूपों में अपने पूर्ववर्तियों से भिन्न होकर भी, एक प्रकार की पवित्रता से चिपके रहे । ....उसके बाद सहसा शब्दों के अर्थ बदलने शुरू हुए । प्रश्न वाचक चिन्ह उभरे, अनास्था गहराई, रिश्ते बदले और देखते-देखते आदर्श ढह गये । क्यों ऐसा हुआ ? एक तो हम अनायास ही "कृषि युग" से "औद्योगिक युग" में आ गये । पश्चिम ने इस यात्रा में जो दर्द झेले थे उनसे हम अपरिचित ही रह गये । दूसरी बात और भी महत्वपूर्ण थी । जो आज़ादी केलिए लडे थे वे तथाकथित महापुरुष नई पीढ़ी के सामने नंगे हो गये । अपने किये गये बलिदानों के चेक भुनाने की होड में उन्होंने अपनी जो गन्दी व्यावहारिक तस्वीर हमारे सामने पेश की उसने गहरी उथल-पुथल मचा दी । आज ईमान्दारी से जीना असम्भव हो गया है । दबाव और भी थे । आर्थिक विषमता, बेकारी, बढ़ती हुई आबादी की समस्या और यह भी कि राजनीतिक आज़ादी ने समूचे परिवेश - सामाजिक, पारिवारिक व्यक्तिगत सभी को स्वाधीनता की पुकार लगाने को प्रोत्साहित किया । इसलिए भावुकता जो आदर्शों की वैशाखियों पर पनपती थी, उनके खिसक जाने से भरभराकर गिर पडी और उसका स्थान लिया क्रोध भरे चिन्तन ने । इस प्रकार स्वतन्त्रता पूर्व और स्वातंत्र्य के बाद की दो पीढ़ियों में अन्तर पैदा हो गया ।"[128]

---

128. टूटते परिवेश विष्णु प्रभाकर, दो शब्द, पृ.3-4

युवा पीढी के विचार में आये परिवर्तन का उदाहरण "टूटते परिवेश" के युवकों का प्रतिनिधि "विवेक" के वार्तालाप में मिलता है । बेकार फिरता विवेक नौकरी केलिए अर्जियाँ लिखते लिखते ऊब गया, नौकरी कहीं नहीं मिलती है । इस पर निराश वह कहता है - "कह तो दिया कि अब और अर्जियाँ नहीं लिखूँगा । विद्रोह करूँगा । उस का साथ दूँगा जो सब कुछ को विध्वंस करना चाहते हैं । बिना विध्वंस किये नव-निर्माण नहीं हो सकता ।"[129] विवेक घर के वातावरण से नफरत करता है । घर से कहीं बाहर, बहुत दूर जाने की इच्छा के बारे में अपनी माताजी से वह कहता है - "ममी, साफ साफ कहूँ तो मैं इस घर की घुटन और सीलन से मुक्ति पाना चाहता हूँ । यहाँ एक ऐसी बदबू है जो दिमाग को सुन्न कर देती है । मैं अपने दिमाग को सुन्न नहीं करना चाहता । मैं यंत्रणा में छटपटाना नहीं चाहता । मैं इस से मुक्ति पाना चाहता हूँ ।"[130]

नये लोग, नई धरती, आकाश नया, बादल नये, पक्षी नये, यहाँ तक कि हवा भी नयी, आवाज़ें भी नयी, मौन भी नया, सब कुछ नया और नया । और आप जानते हैं कि यह नया होना ही तो ज़िन्दगी है । "टूटते परिवेश" की दीप्ति पुरानी पीढी के छल पूर्ण कामों के विरुद्ध आक्रोश करती हुई कहती है "अखबारों में भ्रष्टाचारों की कहानियाँ छपती हैं । बेपनाह दौलत के खर्च किये जाने की कहानियाँ छपती हैं । खुले आम गुण्डा गर्दी की कहानियाँ छपती है । झूठे दिलासों से अखबार भरे रहते हैं । झूठे दस्तावेज तक छपते हैं । विश्व विद्यालय बन्द है । अस्पतालों में हड़ताल है । राशन की दुकान खाली है । पट्रोल पम्प सूख गये हैं । कागज़ नहीं, कोयला नहीं, घी नहीं, और जो कुछ है उसके दाम आस्मान को छूते हैं, इनबातों की चिन्ता है किसी देश भक्त को ?.... उन्हें बस एक ही बात की चिन्ता है कि कहीं नई पीढी को सही नेतृत्व न मिल जाए । वे हताश और निराश ही बने रहें और बूढे लोग मृत्यु की

---

129. टूटते परिवेश : विष्णु प्रभाकर, पृ.40

130. वही, पृ.42,48

अन्तिम पग-ध्वनि सुनने तक ऐयाशी और अधिकार की गंगा में डूबे रहें।"[131] ऊपर हमने देख लिया कि संघर्ष परिवार में शुरू करता है। वर्तमान परिवेश से नई पीढ़ी ऊब गई है। घर से निकल जाना चाहनेवाले वे समाज में एकत्रित होकर परिवर्तन लाना चाहते हैं। लेकिन इस यात्रा में आदर्श पूर्ण पथप्रदर्शन के अभाव ने उन्हें पथभ्रष्ट किया है।

समाज में पनपनेवाली विद्रूपताओं और विरूपताओं के विरुद्ध लड़ने केलिए सामूहिक संगठन की ज़रूरत है। समाज में क्रांति लाने में अकेले व्यक्ति का जागरण अभिशाप है। "लड़ाई" में सक्सेना जी ने एक अकेले आदमी के जागरण को दिखाया है। सत्यव्रत एक आम नागरिक है। उसने आँख मूंद कर सरकार और सत्ता पर भरोसा रखा। उसने सुना कि रिश्वत लेना और देना कानून द्वारा जुर्म है। उस की पत्नी की बात को उसने अनसुना किया "महीने भर से दफ़्तर की खाक छान रहे हो। यहाँ इन्स्पेक्टर आता है। एक दिन चाय पिला देते। जेब में बच्चों की मिठाई केलिए कुछ रख देते। तो चार की जगह बीस का कार्ड आननफानन में बनवा लेते, घर में चीनी ही चीनी होती।"[132] सत्यव्रत ने रेशन कार्ड बनवाने केलिए राशन दफ़्तर के कर्मचारी को घूस नहीं दिया जिससे उसका कार्ड बना नहीं। उसी प्रकार सत्यव्रत ने, बस यात्रा के बीच सरकारी रुपए की चोरी कंडक्टर के द्वारा देखकर उसके विरुद्ध आवाज़ उठायी। वास्तव में यात्री से कंडक्टर ने रुपए वसूल किये थे, पर टिकट नहीं दिया। लेकिन यात्रियों में किसी ने भी उस का समर्थन नहीं किया। सबूत न होने की वजह से सत्यव्रत की शिकायत इन्स्पेक्टर ने स्वीकार नहीं की। निराश सत्यव्रत का कथन

---

131. टूटते परिवेश विष्णु प्रभाकर, पृ.46,47

132. लड़ाई सक्सेना, पृ.15 (प्र.सं.1979)

आज की दुनिया में कितना सच है - "यानी गलत बात देखूँ, चुप रहूँ और यदि बोलने को कहा जाय तो झूठ बोलूँ।"[133] ऊपर हम ने देख लिया कि अकेले सत्यव्रत ने अन्याय के विरुद्ध लडा। किसी ने उसका नहीं सुना।

परिवर्तन चाहनेवाले युवकों को कुराह पर, राजनीतिक दल के लोग, चलाने का दृष्टान्त "करफ्यू" में मिलता है। रात में कर्फ्यू की आड में पुलिस के हाथ पड गई मनीषा गौतम से पिछली घटनाएँ बताती है तो वह कहती है - "मैं पहले ही बेहद डरी हुई थी सो एक दुकान के तख्ते के नीचे छुप गई। वो लोग जोर जोर से बातें करते आ रहे थे। हालांकि नशे की वजह से उनके शब्द फिसल रहे थे, फिर भी कुछ कुछ समझ में आया कि वे लोग पेशेवर गुण्डे थे और एक राजनीतिक दलके किराये के टट्टू। आज के दंगे का सारा दोष दूसरे दल पर पडे, इस काम पर उन्हें तैनात किया गया था। जाहिर है, वे खुश थे, क्योंकि उनका काम ठीक-ठाक हो गया था। तभी दो नौजवान लडके कहीं से भागते हुए आये और उन पर एक बम फेंक कर गायब हो गए।"[134] यहाँ हम देखते हैं कि युवकों को राजनीतिक दल के लोग विरोधी पक्ष पर बम फेंकने केलिए नियुक्त करते हैं। शराब की लत में युवक बम फेंकता है और भाडे का टट्टू बन जाता है। प्रगति के नाम पर जो संघर्ष किया जाता है वह अपने दुश्मनों को नाश करने की ओर दुष्ट नेता मोड रहा है। "रक्त कमल" में भी इस प्रकार की घटना मिलती है। चुनाव में उम्मीदवार है इन्द्रजीत। "सोनापुर" गाँव वाले इन्द्रजीत के पक्ष में नहीं थे। चुनाव के बाद नेता के लोगों ने उस गाँव पर डाका

---

133. लडाई सक्सेना, पृ.25

134. करफ्यू लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.79-80

डलवाया । इस के बारे में महावीर से डाक्टर कहता है - "इन्द्रजीत के चुनाव में सोनापुर गाँव ने उनका विरोधकिया, फलत: उसी सोनापुर गाँव में प्रतिशोध के रूप में डाका डलवाया । हिंसा के बल से आप के गुरुराम घायल बिल्लू सिंह को मेरे क्लिनिक में दवा कराने लाते हैं । राजनीति और डाकू गुण्डा शक्ति का ऐसा मेल !"[135] आज भारत में इस प्रकार के प्रतिशोध के कई रूप हम देख सकते हैं जो प्रगति को अवरुद्ध करते हैं । देश की बुनियादी समस्याओं के निवारण केलिए जनता एकत्रित होकर संघर्ष करते तो फल प्राप्ति मिलती अवश्य, लेकिन संघर्ष पथभ्रष्ट हो गया है । लक्ष्मीनारायण लाल ने "यक्ष प्रश्न" में हमारी मूल समस्या का संकेत प्रतिपादित किया है । यक्ष प्रश्न का "देव" कहता है

"बुनियादी समस्या इस मुल्क की राजनीतिक और आर्थिक है ।"[136] लेकिन असली समस्याओं से लोग कतराते हैं जिस से भावी पीढी गुमराह होती है । जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, भाषावाद आदि हमारे प्रतिबन्धक हैं और यह देश के माथे पर कलंक का टीका ही होगा । इस विषय पर "संस्कार ध्वज की भूमिका में नाटक कार ने लिखा है - "जातिवाद और सम्प्रदायवाद ने देश को खोखला ही किया है । नाटक में यह निरूपित करने का प्रयत्न हुआ है कि जाति-पाँत, भेद-भाव, इन को हमेशा हमारें शोषकों प्रतारकों ने बढावा दिया है और हमारे शोषण किया । वास्तव में जन-जन का मूल एक है, किन्तु भय, शोषण और अन्ध विश्वास ने हमारे जीवन को भीतर और बाहर दोनों ओर से विषाक्त कर दिया है और हमें अज्ञान के अन्धकार में भटकने केलिए छोड दिया है । "संस्कार ध्वज" ज्ञान का प्रतीक है । ज्ञान के सहारे ही भारत की तस्वीर बदली जा सकती है और अज्ञान के विषाक्त अंधेरे से मुक्ति पायी जा सकती है ।"[137]

---

135. रक्तकमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.82
136. यक्ष प्रश्न लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.50
137. संस्कार ध्वज लक्ष्मीनारायणलाल, §भूमिका से§

स्वतंत्र भारत के विविध क्षेत्रों में निरंकुश घूमनेवाले राक्षसों की मुलाकात "चतुर्भुज राक्षस" में होती है । "सुरजा" "मैना" आदि कथापात्र समाज के राक्षसों से मुलाकात करते हैं । रात की एकान्तता में एक स्त्री की अमानत लूटने केलिए आये अपरिचित, मिल की हड़ताल के समय मज़दूरों को धोखा देकर, मिल मालिक के साथ बैठ कर शराब पीनेवाला मजदूरों का नेता, ये एक एक प्रकार के राक्षस हैं । पुलिस, चौकीदार, पूंजीपति, राजनीति के भ्रष्ट नेता ये सब राक्षसों की श्रेणी में आये हुए हैं । इन से देश की रक्षा परमावश्यक है । नरनारायण राय ने देश को बचाने के उपदेश व्यक्त करते हुए बताया है - यह तभी समाप्त हो सकती है जब समाज की संपूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन लाया जाय और समाज के हर व्यक्ति को इतना जागरूक बनाया जाय कि वह हर मोर्चे पर अन्याय और शोषण का विरोध करे । गाँव में सही ढंग की शिक्षा व्यवस्था - जो हर व्यक्ति को अपने आपको और अपने परिवेश को समझने में सहायता दे - इस की पहली शर्त होगी । इस के बाद जागरूक युवकों के दल गाँव का नवनिर्माण करने में प्रवृत्त हों औरराक्षसों को चुन चुन कर गाँव से दूर किया जाय । वितरण की व्यवस्था इतनी समान हो कि अभाव और अभाव से होनेवाला क्षोभ खत्म हो । मानवता का आदर करना हर कोई सीखे । ऐसा बहुत कुछ अभी किया जाना शेष है, जिस की ओर नाटककार ने संकेत दिये हैं । इसी क्रम में स्वस्थ राजनीति की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है । वर्तमान राजनीति भ्रष्ट हो चुकी है, क्योंकि राजनीति के द्वारा जिस समाज के विकास की बात की जाती है, राजनीति ने उसी समाज की इकाइयों की हैसियत एक वोटर की बना रखी है ।...... ।[138]

138· नाटककार लक्ष्मीनारायणलाल की नाट्य साधना - नरनारायण राय, पृ·106

नाटककार का कर्तव्य, राजनीतिज्ञों की चरित्र हीनता दिखाने के साथ साथ उन्हें कर्मनिरत बनाने की प्रेरणा देना भी है। सभी नेता या शासक एक समान दुर्वृत्त नहीं हैं। उनमें अच्छे चरित्रवान भी हैं। लेकिन अपने चारों ओर कर्मशून्य, खल नेताओं को देख कर स्वयं सच्चरित्र की भी, विवेक शून्य बन जाने की संभावना है। ऐसे नेताओं को कर्मनिरत होने का आह्वान "पहला राजा" में मिलता है। इस अन्योक्ति परक नाटक की दुनिया राजनीतिज्ञों के खोखलेपन की दुनिया है जहाँ किसी भी जनताभिमुखी नेता के हर कल्याणकारी प्रयास को असफल बनाने की होड में लगे हुए होशियार किस्म के लोग मौजूद है। राजा पृथु धरती को डाकुओं से आज़ाद कर देता है। लेकिन देश में सूख और दुभिक्ष पड जाता है। भूमि मरुभूमि हो जाती है। इस समय शासक पृथु को उर्वी से यह उपदेश मिलता है "धरती माँ ने कहा होगा, मैं गौ हूँ, लेकिन मुझे दुहनेवाला कौन है? और मेरे योग्य बछडा और दोहन पात्र जिस में मेरे दूध की धाराएँ एकत्र हों? तुम राजा हो, प्रजा के नेता हो, तुम्हारा पुरुषार्थ सिर्फ युद्ध और संघर्ष में ही तो नहीं है। मैं वसुन्धरा हूँ, मुझे दुहकर अभीष्ट वस्तुओं को निकालने में भी तुम्हारा पुरुषार्थ है और तुम्हारी प्रजा का धर्म है।"[139] यहाँ चुनाव रूपी लडाई लडकर शासक बननेवाले नेताओं के कर्तव्यों की ओर संकेत किया है कि भूमि से उपज निकालने केलिए जनता के सहयोग से परिश्रम कराओ।

देश के भविष्य को सुनहला बनाने केलिए देश के सभी नागरिकों को अपनी भूमिका निभानी है। शासकों के बदल जाने से देश का नक्शा नहीं बदलता। देश की जनता के आपसी सहयोग व कठिन साधना,

---

139. पहला राजा जगदीश चन्द्र माथुर, पृ.83, (छात्र संस्करण)

समर्पण-भाव आदियों से ही देश का कायापलट हो सकता है । कर्तव्यच्युत व कामचोर व्यक्ति देश का सब से बड़ा अभिशाप है । "आजादी के बाद" में विनोद रस्तोगी ने आदर्श कर्मचारियों का उदाहरण एक अध्यापक के द्वारा प्रस्तुत किया है जो वेतन महीनों से न मिलने पर भी अपने छात्रों को सिखाते हैं । "महीनों बीत जाते हैं, पर वेतन का नाम नहीं आता । हम भूखे रहकर अपना कार्य करते हैं । हम श्रमिक हैं, देश के भावी नागरिकों के निर्माता हैं, हमसे यह आशा की जाती है कि हम एक नये युग का सृजन करेंगे, विद्यार्थियों में नूतन आदर्शों की स्थापना करेंगे ।"[140]

राजनैतिक क्षेत्र पर दीखते उपर्युक्त मूल्य विघटन पर प्रकाश डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नेता और जनता दोनों इस विघटन के उत्तरदायी हैं । जनता को बहकाकर सत्ता में आने की यंत्रणाओं में नेता वर्ग तुले हुए हैं । आम जनता भी सुविधा भोगने केलिए किसी का भी पैर पकड़ने को तैयार हैं । अपने साथियों को छलने में आम जनता हिचकती नहीं है । पिछले 43 वर्ष के इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि खल-नेताओं के साथ खल-जनता की मैत्री निर्बाध चल रही है । सांस्कृतिक-रिक्तता ने भारतीय समाज को बिल्कुल खोखला कर डाला है । नैतिक मूल्यों का पतन जनता और नेता दोनों में है । डॉ.हेतु भरद्वाज का कथन सच निकलता है - " आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से टूटे समाज को फिर भी सरलता से उबारा जा सकता है, किन्तु जो समाज सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यहीन हो जाता है उसका उपचार बहुत सरलता से नहीं होता क्योंकि मूल्यों के अभाव में समाज सहज रूप से ही अमानवीय लक्ष्यों की ओर गतिवान होने लगता है ।"[141] चरित्रहीन राजनीतिज्ञ,

---

140. आज़ादी के बाद - विनोदरस्तोगी, पृ.71, (प्र.सं.1953)
141. आज के परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य - डॉ.हेतुभरद्वाज, परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य, पृ.14,प्र.सं.1984

गान्धीजी के नाम पर एक और जनता को कुमार्ग पर भटकाते हैं, प्रजातंत्र के खोखलापन मे जनता वंचित होती है, आम जनता दिशाहीन है । इस के विरुद्ध एक जन-मोर्चे का उदय अनिवार्य है । एक जनजागरण को भड़काने का काम साहित्यकारों का है । हिन्दी के कुछ एक नाटककारों ने इस दिशा में अपनी जिम्मेदारी निभायी है, इन का उदाहरण ऊपर दिये गये हैं ।

अध्याय - चार

आर्थिक धरातल पर मूल्य विघटन

आर्थिक धरातल पर मूल्य विघटन

अर्थ या धन अपने आप में कुछ दोष नहीं रखता है । जब इस का उचित उपयोग होता है तब समाज केलिए हितकारी बनता है । धन-दौलत की अधिकता एक नेक ज़िन्दगी केलिए विघ्न है । मनुष्य के मालिक के रूप में धन को प्रतिष्ठित करने पर वह उसे बिगाड़ेगा । "अर्थ" के बारे में ऐसी एक धारणा है - "अर्थ खाद के समान है, जब तक मनुष्य उसे चारों ओर वितरित नहीं करता, तब तक किसी को उससे कोई फायदा नहीं मिलता है ।"[1] अस्वतंत्र भारत की आम जनता अर्थाभाव से, अशिक्षा से पीड़ित थीं । उन्हें स्वतंत्र करके उपर उठाने के महान उद्देश्य से गान्धीजी ने परिश्रम किया था । स्वतंत्रता-आन्दोलन चलाने के पहले, राष्ट्रपिता गान्धीजी के अर्थ सम्बन्धी विचारों पर दृष्टिपात करते हुए रिचार्ड डब्ल्यू टैलर ने इस प्रकार लिखा है -

---

1. "Money is like manure. It does not do anybody any good until you spread it around."
The Joy of working : Denis Waitley and Reni L.Witt, P.264

"सब कुछ परमेश्वर का है और परमेश्वर से हुआ है । इसलिए परमेश्वर ने जो कुछ बनाये हैं सब सभी केलिए हैं, किसी व्यक्ति-विशेष केलिए नहीं है । अपने हिस्से से ज्यादा यदि किसी के पास है तो वह परमेश्वर के लोगों केलिए उस का रखवार ही है[2] ।" "संपत्ति लेते हुए कोई इस संसार में नहीं आया था । परमेश्वर की सृष्टि से, जो कोई जबर्दस्त कुछ समय तक धन अपने पास रखता है, मृत्यु के समय ले जाता भी नहीं है । मनुष्य थोडे समय केलिए धन के संरक्षक मात्र है ।" गान्धीजी के वचनों का उद्दरण करते हुए यशपाल जैन ने उपर्युक्त कथन की पुष्टि देते हुए बताया है - "हम सब एक तरह से चोर हैं । अगर मैं कोई ऐसी चीज़ लेता और रखता हूं, जिस की मुझे अपने किसी तात्कालिक उपयोग केलिए ज़रूरत नहीं है, तो मैं उसकी, किसी दूसरे से चोरी ही करता हूं । यह प्रकृति का एक निरपवाद बुनियादी नियम है कि वह रोज़ केवल उतना ही पैदा करती है जितना हमें चाहिए । और यदि हर एक आदमी जितना उसे चाहिए, उतना ही ले, ज्यादा न ले, तो दुनिया में गरीबी न रहे, और कोई आदमी भूखा न मरे[3] ।"

"रुपए का लोभ सब प्रकार की बुराइयों की जड है[4] ।"

धन में कोई बुराई नहीं है । धन कमाने केलिए, लोभ के साथ उसे कमाने शुरू करने पर उसमें बुराई निहित रहती है । धन कमाने की यात्रा में भटकते रहने पर अन्त में धन ऐसे लोगों का मालिक बन जाएगा, और लालची मनुष्य रुपए का दास बन जाएगा । अस्वतन्त्र भारत में

---

2. Everything belonged to God and was for God. Therefore, it was for His people as a whole, not for a particular individual. When an individual had more than his proportional portion he becomes a trustee of that portion for God's people."
   Society and Religion : Richard W.Taylor,p.38

3. साबरमती का सन्त यशपाल जैन, पृ.101,102

4. The love of money is the root of all evils".
   The Bible, I Timothy 6:10, p.197
   (Revised standard version 1952)

आर्थिक असमानता कायम थी । गान्धीजी ने इस हालत का वर्णन यों दिया है - "भारत में लाखों लोग ऐसे हैं जिन्हें दिन में केवल एक ही बार खाकर संतोष कर लेना पड़ता है और उनके उस भोजन में भी सूखी रोटी और चुटकी-भर नमक के सिवा और कुछ नहीं होता । हमारे पास जो कुछ भी है उस पर हमें और आप को तब तक कोई अधिकार नहीं है, जब तक इन लोगों के पास पहनने केलिए कपड़े और खाने केलिए अन्न नहीं हो जाता । हम में और आप में ज्यादा समझ होने की आशा की जाती है । अत: हमें अपनी ज़रूरतों का नियमन करना चाहिए और स्वेच्छापूर्वक अमुक अभाव भी सहना चाहिए, जिस से कि उन गरीबों का पालन-पोषण हो सके, उन्हें कपड़ा और अन्न मिल सके[5] ।"

"विश्व की संपत्ति समूचे मानव केलिए प्रकृति की देन है ।" उसे एक छोटे जन समूह के लोग कब्जा कर रखते हैं जिस से ही आर्थिक विषमता पैदा हुई है । अर्थ का यह अनुचित उपयोग एक सार्वलौकिक समस्या बन गई है । "संसार के तीस प्रतिशत जनसंख्या के लोग विश्व-संपत्ति के अस्सी प्रतिशत का उपयोग करते हैं और अमरिका जैसे अमीर देश जिस की जनसंख्या विश्व जनसंख्या के छ: प्रतिशत मात्र है - विश्व संपत्ति के चालीस प्रतिशत का इस्तेमाल करते हैं, इस में नैतिक आधार क्या है[6] ?" आर्थिक धरातल पर भारत की हालत अधिक बिगड़ी हुई है । मुट्ठी भर धनवानों के हाथ में भारत की संपत्ति रहती है, करोड़ों लोग भूख-प्यास से तड़पते हैं । लेकिन ऐशो आराम में पलनेवाले अल्प संख्यक भाग्यवान यहाँ रहते हैं । उन्हें चाहिए कि गरीबों केलिए भी

---

5. Speech and writing of Mahatma Gandhi, p.384

6. Society and Religion Richard W. Taylor, p.39

कुछ दें । "यहाँ सभी की आवश्यकता केलिए काफी है, पर सब की लालच पूर्ति केलिए नहीं है[7] ।"

भारत संपन्न देश है । विश्व भर के सभी विभव धान्य, पेड, जंगल, खनिज, जल-संपत्ति - यहाँ मौजूद है । लेकिन यह सारा धन कहाँ चला जाता है ? इस विषय पर पूर्व प्रधान मंत्री जवहरलाल नेहरू का कथन इस प्रकार है - "बहुत अधिक चीज़ों का उत्पादन करने पर भी ये सभी माल कहाँ गायब हो जाते हैं, इस बात पर अफसोस होता है कि गरीब फिर भी गरीब बनता है । कोई भी काम किये बिना बैठने वाले देश के ठेकेदारों, मैनेजरों के हाथ में आम्दनी का सिंहभाग चला जाता है । वे लोग काम करने का अभिनय भी नहीं करते, लेकिन समाज में वे प्रबल हो गये हैं । इस प्रकार की हमारी सिर फिरी अर्थ व्यवस्था है, जहाँ किसान खेतों में काम करते हैं और मज़दूर कारखानों में काम करते हैं, दुनिया के लोगों को खिलाने केलिए काम करनेवाले वे अधिक गरीब होते जा रहे हैं[8] ।"

---

7. "There is enough for every one's need, but not for every ones greed."
   Society and Religion p.39

8. "Where do the riches go to? It is a strange thing that inspite of more and more wealth being produced, the poor have remained poor. They have made some little progress in certain countries, but it is very little compared to the new wealth produced. We can easily see, however, to whom this wealth largely goes. It goes to those who, usually being the managers or the organisers,see to it that they get the lion's share of every thing good. And strange still, classes have grown up in society of people who do not even pretend to do any work, and yet who take this lion's share of the work of others ! And would you believe it? the classes are honoured, and some foolish people imagine that it is degrading to have work for one's living ! ---- such is the topsy-turvy condition of our world. It is surprising that the passent in his field and the worker in his factory are poor,although they produce food and wealth of the world."
   Wit and Wisdom De Nehru : N.B. Sen, p.603

भारत के संविधान में अर्थ सम्बन्धी वितरण-क्रम के बारे में ऐसा परामर्श मिलता है - "राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिस से धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण केलिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो।"[9] भारत के सभी लोगों केलिए समान सुविधायें प्रदान करने का निश्चय स्वतंत्र भारत ने किया है। स्त्री-पुरुष, बालक, विद्यार्थी, उच्च वर्ग, निम्नवर्ग, अनुसूचित-जाति, दुर्बल-विभाग, सवर्ण, अवर्ण आदि भेद के बिना सभी को समान सुविधायें हमारे गणतंत्र संविधान में हैं। स्वतंत्र-भारत का संकल्प करते हुए गान्धीजी ने अपना विचार, स्वतंत्रता के पहले ही व्यक्त किया था "पूर्णस्वराज्य कहने में आशय यह है कि वह जितना किसी राजा केलिए होगा उतना ही किसान केलिए, जितना किसी धनवान जमींदार केलिए होगा उतना ही भूमिहीन खेतिहर केलिए, जितना हिन्दुओं केलिए होगा उतना ही मुसलमानों केलिए, जितना जैन, यहूदी और सिख लोगों केलिए होगा, उतना ही पारसियों और ईसाइयों केलिए। उस में जाति-पाँति, धर्म अथवा दरजे के भेद भाव केलिए कोई स्थान नहीं होगा।"[10]

हमारे देश की वितरण-शृंखला में आमूल परिवर्तन करने पर आज की अर्थ-विषमता समाप्त होगी। बहता पानी सड़ता नहीं है। वैसे ही एक और ढेर पड़ने से, कोई भी चीज़ अनर्थ बनेगी। भारत के सम्बन्ध में, देश के धन का विभाजन नये सिरे से करने पर उसमें एक चाल आएगी, परिश्रमी के हाथ धन आएगा। वर्तमान अर्थ-असमानता का

---

9. The state shall in particular direct it's policy towards securing that the operation of the economic system does not result in the concentration of wealth and means of production to the common detriment." The Constitution of India Part IV, 39c, p.13,1988 Edn.

10. साबरमती सन्त - यशपाल जैन, पृ.88-89

व्यक्त चित्रण डॉ॰मुन्नीलाल विश्वकर्मा ने इस प्रकार दिया है - "नवीनतम सरकारी आंकड़ों के अनुसार देश की कुल संपत्ति का लगभग 33 प्रतिशत भाग सबसे ऊपर के 5 प्रतिशत परिवारों के हाथ में केंद्रित है, इस में से आधी संपत्ति तो सिर्फ एक प्रतिशत परिवारों के पास है । निम्नतम 5 प्रतिशत परिवारों के हिस्से में देश की संपत्ति का 0.1 प्रतिशत भाग ही आता है । अत: इन दोनों 5 प्रतिशत परिवारों की संपत्ति में असमानता का अनुपात 1:3300 तथा नीचे के एक प्रतिशत एवं ऊपर के एक प्रतिशत परिवारों की संपत्ति में असमानता का अनुपात 1:2000 होगा । देश में भूमि वितरण की असमानताएं काफी अधिक हैं । सरकारी आंकड़ों के अनुसार बिहार में आज भी 213 ऐसे भूमिपति हैं जिन के पास 200 एकड़ से अधिक जमीन हैं । इन में से 43 भूमिपतियों के पास 500 एकड़ से अधिक और 17 भूमिपतियों के पास तो एक हज़ार एकड़ से भी अधिक ज़मीन हैं । एक भूमिपति के नाम तो अब भी सरकारी रिकार्ड में दस हज़ार एकड़ जमीन है[11] ।"

हमारे संविधान में प्रत्येक नागरिक केलिए सामाजिक न्याय दिलाने की अवधारणा है - "राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने केलिए कि आर्थिक या किसी अन्य नियोग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से नि:शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा[12] ।"

---

11. सामाजिक न्याय की प्राप्ति - मंजिल अभी दूर डॉ॰मुन्नीलाल विश्व कर्मा - कुरुक्षेत्र अक्टूबर 1990, पृ॰18
12. Constitution of India, Part 4, 39A, p.13

लेकिन चारों ओर की हालत यह व्यक्त करती है कि आर्थिक न्याय से बहुसंख्यक आम लोग वंचित हैं । योगेन्द्र प्रताप सिंह ने इस विषय की टिप्पणी देते हुए कहा है - "वर्तमान समाज में सामाजिक न्याय का सब से बाधक तत्व विषमता है और वह आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक समस्त सन्दर्भों को प्रभावित किये हुए हैं । आर्थिक दृष्टि से गरीबी तथा समृद्धि के बीच एक गहरी खाई या अन्तराल वर्तमान है, यही अन्तराल हमें शिक्षित और अशिक्षित उच्च शिक्षित एवं अल्प शिक्षित के बीच दिखाई पड़ता है । जैसे गरीबी की रेखा के नीचे इस समय भारत का चालीस प्रतिशत नागरिक जीवन-यापन कर रहा है ठीक उसी प्रकार अशिक्षित की रेखा के नीचे भारत के करोडों नागरिक अभी भी ज्ञान के प्रकाश के अभाव में युग और व्यवस्था के बीच अपनी नागरिकता की सही पहचान नहीं कर पा रहे हैं ।"[13] यहाँ की अनिवार्यता ढेर पडी संपत्ति को, सुख सुविधाओं को मनुष्य-मनुष्य के बीच वितरण है । इस केलिए भारत के नागरिकों को, चाहे गरीब हो, चाहे अमीर हो, समान रूप से मानने की मनुष्यत्व-भावना पैदा करनी है । यह काम साहित्यकारों का है ।

ऊपर हम ने देख लिया कि हमारे संविधान ने भारत के सभी नागरों केलिए आर्थिक समानता एवं अवसर दिये हैं । गान्धीजी के स्वप्न के भारत में भी राजा, किसान, जाति, धर्म आदि भेद भाव की कल्पना नहीं है । लेकिन स्वतंत्रता-प्राप्ति के 43 वर्ष की लम्बी अवधि के बाद भी यहाँ की औसत जनता की बुनियादी ज़रूरतें - भरपेट भोजन, रहने केलिए कुटिया, नंगापन छिपाने का चीर - की पूर्ति नहीं हुई हैं । ये सब आज भी उनकी पहुँच के परे हैं । इन के कारणों पर

---

13. पत्राचार पठ्यक्रम योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ.3, प्र.सं.1985

प्रकाश डालने से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ की समस्यायें अत्यधिक जटिल हो गई हैं। अर्थाभाव की समस्या इस देश की हड्डी तोड रही है। आम जनता भेड-बकरियों के समान जी रही है। अमीर वासना-विलास और आडम्बर में लत हैं। संपन्न वर्गों का विलासमय जीवन देखकर सरकारी कर्मचारी उन्हीं का अनुकरण करने केलिए रिश्वत देते हैं। व्यापारी वर्ग चीज़ों में मिलावट एवं काला बाज़ारी करके धन कमाते हैं। करों की चोरी, महंगाई, चोरी, डकैती, भुखमरी, भिक्षाटन चारित्रिक पतन, ऋणग्रस्तता, भोग-विलास ये सब एक साथ मिलकर वर्तमान समाज विक्षिप्त हो गया है। स्वातंत्र्योत्तर नाटक कारों ने देश की बिगडी हुई आर्थिक स्थिति और उस से उत्पन्न मूल्य विघटन को पूरी सच्चाई के साथ शब्दबद्ध किया है।

अभाव ग्रस्तता से आहत आम जनता

एक विश्व-व्यापी समस्या बन गई है आज गरीबी। भारत की हालत और दयनीय है। भारत की जनता कई अर्थ श्रेणियों में विभाजित की गई हैं - उच्च वर्ग, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग। उच्च वर्ग ऐसे है जो पेट भर खाया हुआ है सो ऊँघ जाते हैं। मध्यवर्ग वे होते हैं जिन्हें आधा पेट खाने को मिलते हैं, अतृप्त होते हैं, निम्न वर्ग अक्सर भूखे होते हैं, अधमरे हैं। मध्यवर्ग और निम्न वर्ग समाज में संख्या में अधिक है, उन्हें अपने वश में करने की होड में है अधिकारी और राजनैतिक वर्ग।

देश की गरीबी और अभाव ग्रस्तता से उत्पन्न विसंगतियों पर लक्ष्मीकान्त वर्मा ने तीखा व्यंग्य किया है अपने नाटक "रोशनी एक नदी" में। नाटक की "कुकुम" की ज़िन्दगी अभाव ग्रस्तता से घिरी हुई है।

विपन्नावस्था की चरम सीमा में पहुँचे उस के पारिवारिक जीवन में प्रतीक्षा की एक किरण भी नहीं दिखायी पड़ती है । प्रतिदिन जुलूस में भाग लेने के बाद रात को खाली हाथ लौटने वाला पति और भूख सहते-सहते खाली पेट सोनेवाले बच्चों के बीच कुकुम जिस विवशता को महसूस करती है, वह इन शब्दों में उभर आती है - "मैं रोज़ घर में बच्चों को भूखा सुला देती हूँ, उन्हें समझा देती हूँ कि तेरा बाप इंकलाब करने गया है, लेकिन रोज़ रात को जब तुम लौटते हो तब तुम्हारे हाथ में इंकलाब नहीं, सिर्फ एक टूटा हुआ काला डिब्बा होता है, जिस में कुछ नहीं होता ।"[14] अपने घर की अभाव ग्रस्तता से विवश होकर ही वह अपने बच्चों को भी जुलूस में भाग लेने केलिए ले जाती है । हमारे देश में गरीबी से अभिशाप्त हज़ारों कुंकुम हैं, जिन की अभाव- ग्रस्तता का खूब लाभ उठानेवाले अर्थ लोलुप ठेकेदार हैं जो गरीबी हटाने की आड में अपनी तिजोरी भरते हैं । ऐसे व्यक्तियों का परिचय भी लक्ष्मीकान्त वर्मा ने अपने नाटक में दिया है । नाटक की नेतानी जिस ने भारत माता का नारा लगवाने का ठेका ले रखा है, वह गंदी बस्तियों में जाकर बच्चों को जुलूस में ले जाने केलिए तथा हवाई अड्डे पर झण्डे लेकर खड़े रहने केलिए उन्हें किराये में लेती है । ये नेता या नेतानी इतने चालाक हैं कि दो या तीन कौड़ियों की जाल में कुंकुम जैसी बेचारी नारियों को फँसा देते हैं । कुंकुम और उस के पति गरीबी की विवशता से बुरी तरह आक्रांत है, जिन्हें दस किलो गेहूँ तक इकट्ठा खरीदने की नौबत भी नहीं । औरत याद करती है - "आज से तीन साल पहले एक दिन जब मुझे दस किलो गेहूँ खरीदने का सौभाग्य मिला था और मेरे पास गेहूँ लाने का कोई कपड़ा नहीं था, तब मैं ने अपने पति का पान्ट काटकर सिला था, इस दुर्घटना के आज तीन साल हो गये हैं ।"[15]

---

14. रोशनी एक नदी है लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.59, प्र.सं.1974

15. वही, पृ.90

जिन्दगी काटने केलिए अभाव-ग्रस्त व्यक्ति को अनुचित मार्ग अपनाना पड़ता है । गरीबी से तंग आकर वह चोरी करने केलिए बाध्य हो जाता है । "क" नामक पात्र इसी सामाजिक परिस्थिति का शिकार है । "क" की पत्नी बीमार थी । अस्पताल में उस की दवा हो रही थी । डाक्टर ने कहा - दूध पीना है । पत्नी ने कहा कि दूध नहीं पी सकती क्योंकि पैसे नहीं है । डाक्टर ने उसे अस्पताल से दूध दिलवाने की सिफारिश कर दी, दूध मिलने लगा, अस्पताल मे दवा और दूध मिलने पर भी वह मर गई । क्योंकि अस्पताल से मिलनेवाले दूध घर के पास के चोकलेट बनाने वाले को बेचता था । उससे इतना पैसा मिलता था कि एक हफ्ते परिवार का खर्च चल सकता था । दूध बेचकर खाना खरीदने केलिए "क" मजबूर हो जाता है क्यों कि उस के शब्दों में दूध से ज्यादा ज़रूरी खाना था[16] ।"

आर्थिक विषमता के कारण पौष्टिक भोजन की कमी आना, बीमार होना, भुखमरी होना आदि भारत में आज भी चालू है । "सामाजिक न्याय की प्राप्ति - मंजिल अभी दूर है" शीर्षक निबन्ध में "गरीबी रेखा" के नीचे दबती जनता के बारे में स्पष्ट उल्लेख किया गया है - "योजना आयोग के अनुसार यदि ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन पोषक तत्व नहीं मिलता है तो वह व्यक्ति गरीबी-रेखा के नीचे माना जाएगा । यदि पौष्टिक आहार को रुपयों में परिभाषित किया जाता है तो ग्रामीण क्षेत्रों केलिए 107 रुपए तथा शहरी क्षेत्रों हेतु 122 रुपए प्रति व्यक्ति प्रतिमाह आता है । इस तरह जिन व्यक्तियों का

---

16. रोशनी एक नदी लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.92

उपभोग इस सीमा से कम है उन्हें गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।[17] ऐसे निम्न आयवाले लोगों केलिए सरकार ने रेषन-वितरण करने का इन्तजाम किया है - "सरकारी वितरण-श्रृंखला रेषन दुकान की ओर से चलाते वितरण क्रम का उद्देश्य आबादी के दुर्बल विभाग के लोगों की भलाई की संरक्षा करना है, ज़रूरी भोजन वस्तुओं - विशेष कर खाद्यान्न की चीज़ें कम दाम पर उन तक पहुँचाना है।"[18]

लक्ष्मीनारायण लाल ने भारत की असली समस्या दर्शाते हुए यह स्पष्ट किया है कि यहाँ की समस्या रोटी की है। "रक्त कमल" में विदेश से शिक्षा प्राप्त कर भारत लौटे कमल को आदर्श युवक के रूप में चित्रित किया है। भारत की हालत का चित्रण कमल ने यों व्यक्त किया है - "जिस देश के सिर्फ पाइन्ट फोर प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहनेवाले हों, शेष नंगी भूखे हों, जहाँ सिर्फ ग्यारह प्रतिशत आदमी पढे-लिखे हों, शेष गंवार, अन्ध विश्वासी और अचेतन हो - यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक नहीं है तो क्या है?"[19] अपने मतों की पुष्टि करते हुए कमल फिर कहते हैं - "अपनी गरीबी में बिलकुल सोया हुआ है हमारा पूरा समाज। इस देश की माँग रोटी है, जिस केलिए पहले देश के बिखरे हुए मन की एकता आवश्यक है।"[20]

---

17. सामाजिक न्याय की प्राप्ति डॉ॰मुन्नीलाल विश्व कर्मा
कुरुक्षेत्र, पृ॰18, अक्टूबर 1990

18. "The public distribution system, functioning through a wide net work of ration/fair price shops, aims primarily at protecting the interest of the vulnerable sections of the population by ensuring the availability of essential commodities, especially food grains at reasonable prices."
Economic Review, 1989. p.17, Published by State Planning Board, Trivandrum, Govt. of Kerala

19. रक्त कमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ॰30

20. वही, पृ॰34

शंकर शेष ने आर्थिक विषमता के बीच में जकडे हुए ट्रकड्रैवर "फन्दी" की विवशता व्यक्त की है । कैदी "फन्दी" के कान्सर रोग से पीडित पिता का क्रन्दन और घर की अर्थहीनता का चित्रण हृदय भेदक है - "भगवान कसम, जिन्दगी बेरहम हो तो हो, मौत भी बेरहम हो गई थी

और उस दिन शाम को फन्दी लौट रहा था । रास्ते में "खान" ने उस की छाती पर डंडा तानकर उस की बेइज्जती की । घर आते ही औरत ने चिल्ला कर एलान किया कि 'घर में चावल नहीं है, उसके पुत्तू को पडोस के लडकों ने मारा उस की नाक से खून बह रहा था । बाप ने कदम रखते ही पूछा - "बेटा आज इन्जेक्शन लगेगा ।" फन्दी ने "नहीं" । बस फन्दी का बाप उस के पैरों से लिपट कर रोने लगा । "बेटा, इंजक्शन दो या मौत ।" योर ओनर, फन्दी इन्जेक्शन नहीं दे सकता था, पर मौत तो दे ही सकता था । फन्दी का हाथ न जाने कैसे अपने बाप के गले की ओर बढ गया । उसकी अँगुलियाँ न जाने कैसे उसके गले को कसने लगी आती हुई मौत को देखकर भी फन्दी का बाप हँस रहा था, जैसे उसे मनचाही मुराद मिल रही हो[21] ।"

गरीबी से विवश हो, आत्महत्या करने की हालत तक पहुँची जनता वर्तमान भारत में है । मुख्यमंत्री, कृषिमंत्री, नेता लोग सब मिलकर "गरीबन पुरवा" ग्रामवासियों के सामने भाषण देने की घटना सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने "अब गरीबी हटाओ" में दिखायी है । उन ग्रामवासियों के सामने भाषण देने की घटना सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने "अब गरीबी हटाओ" में दिखायी है । उस ग्राम के लोगों में अधिकांश हरिजन है । इसलिए हरिजनों की प्रशंसा करते हुए मुख्य मंत्री ने भाषण शुरू किया । तब एक औरत लायी जाती है । उस औरत के बारे में

---

21. फन्दी - शंकर शेष, पृ.26, पराग प्रकाशन, दिल्ली {सं.1982}

ग्रामीणों में एक ने कहा - "यह औरत दो बच्चों के साथ कुए" में कूद रही थी, हम लोगन ने पकड लिया भूखी मर रही थी, कहीं काम नहीं मिलता इसे, न खेत में न सड्क पर ···· ।"[22] यहाँ शासक बदल बदल कर आते रहते हैं, पर गरीबी का अन्त नहीं होता है । राज शासन, का प्रजाशासन में परिवर्तित होने पर भी आम जनता गरीबी में ही कट रही है । नेताजी आकर नट से अपने अनुकूल नाटक खेलने कहता है तो नट का यह कथन कितना सच है - "राजतंत्र और लोक तंत्र दोनों को हम देख चुके । सब ने अपना मतलब साधा है । अब गरीबी हटाने का यही तरीका रह गया है, सब गरीब मिलकर अपनी गरीबी हटायें ।"[23] ऊपर हम ने देख लिया कि आम जनता आज भी गरीबी से पीड्ति है । उन की भूख मिटाने वाला नेता अभी तक प्रत्यक्ष नहीं हुए हैं ।

कलाकार की ज़िन्दगी में जो अभाव ग्रस्तता है वह उसकी सृजनात्मकता में बाधा उपस्थित करती है । एक निश्चित आमदनी के अभाव में घर के कामकाजों को संभालने में घरवालों की ज़रूरतों की पूर्ति करने में कलाकार अक्सर असमर्थ निकलता है । यह द्विधात्मक स्थिति कलाकार केलिए सब से बडी अभिशाप बन जाती है कि एक ओर गृहस्वामी के नाते अपने घरवालों के प्रति अपने दायित्व को निभाना है । दूसरी ओर एक कलाकार की हैसियत से अपनी कला के प्रति ईमान्दारी बरतनी है । भीष्म साहनी के "हानूश" को ऐसी संकटपूर्ण स्थिति से गुजरना पडा । हानूश अपनी पत्नी "कात्या" और बेटी "यान्का" केलिए दो जून रोटी का प्रबन्ध करने में भी असमर्थ निकलता है । दस साल से घर की अभाव-ग्रस्तता से कात्या दम घुट रही है । ठीक इलाज न दे सकने के कारण

22· अब गरीबी हटाओ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ·28, प्र·सं·1981

23· वही, पृ·62

उस का बेटा सर्दी में ठिठुर कर मर गया । अपने बच्चों के पालन पोषण केलिए कात्या अपने कपडे और गहने सब बेचती है । घर का चूल्हा एकाध ही जलता है । बेटी को पहनने केलिए चिथडा ही है । पडोसियों से लकडी की खपचियाँ माग माग कर आग जलाती है । दरिद्रता की तीव्रता के कारण कात्या वक्त के पहले बूढी हो जाती है । यह तो स्वाभाविक है कि घर का बोझ खुद ढोनेवाली औरत के मन में अहिस्ता अहिस्ता अपने मर्द के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और वह अपने पति की बेइज्जत करने से भी नहीं हिचकती - "उस में पतिवाली कोई बात हो तो मैं उस की इज्जत करूँ, जो आदमी अपने परिवार का पेट नहीं पाल सकता उसकी इज्जत कौन औरत करेगी ।"[24]

कोणार्क के निर्माण में लगे रहनेवाले शिल्पियों ने पत्थर के टुकडों पर रसिक-जोडों की सृष्टि की । लेकिन नई पीढी के प्रतिनिधि धर्मपद की आँखें उस ओर जाती नहीं है । नई पीढी के इस परिवर्तित दृष्टिकोण को जगदीश चन्द्र माथुर ने स्पष्ट किया है । परिश्रम करनेवाले देश के लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करता हुआ धर्मपद का कथन ऐसा है - "जब मैं इन मूर्तियों में बंधे रसिक जोडों को देखता हूँ, तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका को खेनेवाले मल्लाह की, दिन-दिन भर कुल्हाडी लेकर खटनेवाले लकडहारों की । इन के बिना जीवन अधूरा है आचार्य ।"[25]

---

24. हानूश भीष्मसाहनी, पृ.11

25. कोणार्क जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.34 (पंचम सं.1983)

लक्ष्मीनारायण लाल ने "अब्दुल्ला दीवाना" के द्वारा हमारे जीवन में आयी अर्थहीनता, कायरता और भावुकता को दर्शाया है । एक महारोग हमारे देश को ग्रसित है । वह है दिखाने केलिए आदर्शवाद, अध्यात्मवाद पर व्यवहार में अवसरवाद - यही है रोग की जड । "अब हम ने अपनी सारी समस्याओं की जड गरीबी को ही मान लिया है । पहले हमारी सब समस्याओं की जड गुलामी थी, ।"[26] अब्दुल्ला का कृतिकार स्पष्ट कर रहा है कि यहाँ कोई गरीबी हटाना नहीं चाहता था । किसी को भी, और विशेषकर राजनीतिज्ञों को, गरीबी की पर्वाह नहीं है । तत्काल स्वार्थ सिद्धि और अधिकार के अतिरिक्त किसी का कोई ध्येय नहीं है । भारत में गरीबी का समाधान अभीं तक नहीं हुआ है । होना असंभव भी है क्यों कि राजनैतिक नेता, पुलिस आदि छोटी पूँजी को बडी करने में लगे हुए हैं । "आम आदमी की आवाज़ मात्र वोट देना रह गई है, जिस में कोई शक्ति नहीं है, वह व्यक्ति से वोट होकर रह गया है, सत्ताधारियों के निर्णय को, न्याय के निष्पक्ष न होने पर वह कहीं ललकार भी नहीं सकता ।"[27]

वर्तमान अर्थ व्यवस्था दोषपूर्ण है । यहाँ अमीर और भी अमीर बनता है और गरीब और भी गरीब बनता जा रहा है । अमीर और गरीब में स्वर्ग-पाताल का अन्तर है । इस खाई का विश्लेषण "रक्त कमल" के कमल ने किया है । अमीर लोग गलत राहों पर चलने से ही और अमीर बनते दिखाई देते हैं । कमल ने यह मत साफ व्यक्त किया है - "मेरा दुःख-दर्द है इतिहास के उस अध्याय से, उस मोड से,

---

26. अब्दुल्ला दीवाना लक्ष्मीनारायण लाल, भूमिका, पृ.15,16
27. वही, पृ.18

जहाँ उसने मनुष्य को मनुष्य से बाँट दिया, कोई धनी से और अधिक धनी होता गया, कोई गरीब से अधिक गरीब हो गया .... ।"[28] धनवान और गरीब दो श्रेणियों में बँट गये हैं । धन की रक्षा करने केलिए, नंगी-भूखे आम आदमियों से अपने को दूर रखने केलिए अमीर लोगों को पहरूए या गुण्डें रखने पड़ते रहें । कमल ने यहाँ अपना विचार व्यक्त किया है - "भाई साहब, सोचिए हमारे समाज में यह गुण्डा, डाकू आये - कहाँ से ? यह धन की रक्षा के नाम पर हमारे समाज में दाखिल हुआ - पहरुआ, दरबान और तकाज़ेदार के रूप में ।"[29]

ज्ञानदेव अग्नि होत्री ने शुतुर मुर्ग में गरीबी से पीड़ित आम जनता का यथार्थ चित्रण किया है । शुतुर नगरी के राजा स्वर्ण निर्मित शुतुरमुर्ग की स्थापना केलिए रूपए खर्च कर रहे हैं । आम जनता भूख प्यास से तड़प रही है । स्वर्ण-प्रतिष्ठा के विरुद्ध जनता भोजन केलिए शोर मचाते हैं । जनता की माँगों को अनसुनी करके राजा "भूख-समस्या पर रिपोर्ट तैयार करा रहा है । लेकिन रिपोर्ट के पहले जनता को भोजन चाहिए । जनता की माँगें शासक के सामने पेश करनेवाला विरोधीलाल बोलता है - "हमें दो जून का भोजन चाहिए । फिर तन ढंकने को कपड़ा और रहने को छोटा-सा घर ।[30]

बेइनसाफी करने के बावजूद भी अमीर लोग सिक्कों की खनक से कानून के हाथ से बच निकलते हैं । आज देश की कानूनी संस्था भी एक मकड़ी के जाल के समान है । छोटा प्राणी ही उस में फंसता है, बड़ा प्राणी बच निकलता है । कानून की इस विसंगत नज़र की ओर संकेत करते हुए हरिशंकर परसाई ने उस पर करारी चोट की है -

---

28. रक्त कमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.109
29. वही, पृ.110
30. शुतुरमुर्ग ज्ञान देव अग्निहोत्री, पृ.45

जब गेहूं के निर्यात पर प्रतिबंध था, एक जून का आटा अंगोछी में बांधकर चलनेवाले किसान को सजा हो जाती थी, और उधर हजारों बोरे गेहूं रातों रात सीमा पार हो जाता था, काले बाज़ार में। न्याय को अन्धा कहा गया है, मैं समझता हूं न्याय अन्धा नहीं, काना है, एक ही तरफ देख पाता है।[31]"

मोहन राकेश ने "आधे अधूरे" की सावित्री के घर की दुर्दशा दिखायी है। सावित्री के पति बेकाम घर पर बैठता है। पुत्र भी नौकरी करने नहीं जाता है। सावित्री की आय से ही घर संभलता है। उस की छोटी लड़की स्कूल से लौटकर माता से शिकायत करती है - "स्कूल में भूख लगे, तो कोई पैसा नहीं होता पास में, और घर आने पर घंटा-घंटा दूध ही नहीं होता ...., और तुमने कहा था, क्लिप और मोज़े इस हफ्ते ज़रूर आ जाएंगी, आ गए हैं? कितनी शरम आती है मुझे फटे मोज़े पहन कर स्कूल जाते।[32]" सावित्री ऊपर से देखने पर सजधज कर चलती है। लेकिन युवावस्था तक पहुंची उस की लड़की को स्कूल में भोजन देने और अच्छे कपडे पहना कर भेजने में अर्थाभाव के कारण विवश हो गई है। अर्थाभाव से घर को बचाने केलिए निकली सावित्री अपने जीवन का नियंत्रण खोकर इधर उधर भटकती है। परिवार संचालन के उद्देश्य से वह नौकरी करती है। बडे बडे अफसरों को अपने घर बुलाकर दावत देती है। सावित्री स्वयं कहती है - "अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ सम्बन्ध बनाकर रखना चाहती हूं, तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों केलिए।[33]" सावित्री के पुत्र को नौकरी की सिफारिश कराने के उद्देश्य से सावित्री यह सब करती है तो अन्त में वह कहीं नहीं पहुंचती है।

---

31. आधुनिक निबन्धावली - सम्पादक विद्यानिवास मिश्र, पृ.103
32. आधे अधूरे = मोहन राकेश, पृ.35,37
33. वही, पृ.62

उपेन्द्रनाथ अश्क ने "अंधी गली" में अपने बाल-बच्चों के पालन पोषण में तंगी अनुभव करनेवाले पति-पत्नी का चित्रण किया है। मासिक वेतन पानेवाला कौल आय और व्यय में असमानता पाकर मुसीबत से दिन काट रहा है। बच्चे माता के पास जाकर कपडे की फटी हालत, जूते की सिलाई आदि कई शिकायतें करती हैं। उन्हें नये चप्पल और जूते की ज़रूरत है। श्रीमती कौल बच्चों के फटे जूते की शिकायत करती है तो कौल अपनी हालत यों व्यक्त करता है - "यह मेरा जूता देखती हो, छठी बार तला लगवाया है कल। और मुझे दस बार भी लगवाने पडे तो मैं शौक से लगवाऊँगा। नया जूता पच्चीस से कम में हाथ में नहीं आता। पच्चीस में भी वह आता है, जिस के छः महीने में फुसडे उड जाते हैं।"[34] भारत की स्वतंत्रता आज भी आम आदमियों तक नहीं पहुँची है। भोजन, कपडा आदि पाने में आज भी भारतीय असमर्थ है। आर्थिक विषमता से लोग विवश हैं। स्वतंत्रता-संग्राम-समय के हमारे नेताओं के वादे असफल हो गये हैं। "अंधी गली" का ही "श्याम" इस सत्य की ओर इशारा करता हुआ कहता है - "जब हम आजादी केलिए लड रहे थे तो हमारा नारा था कि आज़ादी किसान-मज़दूर की होगी, बडे बडे कारखाने सरकार ले लेगी, बोलियों के अनुसार सूबे बनाये जायेंगे, ज़मीन्दारियां नष्ट कर दी जाएगी। अब हर बात केलिए बहाने बनाये जा रहे हैं। कमीशन ज्यादा बैठते हैं, काम कम सिरे चढते हैं। स्कीमें ज्यादा बनती हैं, अमल में कम आती है। वही बहाने बनाये जा रहे हैं, तो अंग्रेज़ बनाते थे।"[35]

---

34. अन्धी गली उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.15 (प्र.सं.1956)

35. वही, पृ.39

रोज़ी रोटी की तलाश

अर्थाभाव पर विचार करते समय आबादी की वृद्धि पर सोचे बिना नहीं रह सकता । भारत प्रगति के पथ पर चल रही है अवश्य । पंचवर्षीय योजनाओं से भारत में कृषि के क्षेत्र में प्रगति हुई है । कारखानाओं की संख्या में बढती हुई है । चिकित्सा के क्षेत्र में काफी वृद्धि होने से मरण-संख्या कम हुई है । भारत-भूमि का विस्तार नहीं होता है, पर जन-संख्या की वृद्धि बहुत अधिक हुई है ।

"भारत में 1980 की जनसंख्या के अनुसार कुल आबादी के 14·08 प्रतिशत चार साल की उम्र से नीचे के शिशु हैं, 25·59 प्रतिशत 5 साल से चौदह साल तक के विद्यार्थी हैं, 54·85 प्रतिशत 15 से 59 वर्ष तक के हैं, 5·48 प्रतिशत 60 वर्ष से ऊपर वाले हैं।"[36] ऊपर की तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंद्रह से उनसठ तक के उम्रवाले उत्पादन क्षमता रखनेवाले हैं जो जन संख्या के आधे से ज्यादा हैं । बेकारी की समस्या इन्हीं को अधिक हैं । शिक्षित होते हुए भी, नौकरी न मिलने के कारण, निराशामय जीवन बिताने को बाध्य हुए बहुसंख्यक युवक युवतियों की समस्यायें विविध प्रकार से आर्थिक समस्या में प्रतिफलित हैं।

---

36. "In India, 14.08 per cent of the population is below 4 years, 25.59 per cent between 5-14 years, 54.85 per cent between 15.59 years and only 5.48 percent above 60 years, in 1980."

Social Change in India : B. Kuppuswamy, p.99
Edition 1989 - Vikas publishing house Pvt.Ltd.
New Delhi.

आबादी की वृद्धि से जो समस्या देश में है, उससे बडी समस्या है बेकारी की । विशाल भारत में, हमारे बेकार युवकों को काम करने को अवसर दिलाने पर पैदावार की वृद्धि होगी और हम विश्व के संपन्न देशों में बन सकते हैं । लेकिन यहाँ की हालत ऐसी नहीं है । "बेरोजगारी - एक ज्वलन्त समस्या" के बारे में गोपाल लाल का मत गरीबी और बेकारी पर प्रकाश डालते हैं - "आज रोज़ी रोटी की समस्या तथा उस का समाधान देश की सरकार के सामने भी एक बडी कठिन चुनौती है । बढती आबादी ने इस समस्या को और अधिक जटिल और कठिन बनाने में आग में घी का काम किया । दुनिया में सब से बडा प्रजातांत्रिक राष्ट्र होने का दंभ भरने वाले देश में आखिर कब तक इस समस्या की ओर अधिक अन्देखा रखा जाएगा । अब शायद झूठी ढींग हाकनेवालों की चलनेवाली नहीं, क्योंकि जो हाथ ईश्वर ने इन्सान को रोज़ी-रोटी केलिए दिये हैं, उनका इस्तेमाल अवश्यंभावी हैं .... ।"[37]

लक्ष्मीकान्त वर्मा की "ठहरी हुई ज़िन्दगी" में बेकारी, अभाव ग्रस्तता, भूख आदि से संत्रस्त कई पात्र हैं । बेकारी से बुरी तरह आहत युवक "राम लीला" में राम की भूमिका अदा करता है पैसे केलिए अभिनय के बीच में उस की सिगरेट पीने की प्रवृत्ति पर मन्दोदरी व्यंग्य करती है । उस का उत्तर है - "जिस का पेट भरा रहता है, वह सिगरट नहीं पीता, लेकिन जो भूखा है, भूख से जिस की आतें ऐठी है वह हवा से लेकर सिगरट तक पीता - मैं इस की दरिद्रता हूँ, उसकी टूटी आकांक्षाओं और फटे स्वप्नों का प्रतिनिधि हूँ, मेरा एक टूटा मुकुट यह फटा पीताम्बर, यह नकली गहनों का मटमैला श्रृंगार इस युग का है, मैं ने इस लीला में भाग लेने का निर्णय सात उपवासों के बाद लिया है,

---

37. बेरोजगारी - एक ज्वलन्त समस्या गोपाल लाल
- कुरुक्षेत्र, पृ.46, जून 1990

मुझे आज इस अभिनय के बाद पेट-भर भोजन मिलेगा ।"[38]

वृजमोहन शाह ने त्रिशंकु में विश्व विद्यालय और बेकारीके मध्य त्रिशंकु के समान लटके हुए एक युवक को प्रस्तुत किया है । पोस्ट ग्रेजुएट डिग्रीधारी युवक बहुत कुछ करना चाह कर भी स्थायित्व के अभाव में कुछ नहीं कर पाता और उसे अपनी महत्वाकांक्षाओं के बदले निराशा ही हाथ लगती है । अत: यह नाटक आज के उस प्रत्येक युवक का नाटक है, शिक्षित और बेकार होने के कारण जिस की स्थिति त्रिशंकु जैसी बनी है । नौकरी की खोज में निकला युवक जीविका चलाने केलिए किसी भी नौकरी को पाने की इच्छा करता है । क्लर्क की नौकरी केलिए गया तो अफसर का कथन ऐसा है - "मुझे पोस्ट ग्रेजुवेट क्लर्क की ज़रूरत नहीं है ।" लड़का काबिल है, पर मैं इसे नहीं रख सकता क्योंकि मुझे अपने दोस्तों व रिश्तेदारों और मिनिस्टरों के भाई-भतीजों को खपाना है, जो गधे हैं, जबकि आफीस में पहले ही सरप्लस स्टाफ है ।"[39]

बसेरे की तलाश -

रोज़ी-रोटी की खोज के साथ साथ बसेरे की खोज भी आदमी केलिए एक समस्या बन चुकी है । इसका एक दूसरा पहलू भी है, गाँवों और शहरों में आम जनता गरीब हैं । उन केलिए जमीन और मकान नहीं है । कई छोटे बडे मकान ताला लगाये पडे हैं जिन में छिपकली, मकडी, गिरगिट, चींटी, खटमल, झोंक, तेलचट्टा, साँप, चूहे आदि रहते हैं । महलों के चारों ओर किला-सदृश दीवार बनाकर, दर्जनों कुत्ते पालकर अमीर लोग रहते हैं तो सडक पर स्वतंत्र-भारत के "वोटर" धूप, वर्षा सहकर, खाना पकाकर, खाते-पीते सोते जागते हैं ।

---

38. ठहरी हुई जिन्दगी लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.37,47

39. त्रिशंकु वृजमोहनशाह, पृ.59-60 (तृ.सं.1982)

यहाँ मनुष्यत्वहीन एक अमीर-पीढ़ी रहती हैं। ऐसी हालत पर लक्ष्मी नारायणलाल ने व्यंग्य किया है - "जिस देश के सिर्फ पोइन्ट फोर प्रतिशत आदमी धनी हों, शेष सब गरीब हों, जिस समाज के दो प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहनेवाले हों, शेष नंगे भूखे हों यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक नहीं है तो क्या ?"[40]

शंकरशेष ने अपने नाटक "तिल का ताड" में शहरों और नगरों में मौजूद आवास स्थान की पेचीदी समस्या को उठाया है। नाटककार ने ही दिखाया है कि शहरों में नौकरी करने केलिए आनेवाले लोग आवास-स्थान का प्रबन्ध करने में बहुत कठिनाई महसूस करते हैं। मकान मालिक धन्नामल अविवाहितों को मकान नहीं देनेवाला है। प्राणनाथ से उस का कहना इस का प्रमाण है - "कुंवारे और रंडवों को घर देना आस्तीन में साँप पालना है। आप मुझे पिछले साल से बना रहे हैं, कल शाम तक आपकी बीबी नहीं आयी तो परसों आप मकान छोड़िये ......।"[41] मकान मालिक की शर्तें मानने केलिए मालिक के सामने झूठ बोलने केलिए विवश प्राणनाथ की विवशता शहरों और नगरों में रहनेवाले किरायेदारों की विवशता है। अविवाहित को मकान किराये में देने से इन्कार करनेवाले मकान मालिक के सामने अपने को शादीशुदा पुरुष के रूप में अपना परिचय प्राणनाथ ने दिया था। यहाँ तक कि एक अज्ञात युवति मंजु को घर में सहारा देकर मालिक से उसका परिचय पत्नी के रूप में देता है। मंजु को लायी पहली रात ही, मकानमालिक ने किराये में दस रुपये की वृद्धि करके कहा - "चलो, अच्छा हुआ, अब आप शौक से रहिये मेरे घर में, पर अब किराया दस रुपया और दीजिए।"

"अब तक आप अकेले थे। अब दो आदमी इस घर का उपयोग करेंगे और सुनिए हमारे नियम के अनुसार फी बच्चा 5 रुपया किराया

40· रक्त कमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ·30 (1962)

41· तिल का ताड शंकर शेष, पृ·10, प्र·सं·1990

बढता है .....[42] ।"

अर्थ के पीछे अन्धी दौड

अनैतिक राहों से होकर धन कमाने केलिए साझ से सबेरे तक भाग दौड करनेवाली एक नई पीढी स्वतंत्र भारत का अभिशाप है । धनार्जन में नीति-अनीति, पाप-पुण्य, भलाई-बुराई, धर्म-अधर्म का विचार ये नहीं रखते हैं । इसलिए आज मानव-रिश्तों में परिवर्तन आया है । अर्थ केन्द्रित जीवन-मूल्य पनपने लगा जिस बीच पति-पत्नी नाते में, पिता-पुत्र नाते में, भाई-भाई सम्बन्ध में हेरफेर हो गया ।

निरन्तर बढती जा रही महंगाई भारत की आम जनता की कमर तोडती है । अल्प-आयवाले सरकारी नौकर, मज़दूर आदि महीने के आरंभिक और अन्तिम तिथियों को आपस में मिलाने में असमर्थ हैं ।
महंगाई से बचने केलिए कुछ लोग रिश्वत लेते हैं ।
ऐशो आराम की जिन्दगी के मोह में पडी पत्नी की प्रेरणा से घूस लेने को विवश "राजन" का परिचय "लाल ने "मास्टर अभिमन्यु" में किया है । बेवफादार दुनियां में जीते जीते इमानदार राजन ने भी भ्रष्टाचार की सबक खूब सीख ली, उस ने दुनिया के साथ चलने का निश्चय किया "हमें दुनिया भर से क्या मतलब ! हमें चुपचाप आँखें मूंदे अपने रास्ते पर चले जाना है । कमिश्नर की "बेसिक में" ढाई हज़ार से शुरू होती है । इन्हें कम से कम ज्वाइंट सेक्रटरी तक पहुंचना है । साढे तीन हज़ार तनख्वाह पर पहुंचकर ये रिटयर्ड होंगे । तब तक कम से कम ढाई लाख हमारा

42· तिल का ताड शंकर शेष, पृ·15

प्रोविडेन्ट फंड होगा । इन्हें सात सौ रुपए महीने पेंशन मिलेगी, आप जानते हैं रिटॅयर्ड होने के बाद कोई घर पर नहीं बैठता । यह किसी फर्म में एक्सीक्यूटीव डयरेक्टर, किसी बोर्ड के फाइनेंस एड्वाइज़र नहीं तो किसी यूनिवर्सिटी के वायस चान्सलर ।"[43] राजेन्द्र कुमार वर्मा से हमारी भेंट होती है । रिश्वत लेनेवाले अपने पति के सम्बन्ध में पत्नी का कथन बिल्कुल ठीक है - "यह तुम्हारे धर्म की कीमत है, तुम्हारे ईमान का मूल्य है, तुम्हें अपने कर्तव्य से हटाने की फीस है ।"[44] "चिराग की लौ" का इन्कम टैक्स अफसर इसलिए घूस नहीं लेता है कि वह ईमान बेचने के समान है[45]।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने "न्याय की रात" के हेमन्त के माध्यम से यह व्यक्त किया है कि वह धन कमाने में विश्व में प्रचलित सभी अनैतिक राह अपनाता है । रिश्वत, शराब, महिला, हत्या आदि सभी कुछ उन में है । अपनी बहन का बार बार उपदेश सुनने पर भी हेमन्त अनैतिक राहों से ही चलता है । हेमन्त की नौकरी के बारे में बहनोई के पूछने पर दिये जानेवाला जवाब इस का दृष्टान्त है - "मेरा पेशा है, बेईमान व्यक्तियों केलिए परमिटों का इन्तजाम करना, बेईमान और लालची व्यवसाय पतियों को बडे-बडे ठेके दिलवाना और यह सब मैं कर पाता हूं, ऊंचे ओहदों पर विद्यमान कुछ बेईमान और विश्वास घाती सरकारी अफसरों की सहायता से ......[46]।"

---

43. मिस्टर अभिमन्यु - लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.67-68
44. अपनी कमाई - राजेन्द्रकुमार शर्मा, पृ.84
45. चिराग की लौ - रेवती सरनशर्मा, पृ.31
46. न्याय की रात - चन्द्र गुप्त विद्यालंकार, पृ.108

"यक्ष प्रश्न" का नेता "वर्मा" भी ऐसा अन्यायों का समर्थक है। अपनी कमाई का रहस्योद्घाटन करते हुए देव से वह कहता है - "मेरेलिए कमाई यह रह गई थी कि मैं दूसरों की कमाई का शोषण करूँ। नीचे से ऊपर चढ़ते जहाँ पहुँचा था वहाँ इतनी कम जगह थी कि दूसरों को नीचे गिराकर ही मैं वहाँ खड़ा रह सकता था। उतने ऊपर से नीचे लोगों को देखना संभव नहीं था[47]।"

अपनी स्वार्थ-सिद्धि केलिए आम जनता का शोषण करके मोटे बनने वाले नेता लोगों का उदाहरण "रक्त कमल" में मिलता है। महावीर से कमल कहता है - "आदमी अपने घोर सत्य का मुकाबला नहीं कर पाता। वह अपने से भागकर किसी असत्य में शरण लेता है। लीडर देश की जनता को मूर्ख बनाकर हमारा नेता बनता है। उद्योगपति समाज का शोषण कर राष्ट्रसेवी धर्म-सेवी का चेहरा बाँधता है और शेष सब उसे उदास देखते रह जाते हैं - साहित्यकार, विचारक, अध्यापक, पत्रकार और वकील ।"[48]

"तिल का ताड" का "बनारसीदास" घूस के रुपए को ऊपरी आमदनी मानता है। अपनी पुत्री रंजना की शादी इंजिनियर प्राणनाथ के साथ चलाने को बनारसीदास बहुत चाहता है। रंजना होटलों में प्राणनाथ के साथ गई हुई, विवाह के पहले कई बार। हलवा, ओमप्लेट आदि अन्य पुरुष के साथ विवाह के पूर्व रंजना के खाने पर भी बनारसीदास को कोई एतराज नहीं है। शादी-सम्बन्धी चर्चा केलिए आते समय प्राणनाथ से बातचीत के बीच बनारसीदास ने रिश्वत के बारे में अपना यह विचार व्यक्त किया - "आजकल ऊपरी आमदनी ही तो

47· यक्ष प्रश्न लक्ष्मीनारायणलाल, पृ·83 (प्र·सं·1981)

48· रक्त कमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ·30, सं·1962)

असली भीतरी आमदनी है । तनख्वाह तो लोटा-भर पानी है, प्यास बुझाने केलिए भी काफी नहीं, पर यह ऊपरी आमदनी ? इसे तो त्रिवेणी संगम समझिए अथाह पानी-बहता हुआ पानी । आजकल की दुनिया में तनख्वाह नहीं देखी जाती, देखी जाती है ऊपरी आमदनी को ठुकराना अच्छा नहीं हमेशा दुनिया के साथ चलो । दुनिया बेईमानी करे और तुम थोडी ईमानदारी करो तो तुम्हें कोई ईसा या गाँधी कहकर पूजनेवाला नहीं है ।[49]" "चिन्दियों की एक झालर" का मंगल ईमानदार और निस्वार्थ नन्दन का पुत्र है । स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिये नन्दन का पुत्र मंगल भौतिकता केलिए, सुख केलिए, दौडता है । अपने पिता के श्रेष्ठ मूल्यों का तिरस्कार करते हुए मंगल धन-दौलत, ऐशो-आराम को सब कुछ मानता हुआ कहता है - "मैं तो दुनिया के साथ दौडूँगा ठीक उसी तरह जैसे दुनियाँ दौडती है ठीक उन्हीं चीज़ों केलिए जिन केलिए दुनियाँ दौडती हैं रुपया, पैसा, मोटर-बंगला शराब औरतें .....[50] ।" हमारी प्राचीन संस्कृति पर, प्राचीन आदर्शों पर अटल रहे पुराने नेताओं के पुत्रों का उन सभी मूल्यों का तिरस्कार करने का उदाहरण इस नाटक में मिलता है । नन्दन के आदर्शों से पुत्र के जीवन में कोई उन्नति नहीं हुई है । जीने केलिए कठिन यातनायें झेलने केलिए मजबूर बना वह युवक अपने आदर्शवान पिता के मार्ग से हटने को इसलिए तत्पर हैं । अनैतिक राह से कमाते धन के भविष्य को सूचित करते हुए नन्दन अपने पुत्र से कहता है - "एक दिन सभी कुछ राख हो जाता है मंगल, लेकिन खुद से जलकर राख हो जाने में भी कुछ मज़ा है, जो दूसरों को बताया नहीं जा सकता[51] ।"

---

49. तिल का ताड शंकरशेष, पृ.41-42
50. चिन्दियों की एक झालर अमृतराय, पृ.86, प्र.सं.1969
51. वही, पृ.87

व्यापार के रूप में शिक्षा-संस्थायें चलाकर रुपये कमाने का कार्य वर्तमान युग की खूबी है । जनता को शिक्षित करने के महान उद्देश्य से पुराने ज़माने में शिक्षा-संस्थाएँ चलाती आयी थी । लेकिन आज अन्य किसी व्यापार से यह दुकान मुनाफेदार है । शंकरशेष ने अपनी लेखनी इस सत्य के प्रकाशनार्थ चलायी है । अरविन्द आचार्य के अन्यायपूर्ण व्यवहारों की कटु आलोचना करते हुए लीला से कहता है - "उस कमी ने आदमी ने दूकानों की तरह बीस शिक्षण संस्थायें खोल रखी हैं । साथ ही लेन-देन का व्यापार करता है । शिक्षण-संस्थाओं के लाखों रुपए ग्रांट का उपयोग यह शिक्षा-शास्त्री अपने लेन-देन के व्यवसाय में करता है । इस पूँजी से हज़ारों रुपए कमाकर कालेज को लौटा देता है । यह धन्या जाने कितने वर्षों से चलता रहा है ।"[52] शिक्षा-संस्थाएँ धन कमाने के एक माध्यम के रूप में भारत-भर में फैल गयी हैं । नाटक में हम देखते हैं कि आचार्य द्रोणाचार्य अपनी योग्यता तथा विद्वत्ता को सत्ता के हाथों गिरवी रखकर सत्ता की विसंगतियों से समझौता करता है । उसने अपनी पत्नी कृपी और पुत्र अश्वत्थामा के सुख केलिए अपना अस्तित्व नष्ट किया है । अपनी आर्थिक पराधीनता से बचने केलिए ही गुरु ने ऐसा किया था । नाटक का अरविन्द भी आर्थिक विवशता से बचने केलिए पत्नी लीला के उपदेशानुसार कालेज के व्यवस्थापक के साथ रहता है । आधुनिक द्रोणाचार्य प्रोफसर अरविन्द सत्ता और व्यवस्था द्वारा पोषित अध्यापक है । पत्नी के कहने के अनुसार परीक्षा में पराजित छात्र सिन्हा से रुपए प्राप्त कर के प्रो॰अरविन्द ने उसे विजय तिलक लगाया ।

52॰ एक और द्रोणाचार्य शंकर शेष, पृ॰75, च॰सं॰1983

शासक के पुत्र अर्जुन को बडा दिखाने केलिए द्रोणाचार्य ने अनार्य एकलव्य से गुरुदक्षिणा के रूप में अंगूठा मांगा, और अंगूठा पाकर एकलव्य को प्रतिभाहीन बनाया । उसी प्रकार द्रोणाचार्य अपने राजकीय सुख को बनाये रखने केलिए प्रतिभावान छात्र कर्ण को सूतपुत्र कहकर हंसी उडाता है । इस मिथकीय कथा के प्रतीकात्मक प्रयोग द्वारा नाटककार ने वर्तमानयुग के शिक्षा शास्त्री अरविन्द के अन्यायों की ओर इशारा किया है। प्रसिडेन्ट के पुत्र राजकुमार के द्वारा परीक्षा में नकल करते वक्त प्रो· अरविन्द को आंखें मूंद करनी पड़ती है एवं पुरस्कार रूप में प्रिन्सिपल पद स्वीकार करने पडता है । उसी राजकुमार के द्वारा कालेज की छात्रा अनुराधा बलात्कार की जाती है । तब भी प्रो·अरविन्द को आंख बन्द करनी पडती है । याने अध्यापक अपने आर्थिक अभावों की पूर्ति एवं सम्मान केलिए सत्ता के साथ समझौता कर के न्याय बदल देने के भागीदार के रूप में आज काम करते हैं ।

कला के क्षेत्र में व्यावसायिक रुख से प्रवर्तन करनेवाले स्वार्थी लोगों की संख्या वर्तमान समाज में दर्शनीय है । कला नैसर्गिक होने पर भी उसे पनपने केलिए अनुकूल परिस्थितियां अनिवार्य हैं । कलाकार की साधना का परिणाम होता है कला की पूर्ति । भीष्मसाहनी के नाटक "हानूश" का हानूश ताला बनानेवाला एक साधारण कुफ्लसाज है । घडी बनाने की चाहने अपने मन को पल्लवित किया । कई सालों के परिश्रम से वह घडी बना पाया । लेकिन उस की बीबी, पुत्री सब को भूखों से पीडित करके ही उस की विजय हुई थी । कला के प्रति कुछ लोगों का रुख स्वार्थपूर्ण है ।

व्यापारी वर्ग घडी की स्थापना नगरपालिका में करना चाहते हैं । बादशाह के द्वारा घडी का उद्घाटन कराने पर सौदागार केलिए अपनी चीज़ों की बिक्री बढ़ाने की चिन्ता है । सुदूर जगहों से लोगों के आने की प्रतीक्षा और अपनी दुकानों की ठाटबाट दिखाने का अवसर दोनों वे चाहते हैं । उन का लक्ष्य व्यापार की बढ़ती है । एक व्यापारी का वचन यों है - "हमें घडी की नुमाइश से नहीं मुनाफे से मतलब है ।"[53] कला के प्रति सत्ता भी अन्याय करता है । सत्रह सालों के निरन्तर परिश्रम से बन गयी थी घडी । पर कलाकार के अन्धेपन का कारण भी वह कलाकृति बनी । निरंकुश, स्वार्थ सत्ता के सामने वह गरीब, सरल समर्पित कलाकार कुछ नहीं कर सका ।

डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल ने "सुन्दर-रस" के द्वारा सुन्दररस-निर्माता एवं विक्रेता आयुर्वेदाचार्य पंडितराज का चित्रण किया है । शहर भर के वकील, सरकारी कर्मचारी, व्यापारी सब सुन्दर बनने के उद्देश्य से इस विशेष औषध के ग्राहक बन गये । लेकिन कोई सुन्दर नहीं बनता है । आचार्य के चारों ओर भीड लग गई । अपने ब्याज व्यापार के रहस्योद्घाटन करता हुआ पंडित राज ने कहा - "उन दिनों मेरी आर्थिक हालत बहुत बिगड गयी । फिर मैं ने यह सुन्दर रस दवा बनायी और इस की बिक्री केलिए मैं ने यह झूठा प्रचार किया कि इसी दवा से मेरी बदशक्लत पत्नी इतनी सुन्दर हुई है । मुझे यह पता नहीं था कि मेरे उस झूठ को इतनी बडी सजा मुझे झेलनी होगी ...[54] ।" पंडित राज ने आर्थिक विषमता से बचने केलिए दवा बनायी थी । इसी प्रकार भारत-भर में आम जनता को मोहित कर के, धन कमानेवाले ब्याज औषधि निर्माताओं की ओर नाटककार ने आम जनता को चेतावनी दी है ।

53· हानूश भीष्म साहनी, पृ·46

54· सुन्दररस लक्ष्मीनारायणलाल, पृ·74

अर्थाभाव कभी कभी स्वयं निर्मित भी होता है । परिश्रम किये बिना देश के युवकों के रहने पर यहाँ पैदावार की कमी हो जाती है । सभी समय दूसरों पर दोषारोपण करते, भाषण देते घूमने पर देश की प्रगति नहीं होती है । "रक्त कमल" का "कमल" इस पर अपना विचार व्यक्त करता है - "हमारा यह देश बेहद कमज़ोर है । पहले इस का कारण अंग्रेज़ थे । अब तो हमीं हैं इस के कारण । हमारा संकीर्ण धर्म, हमारी अन्ध जातीयता, प्रान्तीयता और हमारा छोटा स्वार्थ, जिस से हम अपने देश को अपना नहीं अनुभव कर पाते । इतना बडा देश, जिस में इतनी अतुल सम्पत्ति, जिस में मनुष्य की इतनी अपार शक्ति । इस की इतनी उपजाऊ धरती जो अपनी पूरी पैदावार से ऐसे ऐसे चार हिन्दुस्तान से भर पेट दे सकता है और सब ऋतुओं के अनुसार सब को पूरा वस्त्र जुटा सकता है ।"[55]

अर्थाभाव के कारणों पर विचारते समय यह भी सोचना होगा कि स्वनिर्मित गरीबी भी है । अमीर होते हुए भी कई दुर्गुणों का शिकार होकर गरीबी का अनुभव करनेवाले कई लोग होते हैं । "डेनिस वेयटली ने धनवान-गरीबों पर प्रकाश डालते हुए कहा है - "लगातार धूम्रपान, अनियंत्रितशराब खोरी, अमित-भक्षण प्रियता, विलम्ब-नीति, अलसता, शंका, निराशा, दुष्टता, कठोरता और अविवेकी स्वभावों के शिकार गरीबी में फंसते हैं । याने नशीली आदतें गरीबी के कारण बनते हैं ।"[56]

---

55. रक्त कमल - लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.99-100 (1960)

56. "Real poverty stems from the losing habits of chain-smoking, excessive drinking, over-eating, procrastination, laziness, anxiety, depression, sloppiness, glultony, dishonesty, cynicism, cruelty and insensitivity."
The Joy of working : Denis Waitley and Reni L.Witt, p.261 (1987)

परिश्रम करके धन कमाना चाहिए । बिना परिश्रम के मिलती संपत्ति अनर्थकारी निकलती है । अक्सर ऐसा देखा जाता है कि पूर्वजों के द्वारा अन्याय के द्वारा कमायी संपत्ति आगामी पीढी को विरासत के रूप में मिलती है । लेकिन उस में कोई मूल्य नहीं रहता है । "रात रानी" के जयदेव के पिता ने अंग्रेज़ों से मुफ्त में जो प्रेस लिया था उस के बारे में कुन्तल से माली का कथन इस का प्रमाण है । जयदेव प्रेस में वक्त पर नहीं जाता है, कर्मचारियों को समय पर वेतन नहीं देता है । प्रेस के कर्मचारी बोनस और वेतन केलिए स्ट्रेक करते हैं । एक कर्मचारी किशोरी को जयदेव ने नौकरी से निकाल दिया । नौकरों के घरवाले गरीबी मे तडपते हैं । कुन्तल ने किशोरी की पत्नी को पचास रुपए दिये तो जयदेव कुपित होकर कुन्तल से झगडा करता है । इस घर की अशांति के कारणों पर प्रकाश डालते हुए माली कहता है - "कारण वही धन है - वही पचास हज़ार रुपए जो मेरे मालिक जय भैया के नाम बैंक में जमा कर गये । कारण वह प्रेस है, जिसे मालिक ने अंग्रेज़ों से भैया केलिए मुफ्त में खरीदा । मैं ने उसकेलिए मालिक से तभी विरोध किया था कि बिना मेहनत के धन भैया को मत दो । अंग्रेज़ों का यह प्रेस मत लो ।"[57] विदेशी धन को चाहनेवाले लोगों की संख्या आज हमारे देश में बहुत अधिक हैं । वे यह नहीं जानते कि उन से मिलती संपत्ति नाशकारक और संकटकारक है । विदेशी संपत्ति, सभ्यता आदत आदि के पीछे पडनेवालों के बारे में सच्चिदानन्द वात्स्यायन अपने विचार यों व्यक्त करते हैं "पश्चिम हम से ज्यादा समृद्ध हैं, धन ज्यादा है, पूंजी ज्यादा है, यन्त्र ज्यादा है । परन्तु यह ज़रूरी नहीं कि उसकी सांस्कृतिक दृष्टि भी ज्यादा अच्छी ही हो । लेकिन वैसा मान लिया जाता है हमेशा से,

---

57. रात रानी लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.116, प्र.सं.1962

जिधर से पैसा अधिक होता है, मान लिया जाता है कि उधर से जो कुछ आता है वह सभी अच्छा है।"[58]

अर्थ केन्द्रित मानव-रिश्ता -

आजकल मानव-रिश्ता धन-मोह पर टिका रहता है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी सम्बन्धों के पीछे रुपए का मोह छिपा रहता है। भगवतीचरण वर्मा ने "वसीयत" के द्वारा यह व्यक्त किया है कि चूडामणि की मृत्यु के बाद उस की संपत्ति हथियाने में सब को जल्दबाजी है। निर्देशानुसार शिष्य वसीयत पढना शुरू करता है तो टिप्पणी सुनकर परिवार का हर सदस्य पहले उन्हें कोसता है, बाद में अपने लिये रकम छोडी जाने की बात सुनकर उनकी आत्मिक-शान्ति की कामना करते हुए शोक प्रकट करने लगता है। असल में पिता की मृत्यु पर किसी को दुख नहीं है। वसीयत इस प्रकार हम पढ सकते हैं - "मैं चूडामणि मिश्र आदेश देता है कि मेरा अन्तिम संस्कार मेरे प्रिय शिष्य की देखरेख में हो। अन्तिम संस्कार केलिए मैं ने पचास हज़ार की रकम अपनी अलमारी में अलग निकाल रखी हैं जो मेरे दाह संस्कार, ब्राह्मणों, घटवारों एवं महापात्रों की दान-दक्षिणा आदि का व्यय काटकर मेरा अन्त्येष्टि संस्कार करनेवाले को मिलेगी।" "मेरा आदेश है कि मेरा अंतिम संस्कार वही कर सकता है जो यज्ञोपवीत धारण किये हो और जिस के सिर पर शिखा हो।"[59] यज्ञोपवीत और शिखा को सख्त नफरत करनेवाले पुत्र ने रुपए के मोह में पडकर इन दोनों का पालन किया।[60] "वसीयत" ने यह व्यक्त किया है कि पिता को पुत्र से या पत्नी से, अथवा पुत्र को पिता से कोई आत्मीयतापूर्ण नाता नहीं है।

---

58. सभ्यता का संकट सच्चिदानंद वात्स्यायन - नया प्रतीक, पृ. 16
भाग 3, 1971 दिसंबर

59. वसीयत भगवतीचरण वर्मा, पृ. 40-41, प्र.सं. 1978

60. वही, पृ. 44

भगवतीचरण वर्मा ने, रुपए के लिए ही जीनेवाले मानिकचन्द का जीवन "रुपया तुम्हें खा गया" में दिखाया है । अपनी बीमारीके समय भी, सोने की जंजीर में बंधी सेफ की चाबी लटकाते चलनेवाले मानिक-चन्द से मिलने केलिए उस की पत्नी, पुत्र, पुत्री आदि आये हुए है । दस हज़ार रुपए की चोरी वर्षों के पहले कर के अमीर बने मानिकचन्द अब भी रुपए का दास है । किशोरीलाल मानिकचन्द को समझातें हुए कहता है - "तुम्हारा सुख-शांति अर्थ के पिशाच ने तुम से छीन ली, तुम्हारा सन्तोष उसने नष्ट कर दिया । उस दिन जब तुम दस हज़ार रुपया चुराकर लाये थे, तब तुम ने समझा था कि तुम रुपया खा गए लेकिन मैं समझता हूँ रुपया तुम्हें खा गया ।"[61]
इसके बाद सेफ की चाबी मानिकचन्द की पत्नी आकर मांगती है तो उस का जवाब यों है - "सेफ की चाबी नहीं मिलेगी, जब तक मैं जिन्दा हूँ । जानती हो इस दुनिया में मेरा कोई नहीं है । बीबी, बच्चे, नातेदार, पडोसी, नौकर ये सब के सब मेरे नहीं है, मेरे रुपए के हैं ।"[62]
मानिकचन्द ने उस का जीवन चोरी के रुपए से बर्बाद किया । उसके जीवन में किसी के प्रति प्रेम नहीं है । पत्नी, पुत्र, पुत्री सब उसकेलिए निरर्थक हैं । किसी के प्रति उस का प्यार नहीं है । बुढापे तक पहुँचे हुए कई लोग आजकल ऐसे दीखते हैं जो अपने परिवार के सदस्यों से अधिक भौतिक संपत्ति को महत्व देते हैं ।

वर्तमान पीढी रुपए कमाने केलिए ममता, प्रेम, दया आदि को त्यागती भी हैं । भगवतीचरण वर्मा ने "मानिक चन्द" का विश्लेषण करते हुए लिखा है - "आज का हर व्यक्ति रुपए को महत्व देता है ।

61· रुपया तुम्हें खा गया भगवतीचरण वर्मा, पृ·99

62· वही, पृ·100

रुपए की शक्ति सुख-सुविधा को खरीद सकती है - ऐसा लोगों का ख्याल है । और एक बार जब रुपए की शक्ति को स्वीकार करलिया गया तब मानव उस रुपए का दास बन जाता है । आज के समाज में अधिकांश लोग इस रुपए की शक्ति के उपासक है, और यही गलत मान्यता समाज के कल्याणकारी विकास में बाधक है ।"[63] नाटककार ने यह व्यक्त किया है कि मानिकचन्द ने चोरी के द्वारा दस हज़ार रुपए कमाये जिस से उसका परिवार उस के नियंत्रण से बाहर हुए है । पागल हुए मानिकचन्द के बारे में डाक्टर जयलाल वकील से कहते हैं - "पैसे की घृणित दुनिया में प्रेम, सहानुभूति, ममता, त्याग, दया आदि का कोई विधान नहीं है ....[64] ।"

अपने अर्थाभाव पर पर्दा डालने केलिए कर्ज लेकर भी धूमधाम से जिन्दगी बितानेवाले मध्यवर्गी लोग भी समाज में मौजूद हैं । "नये हाथ" का अजयप्रताप ऐसी एक दिखावा पूर्ण जिन्दगी ही बिताता है । उस की पत्नी उसे समझाने की कोशिश करती है - "कर्ज लेकर शान दिखाने से क्या लाभ ? ज़मीन्दारी के साथ आन-बान भी चली गई । दिन बदल गये हैं, दुनिया बदल गई है, हमें भी समय के साथ बदलना चाहिए[65] ।

रात रानी का प्रेस मैनेजर जयदेव फिज़ूल खर्च का आदी है । जयदेव इंजिनीयर पिता का पुत्र होने के कारण खर्चीला हो गया था । लेकिन उत्कृष्ट चरित्र रखनेवाली कुन्तल अपने पति के स्वभावों में नियंत्रण करने की कोशिश में है । इस बीच अपनी सहेली सुन्दरम से वार्तालापके बीच में, खर्च संभालने केलिए घर के बजट में कटौती की बात कहती है -

---

63· रुपया तुम्हें खा गया भगवतीचरण वर्मा, भूमिका, पृ·16
64· वही, पृ·79
65· नये हाथ विनोद रस्तोगी, पृ·4 §द्वि·सं·1967§

"पिछली जुलाई से इस घर का बजट संभाले नहीं संभलता था । फिर मैं ने बजट में से दो कटौतियाँ कर दीं - यहाँ से टेलिफोन करा दिया, बाहर के कामकाज केलिए एक नौकर था, उसे हटा दिया ।"[66]

अपने पिता के कमाये धन को फिजूल खर्च करके बेफिक्र हो ऐशो आराम की जिन्दगी बिताने वालों का प्रतिनिधि है "अब्दुल्ला दीवाना" का युवक । सरकारी वकील के सामने युवक का कथन इस का प्रमाण है - "मेरे पास हज़ारों रूपए, पोकट मनी । डाडी कहते - "ब्लेक मनी जलाकर रोशनी करो । मेरे पास कारें, लडकियाँ और मेरा अकेलापन, जी हाँ, धन-दौलत और लडकियों के साथ अकेलापन ।" गर्ल फ्रेन्ड्स, होटल बिस्तर सिगरेट ड्रिंक्स फिल्म सेक्स डाक्टर दीवारें दवाइयाँ डेडी कजिन आंट्स नीम जोक्स डाइवर्जन ।"[67]

भगवतीचरण वर्मा ने "रुपया तुम्हें खा गया" में रुपए की चोरी से होनेवाली विपत्तियों पर प्रकाश डाला है । अपने काम करते दफ्तर से दस हज़ार रुपए की चोरी करके मानिकचन्द भाग जाता है । किशोरिलाल केशियर को इस अपराध पर तीन साल की सज़ा हुई । मानिकचन्द उस धन से अमीर बना । लेकिन बीमार वह मानसिक संघर्ष में पडकर डाक्टर के सामने सब कुछ खुले रूप में मानता है । मानिकचन्द के कमाये धन पर पत्नी, पुत्र, पुत्री सब सुखपूर्ण रहते हैं, लेकिन उस की दयनीय हालत पर कोई आता नहीं है । वह कहता है - "लेकिन मैं अपनी बात कहूँगा, और वह बात तुम्हें सुननी पडेगी, हाँ, तो उस बीमारी की हालत में मैं ने अनुभव किया कि ममता, भावना नाम की कोई चीज़

---

66. रात रानी लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.41 (प्र.सं.1962)

67. अब्दुल्ला दीवाना लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.66, 104 (प्र.सं.1973)

नहीं है । मैं अकेला इस कमरे में उस पिशाच की भाँति बन्द था, जिस के जीवन में हँसी नहीं, रोना नहीं, एक भयानक सूनापन है ।"[68] रुपया खानेवाला मानिकचन्द को रुपए ने खा दिया । इस सत्य को नाटककार ने व्यक्त किया है । नाटककार यों कहते हैं - "मानिकचन्द से बढ़कर दुखी और अभागा आदमी दुनिया में मुश्किल से ही मिलेगा । उस के जीवन में कहीं भी ममता, सहानुभूति, प्रेम आदि भावनायें नहीं हैं । कोई भी ऐसा नहीं है जिसे वह अपना कह सके, हरेक व्यक्ति मानिकचन्द के रुपए का दास है मानिकचन्द का पुत्र, उसकी पत्नी, उसकी लड़की उसके नौकर चाकर कोई भी तो उस का नहीं है । हरेक व्यक्ति की नज़र उसके रुपयों पर है । वह रुपया, जिसे उसने एक दिन समझा था कि वह खा गया, उसे ही खा गया था । वह दस हज़ार रूपए चुराने के पहलेवाला मानिकचन्द गरीब भले ही रहा हो, पर भावना का प्राणी था, दूसरे उसके थे, वह दूसरों का था । और बीमारी में पड़ा हुआ बीस वर्ष बादवाला मानिकचन्द एक नितान्त अकेला और दयनीय प्राणी है - यह मानिकचन्द स्वयं अनुभव करता है ।"[69]

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की आर्थिक हालत पर अवलोकन करने से यह कहना पड़ता है कि यहाँ सुविधा भोगी एक वर्ग और भी पनप गये हैं और गरीबों की संख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है । जो धनवान अंग्रेज़ों के जमाने में लखपति थे 43 वर्षों के स्वतंत्रता ने उन्हें करोड़-पति बनाये । सत्ता के साथ जो गलबाही करते आये हैं वे भी ऐशो आराम के साथ रहे । आम जनता जिस में शिक्षित और अशिक्षित थे, सच्चाई के साथ रहने लगे तो दाँत तालू में जम गये । इसलिए कुछ सत्य के मार्ग से अन्याय के पथ ग्रहण में मज़बूर हुए । आम जनता की अर्थ विषमता दूर कर के देश के नक्शे को सुन्दर बनाने की चलाई सभी योजनायें

---

68. रुपया तुम्हें खा गया भगवतीचरण वर्मा, पृ.86, तृ.आवृत्ति 1972
69. वही, पृ.20-21

कागज़ी योजना रह गई । यह बिलकुल सही है कि चलाई गई योजनाओं के फल शासन चक्र चलानेवाले कर्मचारियों के कुतंत्रों से साधारण जनता तक नहीं पहुँचे । अमला तंत्र हथियानेवाले सरकारी नौकर और अफसर देश की आवश्यकताओं के प्रति बन्द नयनों से, तिरस्कृत भावों से देखने पर देश की प्रगति नहीं होती है । समाजवाद की इस कमी को श्री कुबेरनाथ राय ने व्यक्त किया है - "समाजवाद की ट्रेजडी यह है कि जैसे जैसे वह प्रबल और स्थाई होता है उसी अंश में अमलातंत्र भी प्रबल और स्थायी भी होता जाता है । व्यवहार में समाजवाद सर्वत्र ही "अमला तांत्रिक समाजवाद है । यह समाजवाद ही नहीं, प्रत्येक अधिनायकत्व मुखी व्यवस्था की एक अपविशिष्टता है और इस के परिहार का शुद्ध समाजवाद में कोई उपाय नहीं - अवश्य ही गणतांत्रिक समाजवाद में इस दोष के परिष्कार का अल्प अवकाश है । शुद्ध समाज वाद में प्रेस और साहित्य दोनों पर अमलातंत्र द्वारा सरकारी नियंत्रण रहता है । अतः सारा देश ही एक कपाट-बद्ध, और अवरुद्ध वायु का एक बंध कक्ष बन जाता है ।"[70]

आम जनता भारत के नागरिक के पद से "वोटर" के पद पर गिर गई । जनता के रक्षक उनके भक्षक ही बन गये । हरिकृष्ण प्रेमी ने "आन का मान" में अकबर की पुत्री सफीयतुन्निसा के माध्यम से यह व्यक्त किया है - "प्रजा स्वयं अपनी रक्षा करेगी और सच बात तो यह है कि राजा, महाराजा और सम्राट ही तो सबसे बडे लुटेरे हैं । प्रजा की गाढी कमाई का धन लूट लूट कर अपने कोष भरना और उससे अपने विलास के साधन जुटना ही तो इन का काम है ।"[71] जनता को लूट खसोट कर अपने अधिकार को जारी रखने की होड में लगे हुए नेताओं और राजनीतिज्ञों का परिचय पिछले अध्याय में दे चुका हूँ ।

70· समाजवाद, अमला तंत्र और साहित्यकार श्री कुबेरनाथ राय "सरस्वती", पृ·17, जनवरी 1973

71· आन का मान हरिकृष्ण प्रेमी, पृ·112 {च·सं·2022 विक्रम}

आर्थिक क्षेत्र में पनपी हुई विसंगतियों का विश्लेषण करने से यह जाहिर है कि भारत के बहुसंख्यक लोग एक दफे भोजन करने में असमर्थ होकर खाली पेट चलते हैं, बहुतोंकेलिए एक छोटा सा बसेरा भी अपनी पहुँच के परे हैं, बेकारी उनके सामने मुँह भाये खडी है । यों वे जीवन की बुनियादी ज़रूरतों से वंचित हैं । दरअसल उनकी दर्दनाक हालत केलिए ऐसे सुविधा भोगी लोग ही जिम्मेदार हैं जो जीवन के सारे नैतिक मूल्यों को कुचलते हुए स्वार्थ की अन्धी दौड धूप में लगे हुए हैं ऐसे लोगों के बारे में नेहरू का कथन बिल्कुल सच है - "धनी होने पर, अथवा धन कमाने की चतुरता रखते हुए भी, वह व्यक्ति सभ्यता और शिष्ठता की शर्तों का पालन नहीं करता ।[72]"

-----

72. "A Person with a large amount of money need not necessarily have high cultural standards or high literary standards or any high standards at all, though he may have the knack of making money" 'Wit and Wisdom of Nehru', P 604

अध्याय - पाँच

धर्म के क्षेत्र में मूल्य विघटन

धर्म के क्षेत्र में मूल्य विघटन

मानव मूल्यों में धर्म की उत्कृष्टता अतीत कालों से मानी गयी है । मनुष्य और पशु में जो अन्तर है, उन में धर्म की गणना भी है । "धर्म का निवास मनुष्य के मन में है, यह स्वयं मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है । बाकी प्रत्येक वस्तु विलीन हो जा सकती है, परन्तु ईश्वर में विश्वास, जो संसार के सब धर्मों की चरम स्वीकृति है, शेष रह जाता है । धर्म चाहे कितने ही रूप क्यों न बदल ले, परन्तु वह तब तक बना रहेगा, जब तक कि मनुष्य, जो कुछ वह है - अर्थात् शक्ति और दुर्बलता का सम्मिश्रण - बना रहेगा ।"[1]

संसार भर में अनेक धर्म हैं । इन में कुछ ऐसे हैं जिन केलिए कोई लिखित धर्म ग्रन्थ, पवित्र नियम या प्रार्थनायें तक नहीं हैं, जो हर पीढ़ी द्वारा अगली पीढ़ी को सौंपी जाती हैं । दूसरे प्रकार के धर्म ऐतिहासिक हैं । "ऐतिहासिक धर्म केवल सात या आठ ही रह जाते हैं ।

---

1. धर्म - तुलनात्मक दृष्टि में डा॰ राधाकृष्णन, पृ॰14

सेमिटिक जातियों के तीन धर्म हैं, यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म । हिन्दुओं का - जिस की बौद्ध, जैन और सिख धर्म आदि अनेक शाखायें हैं और ज़रथुस्त्रवाद का विकास आर्यजातियों ने किया । इनके साथ यदि कनफ्यूशियस और लाओत्से के धर्मों को मिला लिया जाय, तो बस ये ही मानव-जाति के जीवित धर्म हैं[2] ।"

धर्म की आवश्यकता

मानव शरीर, मन और आत्मा से बना है । इन में से प्रत्येक को अपने लिये समुचित पोषक तत्व अनिवार्य है । भोजन और व्यायाम द्वारा शरीर तन्दुरुस्त रहता है, विज्ञान और शिक्षा द्वारा मन पोषित होता है और आत्मा धर्म, कला, दर्शन आदियों के द्वारा प्रबुद्ध रहती है । इन में से किसी एक पक्ष के विकास में रुकावट पडने पर जीवन उतना असंतुलित होता है । अक्सर आजकल ऐसा होता है कि शरीर की तुष्टि केलिए भोजन किया जाता है और मन की पुष्टि केलिए शिक्षा दी जाती है । आत्मा का पक्ष शुष्क होता है, क्योंकि धर्म सम्बन्धी कोई जानकारी अधिकांश युवकों को नहीं मिलती है । आत्मा-हीन मनुष्यों से, किये जानेवाले अमानुषिक बर्तावों से चारों ओर विषैला हो गया है "आधुनिक संसार की एकता केलिए कोई नया सांस्कृतिक आधार होना चाहिए, वास्तविक प्रश्न यह है कि वह आर्थिक और व्यवहारवादी मस्तिष्क द्वारा, जो कि इस समय अधिक प्रभुतापूर्ण है, प्रेरित होना चाहिए अथवा आध्यात्मिक मन द्वारा । एक ऐसा यान्त्रिक जगत्, जिस में मानवता, आत्मा शून्य कार्य कुशलता के यन्त्रजात के रूप में ढाल दी गई हो, मानवीय प्रयत्न का उचित लक्ष्य नहीं है । हमें एक ऐसे

---

2. धर्म - तुलनात्मक दृष्टि में, डॉ. राधाकृष्णन, पृ. 32

आध्यात्मिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिस के अन्दर न केवल अर्थ शास्त्र और राजनीति का विशाल आवेशपूर्ण जीवन हो, अपितु आत्मा की सुदृढ आवश्यकताओं केलिए भी स्थान हो[3]।" इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण से "वसुधैवकुटुम्बकम्" के पुनर्निर्माण के कार्य में धर्म द्वारा पूरा किए जानेवाला भाग, विज्ञान के भाग की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

धर्म की शिक्षा कुछ धर्मों में दी जाती है । हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, फारसी, ईसाई, बौद्ध आदि असंख्य धर्मावलंबियों का जमघट है भारत । खेद की बात यह है कि सभी धर्मों में आदर्शवान धर्म शिक्षकों की कमी है । इस के कारणों पर प्रकाश डालने से यह पता चलता है कि आजकल धर्म-प्रवर्तन एक नौकरी बन गई है । वास्तव में धर्म तो एक जीवन-शैली है । भक्तों को सही पथप्रदर्शन करने केलिए बाहय धार्मिक अगुओं - पुजारी, पादरी, मुल्ला, पांडे, गुरु साहिब को मन, वचन व कर्म से पवित्र और आदर्शवान रहना चाहिए । लेकिन धार्मिक क्षेत्र में पनपनेवाली विद्रूपतायें और विसंगतियाँ इस बात की गवाही है कि ये अगुए ही सब से बडे ढोंगी निकलते हैं ।

आध्यात्मिकता और ईश्वर में विश्वास भारतीय संस्कृति का मूलाधार रहा है । मनुष्य जीवन का प्रत्येक कार्य-कलाप ईश्वर पूजा से शुरू करते आये हैं । लेकिन स्वतंत्रता के बाद हमने ईश्वर और धर्म का तिरस्कार किया । "धर्मनिरपेक्षता" का अर्थ हम समझ नहीं पाये । हम यह सत्य भूल जाते हैं कि सभी धर्मों का आधार एक ही ईश्वर पर केंद्रित है । कोई भी धर्म ऐसा उपदेश नहीं देता है कि तुम दूसरे धर्मों की निन्दा करो या अपने धर्म को ही सब से श्रेष्ठ समझो । शुकदेव प्रसाद ने धर्म की

3· धर्म - तुलनात्मक दृष्टि में डॉ· राधाकृष्णन, पृ·38

खूबी यों व्यक्त की है - "प्राचीन काल की सभी सभ्यताएँ धर्म में विश्वास रखती थीं । हिन्दू, इस्लाम, यहूदी, ईसाई सभी धर्मों में ईश्वर की कल्पना की गई है । कमोबेश सभी धर्मों में ईश्वर को विश्व का निर्माता माना गया । काल-प्रवाह के साथ धर्म हमारे जीवन के अभिन्न अंग बनने लगे और धार्मिक ग्रन्थ आस्थाओं के आधार । यहाँ तक कि सामाजिक रीतियाँ और नैतिक नियम तक धर्म के मूल सिद्धान्तों पर आधारित होने लगे । धर्म के मूल सिद्धान्त ही स्मृति के आधार बने । परन्तु कालान्तर में ये धर्म रूढ़ियाँ बन गए । एक समय ऐसा भी था जबकि धर्म-ग्रन्थों के खिलाफ कोई बात नहीं सुनी जा सकती थी[4] सभी धर्मावलम्बी एक ही ईश्वर की प्रार्थना करते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि "फिर धर्म के नाम झगड़ा क्यों" ? उत्तर यह है कि हम ने अपने धर्म की जानकारी प्राप्त नहीं की है, दूसरे की भी । तब हमें अपने धर्म के नेताओं की कथनी का आश्रय लेना पड़ता है । वह नेता धर्मान्ध होगा तो झगड़ा ज़रूर । इसलिए विविध धर्मों के महान सन्देशों का समन्वय करना भी परमावश्यक है । धर्म की कीमत से वर्तमान पीढ़ी वंचित रह गई है । किसी दुकान से धर्म को खरीदना असंभव है । डॉ॰राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा है - "हम में से अधिकांश लोग धर्म को ऐसे आसानी से संभाल लेना चाहते हैं, जैसे हम समुद्र के किनारे पड़ी सीपी को उठा लेते हैं । हम में अध्यवसायपूर्वक खोज करने का धीरज या शक्ति नहीं है । जैसे हम पुस्तकों की दुकान से पुस्तकें लेते हैं, मुर्गीपालन वाले से अंडे लेते हैं या दवाई बेचनेवाले से दवाइयाँ लेते हैं, उसी प्रकार हम उपदेशक या पुरोहित से आशा करते हैं कि उससे हमें कुछ रुपये या प्रति सप्ताह एक घंटा देकर धर्म प्राप्त हो जाए । लेकिन धार्मिक होने के लिए तो बहुत काफी मूल्य चुकाना होता है[5] ।" ठीक है बुद्ध को राज्य, सुख, संपत्ति

4· विज्ञान और मानव मूल्य शुकदेव प्रसाद - आजकल, पृ॰28 नवम्बर 1982

5· धर्म तुलनात्मक दृष्टि में - डॉ॰राधाकृष्णन, पृ॰76

आदि त्यागना पडा धार्मिक बनने केलिए । सत्य, प्रेम आदि धर्म के सिद्धान्तों की प्राप्ति केलिए हमें भी परिश्रम करना पडेगा धर्मी बनने केलिए ।

धर्मनिरपेक्षता और भारत का संविधान -

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है । यहाँ "अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता है । लोक-व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अंत:करण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा।[6]" भारत में अब भी धर्मनिरपेक्षता की स्थापना में कहीं कहीं गडबडियाँ होती हैं । इस बीसवीं सदी के अंतिम चरण में भी जबकि ज्ञान, विज्ञान और प्राद्योगिकी अपनी चरम सीमा को छू चुकी है, व्यक्ति की महत्ता को आंकने की कसौटी कुछ लोगों केलिए जाति या वर्णव्यवस्था है । दरअसल भारतीय कलेबर का एक कलंक है छुआछूत । मनुष्य मनुष्य को जाति के नाम पर उच्च या नीच समझना मनुष्यत्वहीनता है । ब्राह्मण और शूद्र दोनों में आकार में, या विकार में कोई अन्तर नहीं है । हाथ में चोट लगनेपर दोनों के शरीर से रक्त ही बहते हैं । शूद्र होने के कारण उस के शरीर से पानी नहीं निकलता है । बुद्धि में या शक्ति में भी अन्तर नहीं है । शूद्र के शिशु होने पर उस के चार पैर नहीं होते हैं । मानव की सृष्टि परमेश्वर ने की । तब केवल दो ही जाति थी - पुरुष और स्त्री । प्रपंचोत्पत्ति से आज तक मनुष्य-सृष्टि में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । जाति-विचार फिर कैसे आया ? मनुष्य ने ही मनुष्य को गुलाम रखा । शक्ति जिन में थी, उसने शक्तिहीन को

---

6. भारत का संविधान भाग 3, 25,1, पृ.3

अपना गुलाम बनाया । भारत में इस जाति-चिन्ता की जड़ें सदियों की गहराई तक पहुँची हुई हैं । यहाँ विदेशी शासकों ने आक्रमण किया कई बार । उसके भी पहले जाति-विचार कायम था । मुसलमानों ने या ब्रिटीशों ने इसे यहाँ किसी नियम के द्वारा कायम नहीं रखा था । फिर उन विदेशियों ने अपनी शासन नीति सुरक्षित रखने की सोच की ।

अस्पृश्यता

आर्य-अनार्य, ब्राह्मण-शूद्र, सवर्ण-अवर्ण शहरीली-जंगली, गोरा-काला, आदि अनेक नामों से इस छुआछूत की भावना से भारतीय साहित्य के पाठक परिचित हैं । सड़क से चलने, मन्दिर जाकर पूजा करने, पाठशाला में प्रवेश पाने, यहाँ तक कि शूद्र युवतियाँ छाती पर कपडा पहनने तक में कडी नियंत्रण निर्धारित थे । शूद्र को भैंस के जैसे बिकने और उस पर कोडा चलाने का अधिकार उसके सवर्ण मालिक रखते थे ।

इस "जाति-पिशाच" से अपने को बचाने में निम्न जातिवालों को ही परिश्रम करना चाहिए । ऐसे परिश्रम के अभाव ने उन को ऐसा तिरस्कृत ही बनाया । ब्राह्मण की गुलामी और मुसलमानों की या ब्रिटीशों की गुलामी में शूद्र ने अन्तर नहीं समझा । इसलिए ही 1947 तक भारत गुलामी में जकडी रही । अस्पृश्यता निवारण के बारे में गान्धीजी ने बहुत अधिक भाषण दिये और लिखे भी थे । गान्धीजी के विचार में - "अस्पृश्यता रूपी पाप, दण्ड या विषैले साँप को हिन्दुत्व से नाश न करें तो एक दिन वह उस का संहारक होगा । हिन्दू धर्म से अस्पृश्यों को बहिष्कृत करने की अपेक्षा उन्हें अपने धर्म के सदस्य समझ कर

आदर और सम्मान करना चाहिए[7]।"

छुआछूत और अस्पृश्यता की समस्या वर्तमान समाज का अत्यन्त पेचीदार प्रश्न है जो हिन्दू समाज में सदियों से धर्म के नाम पर व्याप्त एक अनिवार्य अंग बन गयी है। समाज की जडों को हिला देने वाली इस समस्या के बारे में गान्धीजी का कथन कितना सच है - "अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं, बल्कि उसमें घुसी हुई सडांध है, वहम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, उस का परम कर्तव्य है। यदि यह अस्पृश्यता समय रहते नष्ट न की गई तो हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज का अस्तित्व ही संकट में पड जाएगा[8]।"

हरिकृष्ण प्रेमी ने छुआछूत की भावना को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय एकता में बाधक माना है। उन की इस राय की अभिव्यक्ति "सांपों की सृष्टि" की बेगम महरू के शब्दों में झलकती है - "जब तक हिन्दुस्तानी विभाजित रहेंगे, एक दूसरे के दुख दर्द में शामिल नहीं होंगे, जब तक सारे हिन्दुस्तानी एक जाजम पर बैठकर खाना नहीं खा सकेंगे - जब तक इन के यहाँ आठ घरों केलिए नौ चूल्हों की ज़रूरत रहेगी, तब तक अलाउद्दीन के अत्याचारों को कौन रोक सकता है? जो भारतीय विदेशियों से लडते समय भी युद्ध करने की अपेक्षा छुआछूत पर ही अधिक ध्यान रखते हैं उन का उद्धार कैसे हो सकता है[9]।"

---

7. "Untouchability is a sin, a grievous crime, and will eat up Hinduism, if latter does not kill the snake in time. Untouchable should no longer be the outcastes of Hinduism. They shoud be regarded as honoured members of Hindu society and shoud belong to the varna for which their occupation fits them." The Problem of Untouchability in India : Mahatma Gandhi, p.141.

8. गान्धी विचार दोहन, पृ.41 [गान्धी विचार धारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव - डॉ.अरविन्द घोष, पृ.77 से उद्धृत,प्र.सं.1973]
9. सांपों की सृष्टि हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.30, प्र.सं.1959

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में किसी धर्मावलम्बी को बलात् दूसरे धर्म में शामिल करने की ज़रूरत नहीं है । धर्म प्रचार केलिए बलात्कार बेवकूफी है । हरिकृष्ण प्रेमी ने धर्म के नाम पीडा देने का उदाहरण दिया है । अपने पिता अलाउद्दीन ने दक्षिण के आक्रमण के समय अनेक निरीह ग्रामीणों की हत्या करायी थीं जिन की सूचना खिज़रखाँ देवल को देता है "हिन्दू मुसलमान, काला-गोरा, छोटा-बडा, ऊँच-नीच, ये सारे भेद हमारी दृष्टि के दोष से उत्पन्न हुए हैं । मैं ने अब्बाजान की आज्ञा पाकर युद्धों में अनेक बार भाग लिया है, निरीह ग्रामों को, जिन का राजाओं के युद्धों से कुछ भी संबंध न था, खाक में मिलते हुए देखा है । उस समय मैं नहीं समझ पाया कि जिन ग्रामों को हम जलाकर राख का ढेरा बना रहे हैं उन में भी हमारी ही तरह इंसान बसते हैं । हमारी उनसे कोई सहानुभूति न थी - क्योंकि वह हमारे धर्म को माननेवाले नहीं थे ।"[10] "खिज़रखाँ" के मन में दूसरे धर्मावलंबियों से मनुष्य के रूप में बर्ताव करने की आवश्यकता का स्वर गूँज उठता है । इस परिवर्तित विचार को "भीष्मसाहनी" ने "कबिरा खडा बजार में" दर्शाया है । कबीर कायस्थ के से बोलते समय यों कहता है - "सुनिये साहिब, मैं हूँ तो नीच जात का अनपढ जुलाहा, पर एक बात तो मैं भी समझता हूँ । जब किसी की नज़र में एक ब्राह्मण है और दूसरा तुर्क, तब तक वह इन्सान को इन्सान नहीं समझेगा । मैं इन्सान को इन्सान के नाते गले लगाने केलिए मन्दिर के सारे पूजा-पाठ और विधि अनुष्ठान छोडता हूँ और मस्ज़िद के रोज़ा नमाज़ भी छोडता हूँ । मैं इन्सान को इन्सान के रूप में देखना चाहता हूँ ।[11]

---

10. सापों की सृष्टि हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.108, तृ.सं.1966
11. कबिरा खडा बज़ार में भीष्मसाहनी, पृ.8।

मुगल सम्राट औरंगज़ेब और पुत्री मेहरुन्निसा के वार्तालाप के बीच में पिता के सामने शासन-सम्बन्धी कार्यों में जाति या धर्म को मिलाने के विरुद्ध वह कहती है - "सम्राट को चाहिए कि वह किसी भी धर्म से अपना सम्बन्ध न रखे। वह यह न करे कि मस्जिदें बनवाये और मन्दिरों को तुड़वाये। उच्च पदों पर धर्म के आधार पर नहीं योग्यता के आधार पर नियुक्तियां करे। सभी धर्मों के अनुयायियों पर समान कर लगाये जायें और समान सुविधायें उन्हें दी जायें। जहाँपनाह, सम्राट के लिए प्रजा के सब लोग उस की सन्तान है। एक सन्तान से प्यार और दूसरी से घृणा करने का परिणाम साम्राज्य रूपी परिवार के सर्वनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता।[12] अक्सर युवा पीढी परम्परागत धर्म के सिद्धान्तों का तिरस्कार करनेवाले होते हैं। बुद्धिवाद की कसौटी पर कसने से कई सिद्धान्त खरा नहीं उतरते हैं। जाति के नाम पर नारी को सीमारेखा खींचना युवक बेमूल समझते हैं। "अलग-अलग रास्ते" में पूरन युवा पीढी का प्रतिनिधि है जो अपने पूर्वजों के विचारों का खण्डन करता है। पूरन की बहन रानी पति के घर से लौट आयी है। पिता के विचार में ब्राह्मण स्त्री रानी को पति के घर लौट जाना ही चाहिए, वहाँ की मुसीबतों अत्याचारों को सहकर दम-घुटने पर भी पति के विरुद्ध कुछ सोचे बिना रहना चाहिए। धर्म के अनुसार शूद्र नारी का पुनर्विवाह समाज सम्मत है, पर ब्राह्मण नारी पुनर्विवाह नहीं कर पाती। अपनी बहन के पक्ष में पूरन पिता के विचारों का खण्डन करते हुए कहता है "जहाँ तक मनुष्यता का सम्बन्ध है ब्राह्मण और चाण्डाल में कोई अन्तर नहीं, और फिर ब्राह्मण की लड़की का दिल चाण्डाल की लड़की से बड़ा नहीं होता और न वह पत्थर ही का[13]।" "कबिरा खड़ा बाज़ार में" का कबीर और मित्र मिल कर जाति-भेद मिटाने के लक्ष्य से सड़क पर

---

12. आज का मान हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.81 वं.सं.2022 विक्रम
13. अलग अलग रास्ते उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.111

सत्संग और भण्डारा लगाते हैं । कोतवाल को कायस्थ यों समझाता है इस से धर्म की मर्यादायें टूटेंगी, जात-पाँत के नियम टूटेंगे । हमने सुना है यह बीमारी काशी में ही नहीं फूटी है, देश के और स्थानों में भी फूट रही है, कुम्मी - कमीने इकट्ठा हो रहे हैं ।"[14] कबीर और मित्र पुलिस का मार खाकर भी जाति-पाँत के विरुद्ध के काम में लगे रहते थे ।

भारत विशाल, धनसंपन्न, कला कौशल पूर्ण देश है । सदियों से भारत के गुलाम रहने के कारणों पर विचारते समय यह मानना पडता है कि हम ने भारत के लोगों को अपना भाई समझना नहीं सीखा है । विभिन्न संस्कृतियों ने हम पर शासन किया, भारत से छोटे देश भी भारत पर आक्रमण करके हमें गुलाम बना रहे थे । एक मात्र कारण भाई चारे का अभाव है । हरिकृष्ण प्रेमी ने "उद्धार" के सुजानसिंह के द्वारा हमारी जाति-व्यवस्था पर चोट करायी है - "संसार में भारत जैसा महान, धन धान्यपूर्ण कला कौशल निपुण दूसरा देश कौन सा है, फिर भी शताब्दियों से इस देश पर विदेशियों को आक्रमण करने का साहस हो रहा है, इतने बडे राष्ट्र को अनेक बार पराजय और स्वाधीनता का अभिशाप सहना पडता है सो कब किस पाप से, इसलिए कि हम भाई को भी भाई नहीं समझते हैं । हम जातियों में विभाजित हैं । एक दूसरे से घृणा करते हैं । शत्रु संख्या में भी कम होकर हम पर विजय पाता है क्योंकि बहुसंख्या में होकर भी एक रस नहीं, एक अनुशासन में नहीं ।"[15]

वर्ण-व्यवस्था और वर्ग विभाजन भारतीय समाज का अभिशाप है । अपनी निम्न वंशीयता के कारण, स्वतंत्रता के 43 वर्ष के बाद भी, बहुतों को घृणा और तिरस्कार ही मिलते हैं । जीवन के

---

14. कबिरा खडा बज़ार में भीष्मसाहनी, पृ.84

15. उद्धार - हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.89-90, चं.सं.1956

अच्छे अच्छे अवसरों से वंचित निम्नवर्गीय के सामने सवर्ण वर्ग उच्चस्तरीय हो जाते हैं। ऐसी हालत में अवर्णों के मन में विद्रोह की भावना फूटना स्वाभाविक है। अवैध सन्तान समाज में उपेक्षित है। अपना अवैध रहने में, उस का कोई दोष नहीं है। एक निर्दोष को अपने जीवन में सामाजिक अपमान सहना पडता है, लोक लाज से माता के बचने के साथ ही साथ ऐसी सन्तानों को माता पिता के प्रेम, ममता से वंचित रहना भी पडता है। भगवतीचरण वर्मा ने "मेरे नाटक" में एक जारज पुत्र का, अपमान-सहन व्यक्त किया है। "कर्ण" को, सूत-पुत्र कहकर अपमानित होना पडता है।

द्रौपदी के स्वयंवर में सभी राजा उपस्थित थे। स्वयंवर की शर्त - जो लक्ष्य बेधकरे उसके साथ द्रौपदी शादी करेगी - सुनकर कर्ण के मन में द्रौपदी के प्रति प्रेमभाव पैदा हुआ। लक्ष्यवेध केलिए निकले कर्ण को द्रौपदी ने "सूतपुत्र" कहकर अपमानित किया -
"कर्ण! रुको, तुम सूत पुत्र क्या कर्ण हो? मुझको वरने का अधिकार तुम्हें नहीं, राज सुता मैं कृष्णा हूं, यह जान लो। वर्णहीन तुम केवल दर्शक-भर रहो।"[16] कर्ण के मन में चोट लगी, प्रतिहिंसा की भावना से वह ओतप्रोत हुआ। माता-पिता के प्रेम से वंचित, समाज में अकेलापन महसूस किये कर्ण को सुयोधन ने सेनापतित्व दिया तो कर्ण उस पर अधिक प्रभावित हुआ और अर्जुन-वध केलिए प्रतिज्ञाबद्ध भी।

कर्ण के मन में अपनी माता के प्रति बिलकुल श्रद्धा नहीं है, क्योंकि उसने दो गलतियां की, एक अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न पुत्र कर्ण को, लोक लाज से बचकर राजसी सुख भोगने के उद्देश्य से गुप्त में छोड दिया, दो, भरी सभा में जाति के नाम पर कर्ण की अवहेलना करने पर माता ने

---

16. मेरे नाटक भगवतीचरण वर्मा, पृ.187

सत्य नहीं कहा । इसलिए माता के प्रति घृणा उसके मन में बढ़ती है - "माता ! पावन ममता की संज्ञा परम प्रार्थी हूँ तुम व्यंग्य न यों उसका करो, मैं हूँ एक कलंक मात्र जो त्याज्य है उसे पुत्र कहकर संबोधित मत करो ।"[17]

भगवतीचरणवर्मा ने नाटक में यह व्यक्त किया है कि धर्म के प्रतिनिधि कृष्ण भी युद्ध में शूद्र कर्ण के विरुद्ध है । धर्मात्मा कृष्ण के आदेश से अर्जुन ने बाण चलाकर कर्ण को मार गिराया ।

जाति के नाम पर शिक्षा-दी जानेवाली एक सभ्यता भारत में कायम थी । चाहे अक्षरज्ञान हो, या अस्त्र-विद्या के अधिकारी ब्राह्मण और क्षत्रिय थे । शूद्र पाठशाला के आँगन तक पादस्पर्श न कर पाता था । शंकरशेष ने "एक और द्रोणाचार्य" के द्वारा इस सत्य का परामर्श किया है । गुरु द्रोण और अर्जुन ने जंगल में भौंकते कुत्तों के मुँह को अस्त्रों से बन्द करने की एकलव्य की धनुर्विद्या देखी । एकलव्य ने इस बीच अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं ने द्रोणाचार्य की मूर्ति को गुरु बनाकर अस्त्र विद्या सीखी है । दस वर्ष पहले एकलव्य को अनार्य जानकर द्रोणाचार्य ने पढाने की प्रार्थना तिरस्कृत की थी भी । लेकिन जब एकलव्य से गुरुदक्षिणा के रूप में द्रोणाचार्य ने उस के दाहिने हाथ का अँगूठा माँगा तब दुःखी एकलव्य ने द्रोणाचार्य से कहा - "अँगूठा देने के बाद मैं क्या रह जाऊँगा ? आप आशीर्वाद दे रहे हैं या शाप ?"[18] एकलव्य ने द्रोणाचार्य को अपना अँगूठा दिया । अनार्य के अँगूठे कटवाने से द्रोणाचार्य ने उस की सीखी आयुध कला का अपहरण ही किया है । इस घृणित काम के पीछे शूद्र की प्रगति और सम्मान रोकने का गूढ-तंत्र छिपा रहता है ।

17· मेरे नाटक : भगवतीचरण वर्मा, पृ·192

18· एक और द्रोणाचार्य शंकरशेष, पृ·52

शिक्षा द्वारा शिष्यों की आँखों में ज्योति देने केलिए निश्चित गुरु, यहाँ जाति के नाम पर शूद्र एकलव्य का अँगूठा कटवाता है ।

नीच कुल की युवतियों के साथ उन्नत वंशज युवकों का यौन-सम्बन्ध स्थापित होना, फिर युवति और अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न शिशु को छोड देना आदि निन्द्य कार्य समाज में चले आ रहे हैं । जाति की चिन्ता युवतियों के साथ जोडना, बाद में जाति के नाम पर गर्व करना यह तो निर्लज्जता का काम है । संरक्षक में ऐसा प्रसंग मिलता है । अवैध पुत्र के बडे होने पर अपनी माता को छल किये पुरुष पिता से वह कहता है - आदर का ऊँचा सिंहासन झाबुआ नरेश अर्थात् मेरे पिताजी ने एक दिन मेरी माता के रूप सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे आदर के ऊँचे सिंहासन पर बैठाना चाहा था । और ऐसा आदर किया कि आज उस की बेटी स्वयं महाराज की पुत्री - एक दासी पुत्र से अधिक कुछ नहीं । स्वयं तुम्हारे पिताजी ने एक दासी को आदर के ऊँचे सिंहासन पर बैठाया था । किन्तु वह आदर उस के पुत्र तुम्हारे पुत्र से उत्पन्न पुत्र, तुम्हारे भाई गोवर्धन को राजपूत समाज में ऊँचा न उठा सका ।[19]"

जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक "कोणार्क" में कोणार्क मन्दिर का प्रधान शिल्पी विशु ने अपनी प्रेमिका सारिका को अपने द्वारा हामिला बनते जानकर इसलिए छोड दिया कि वह शबरी जाति की थी ।[20]" यौन-सम्बन्ध केलिए, नैमित्तिक सुख पाने केलिए छल करने केलिए जाति एक प्रतिबन्ध नहीं हुआ था विशु को । पर भविष्य में शबरी का पति कहला जाना उस केलिए अपमान जनक उसने जाना । विशु की कायरता का

---

19. संरक्षक प्रेमी, पृ.17

20. कोणार्क माथुर

तिक्त फल भविष्य में उस के अवैध पुत्र धर्मपद को ही भोगना पडा ।

जाति के नाम पर शासक को बनाना और बिगाडना घोर अन्याय है । लेकिन अक्सर ऐसा देखा जाता है । भारत के सम्बन्ध में, शासक वर्ग आर्य ही रहना चाहिए ऐसा एक हठ किसी किसी के विचार में है । जगदीश चन्द्र माथुर ने पहला राजा के माध्यम से इस निन्द्य कार्य पर प्रकाश डाला है । ब्रह्मावर्त के राजा अंग के पुत्र वेन ने एक अनार्य कन्या के साथ सम्बन्ध रखा । पिता और पुत्र में इस विषय पर अनबन बना और राजा अंग ब्रिमार्त चला गया । मुनियों ने फिर वेन को राजा बनाया । वेन की मृत्यु के बाद ब्रह्मावर्त के शासक के रूप में वेन की अवैध सन्तान कवष को मानने से मुनिगण इनकार करते हैं । रक्त की शुद्धता की दुहाई देनेवाले मुनि लोग अनार्य को शासक बनाना नहीं चाहते हैं । वे आर्य पृथु को पहला राजा बनाते हैं । राजा बनने के बाद पृथु ने अपने को साथ दिये तीनों मुनियों को मंत्रिमण्डल के सदस्य बनाये । पुरोहित मंत्री के रूप में शुक्राचार्य, ज्योतिष मंत्री के रूप में गर्ग और अत्रिमुनि अमात्य के रूप में बन जाते हैं । ऐश्वर्य संपन्न धरती के शासक के रूप में पृथु विराजते हैं । इस बीच देश भर में अकाल, भुखमरी फैलते हैं ।

राजा जनता से संपर्क करने लगे तो शुक्राचार्य ने उसे अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहा । जनता से राजा को अलग रखने केलिए आचार्य ने समझाया कि ब्रह्मावर्त में अकाल पडने का एकमात्र कारण, वहाँ के अनार्य और उनके नेता कवष हैं । भूवण्डिका की पूजा में वे फिर लगे रहे । इस बीच उर्वी से उन की भेंट हो जाती है । परिश्रम के द्वारा पैदावार बढाने का उपदेश सुनकर कवष के नेतृत्व में वह शुरू होता है । कवष के उपदेशानुसार पृथु ने बाँध-निर्माण शुरू किया । शुक्राचार्य और मुनि लोग बाँध के निर्माण में गुप्तरूप से बाधाएँ डालते हैं ।

इस कारण बाँध के पूर्ण होने से पहले ही बडी बाढ आती है और उसमें कवष और सखी उर्वी बह जाते हैं । शुक्राचार्य ने यह समझा कि यदि बाँध समाप्त होगा तो अपना पद नष्ट होगा कवष और उर्वी को मंत्रिमंडल में स्थान मिलेगा । अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए जनता की भलाई में वह बाधा डालता है । पृथु चारों तरफ से मुनियों के षड्यंत्र से घेरा था । पृथु अनार्यों को मित्र बनाना चाहता था, पर आर्यों और मुनियों के जाल से बाहर न निकल सकता है ।

स्वतंत्र भारत की राजनैतिक घटनाओं से मिलती जुलती घटनायें नाटक में दिखायी गयी है । अनार्य होने के कारण तिरस्कृत कवष समाज विरोधी बने बिना समाज हितैषी बनता है । अनार्य होने के कारण काली त्वचावाले उस ने मेहनत करके, नहर खोद कर पानी निकालने की सहायता की है । "कवष की काली चमडी के नीचे एक शुभधारा ही बहती है ।"[21] इस नाटक में, आर्य-अनार्य भेद भाव भूल कर परिश्रम करने पर भारत की वर्तमान गरीबी, भुखमरी आदि खत्म होने की चेतावनी दी गई है । लेकिन जाति-पाँति के वक्ता मुनिगण और पुरोहितगण इस में कहाँ तक साथ देंगे, इस पर भविष्य ही उत्तर देनेवाला है ।

जाति-भेद-प्रथा से भारत में हुई अवनतियों पर प्रकाश डालते हुए "सापों की सृष्टि" में गुजरात नरेश की पत्नी कमलावती अपनी पुत्री देवल से जो कहती है, वर्तमान भारत की हालत में भी विचारणीय है । वर्ण-भेद भारत केलिए अभिशाप है । ब्राह्मण लोग

---

21. पहला राजा जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.27

शूद्र जनता का तिरस्कार करते हैं। उन में योग्यता होते हुए भी मानेंगे नहीं। अलाउद्दीन के द्वारा पकडी गई कमलावती दिल्ली महल में रहती है। मुसलमानों से हिन्दुओं को बहुत कुछ सीखने को है, जिस के बारे में कमलावती कहती है - "मैं ने देखा कि इनके पास बहुत कुछ ऐसा है जिसे हमें ग्रहण करना चाहिए। हमारा गुजरात का ही एक शूद्रदास अपनी योग्यता और गुणों से आज सुलतान का प्रमुख सेनापति और वजीर बन बैठा है। क्या कोई हिन्दू राजा किसी शूद्र को इतना ऊंचा उठा सकता था ? हमने ऐसे संकुचित दायरे बना रखे हैं कि उनके बाहर योग्य-से योग्य व्यक्ति भी नहीं निकल सकता। प्रतिभाएँ बंद सीमाओं में मुरझा जाती है। इस तरह राष्ट्र की शक्ति का विनाश होता है[22]." कई विदेशी भारत के शासक बने, सदियों से। शायद इस का मूल कारण यही होगा कि जातीयता के कारण निम्न वर्ग प्रगति में अवरुद्ध पाकर निराश थे। उन्नत वर्गों से सोलहों आने शासित वे विदेशियों को रोकने को तैयार नहीं हुए। क्योंकि भारत का या बाहर का दोनों उन केलिए बराबर होंगे। इसलिए अपनी सडी गली हालत मे शायद विमोचन की चाह करते हुए निम्न वर्गों ने विदेशियों के विरुद्ध कदम उठाया न होगा। सुल्तान के द्वारा सेनापति बनाया गया शूद्र काफूर, ब्राह्मण राजा की पत्नी कमलावती से घृणा पूर्ण स्वरों पर कहता है - "मैं इस दुर्भाग्य को कभी नहीं भूल सकता कि मैं ने भारत की शूद्र जाति में जन्म लिया है, जिस के स्पर्श से उच्चता और पवित्रता के अभिमानियों की पवित्रता नष्ट होती है। जिन भारतीयों से काफूर ने सदा तिरस्कार ही प्राप्त किया है उनके प्रति किसी प्रकार की ममता उसके हृदय में तो हो ही कैसे सकती है[23] ?"

---

22. सांपों की सृष्टि हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.21 (तृ.सं.1966)
23. वही, पृ.38

भारत की धार्मिक हालत सदियों से समान रूप से चलती आ रही है । करीब छः सौ साल के पूर्व कबीर के ज़माने में जो धर्मान्धता, अनाचार, आदि प्रचलित थे, वे सब वर्तमान भारत में भी मौजूद हैं । हिन्दू और मुसलमान के बीच जो कलह था, हिन्दू और हिन्दू के बीच जो असमानताएँ थीं, वे वर्तमान समाज में भी उपलब्ध हैं । हिन्दुओं के बीच में ब्राह्मण और शूद्र में जो भेदभाव था, अब भी मौजूद है । भीष्मसाहनी ने "कबिरा खडा बजार में" कायस्थ और कोतवाल के वर्तालाप से यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं में अनेक विभाग हैं । काशी निवासी कायस्थ, कोतवाल के सन्देह-निवारण करता हुआ कहता है - "धर्म के तो सब हिन्दू ही हैं साहिब, पर हिन्दू धर्म के अन्दर भी बहुत से धर्म-सम्प्रदाय हैं । अब आपको कैसे समझायें [24] ।" कुरुक्षेत्र के महन्त के काशी आगमन के समय सडकों पर किये जाने वाले साज-सजावट के साथ साथ सडक पर हवा में चाबुक चलाते हुए एक साधु के चलन को कायस्थ इस पर परामर्श देता है - "यह नीच जात के लोगों को रास्ते पर से हटाने केलिए, मालिक । झाँकी पर किसी कमीन का साया नहीं पडना चाहिए [25] ।" महन्त के आगे आगे दो सेवक झाडू से सडक बुहारते आगे बढते हैं । एक साधु चाँदी के पात्र से सडक के दायें - बायें बीच में छिडकाव करता जाता है । छः साधुओं के कन्धे पर रखी चाँदी की पाल्की पर महन्त बैठा हुआ है । इस के बाद महन्त के पैर धोने का दृश्य दिखाया गया है । चरणों को धोने पर, नीचे गिरनेवाला जल, अनेक स्त्रियाँ-पुरुष अंजुली में ले-लेकर पीते हैं [26] ।" ऊपर हमने देख लिया शूद्र मनुष्य के चले मार्ग को झाडू करके, गंगा-जल छिडके साफ किया जाता है और ब्राह्मण का पैर धोकर भक्त-जन पिया करते हैं । शूद्रा को देखना या छूना वा उसके चले मार्ग से चलना तक निषिद्ध है ।

---

24. कबिरा खडा बजार में भीष्मसाहनी, पृ.29

25. वही, पृ.32

26. वही, पृ.33

इस समाज में कबीर एक ऐसा मनुष्य है जो ब्राह्मण विधवा के पेट में जन्म लेकर जुलाहे के परिवार में पाला जाता है । लेकिन लोगों को कबीर की जाति मालूम नहीं है । इसलिए तुर्क समझ कर ब्राह्मण लोग कबीर को मारते हैं । नीमा के मुँह से कबीर की माता की जाति खुल जाती है तो कबीर यों कहता है - "कोई हिन्दू पूछेगा तो कहूँगा नीमा मुसलमानिन का बेटा हूँ ...... । इस से हिन्दू भी कोडे नहीं मारेंगे और तुर्क भी कोडे नहीं मारेंगे.."[27] कुंती पुत्र होने के कारण स्वयंवर सभा में तिरस्कृत कर्ण,[28] निषाद सुत होने के कारण आचार्य द्रोण के अन्याय के शिकार बना एकलव्य[29] शूद्र जाति में जन्म लेने से बाह्मण गुजरात नरेश से तिरस्कृत और बाद में अलाउद्दीन द्वारा सेनापति के रूप में पुरस्कृत काफूर,[30] शिल्पी विशुके द्वारा शबरी स्त्री से उत्पन्न, पर उपेक्षित धर्मपद[31] अनार्य होने के कारण मुनिगणों से राजपद प्राप्ति से वंचित "कवष"[32], ब्राह्मणी का उपेक्षित पर जुलाहा का पाला पोसा कबीर[33] ये सब स्वतंत्र भारत की उपेक्षित जनता के प्रतिनिधि हैं जिन की हर सुविधा जाति के नाम पर ठुकरायी जाती है ।

सुविधा भोगी वरेण्य सवर्ण निम्न जातियों को पनपने का अवसर तक नहीं देता है । ऐसे वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में शंकर शेष ने अपने नाटक में द्रोणाचार्य को दिखाया है । द्रोणाचार्य अपनी धनुर्विद्या ब्राह्मण और क्षत्रियों को मात्र सिखाना चाहता है क्योंकि द्रोणाचार्य के मन में यह डर था - "धनुर्विद्या पर उन का अधिकार हो जाएगा,

---

27. कबिरा खडा बज़ार में भीष्म साहनी, पृ.26
28. मेरे नाटक भगवतीचरण वर्मा, पृ.187
29. एक और द्रोणाचार्य शंकर शेष, पृ.52
30. सांपों की सृष्टि हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.38
31. कोणार्क - माथुर,
32. पहला राजा माथुर
33. कबिरा खडा बजार में भीष्मसाहनी

शक्तिशाली होने के बाद ये क्षत्रियों से स्पर्धा करेंगे और परिणाम होगा वर्णाश्रम धर्म पर संकट।[34]" उदयशंकर भट्ट ने भी अपने नाटक "गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण"[35] में इस महान आचार्य की कापुरुषता की भर्त्सना की है।

शंकर शेष ने "बाढ का पानी चन्दन के द्वीप" में स्पष्ट किया हैकि जातिवाद हमारे देश का सब से बडा आन्तरिक दुश्मन है जिस मे देश की प्रगति में रुकावट आयी है। अपने कर्म के अनुसार लोगों को विभिन्न जाति-श्रेणियों में बाँटी यह अन्धी व्यवस्था पुराने जमाने से जड पकड कर आज तक आते आते पल्लवित महावृक्ष हो गयी है। व्यक्ति की गणना जहाँ उस की प्रतिभा के अनुसार करनी चाहिए थी, वहाँ उस की गणना जाति के नाम पर की जाती है। उन्नत कुल-जात व श्रेष्ठ जातिवाले, निम्न श्रेणी के लोगों को घृणा पूर्ण नयनों से देखते हैं। "छीतू" जन्म से चमार, पर कर्म से बडा है। वर्तमान समाज में पली दिमागों की अस्पृश्यता को नाटककार ने "ठाकुर" के माध्यम से व्यक्त किया है - "पण्डित, भगवान क्या ब्राह्मण केलिए अलग, ठाकुर केलिए अलग और अछूत केलिए अलग पानी बरसता है? सब पानी एक है। फरक केवल हमारे दिमाग में है।[36]" उस जगह में बरसात के कारण जो बाढ आयी है यह सब मकानों में पहुँच गयी। बाढ के कारण लोग जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग भेद भूल कर बचने केलिए दौडे। वहाँ इस बाढ ने नये मनुष्य को जन्म दिया। वे सब जाति-भेद भूल कर एक ही जगह रहने और एक ही बर्तन से खाने लगे। प्रकृति ने वहाँ के जाति-वैर को भुला दिया। मन्दिर के द्वार लोगों केलिए खोल दिये गये। पँडित के

34· एक और द्रोणाचार्य शंकर शेष, पृ·54

35· गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण उदयशंकर भट्ट, पृ·80

36· बाढ का पानी चन्दन के द्वीप डॉ·शंकर शेष, पृ·43

घर में अस्पताल बना, बरकत के घर में सूचनालय । इस प्रकार मन्दिर, घर, सब जगह ऐक्यता का झंडा फहराया जाता है । इस बाढने गाँव वालों के मन के हज़ारों वर्ष पुराने जाति-पाँत को धो डाला । बाढ से उन की संपत्ति नष्ट हुई, पर मन पवित्र हुआ । उनमें फिर भी किसी किसी के मन में थोडा मालिन्य रहता है । "बटेशर" के मन से अस्पृश्यता की बाढ को दूर करने केलिए "नवल" का उपदेश यों है "इस बाढ से बचने का एक ही उपाय है कि जिस प्रकार इस टीले पर मृत्यु के भय के कारण धीरे धीरे हम एक हो गये, उसी तरह हम सुख में, समृद्धि में, संघर्ष में भी एक रहें । यह टीला चन्दन का द्वीप बने । इस का सन्देश सारे जीवन की नई सुगन्ध बने ।"[37]

हमारे संविधान के अनुसार, "अस्पृश्यता" का अन्त किया जाता है और उस का किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है । अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा ।"[38] लेकिन राजनैतिक नेता अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए जनता में वर्ग-भेद रखना चाहते है । क्योंकि विभिन्न जाति के नाम पर नेता रहना वे चाहते हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अस्पृश्यता-समस्या पर विचार किया है । "अब गरीबी हटाओ" में हरिजनों को पानी भरने केलिए अलग कुए रखने का परामर्श मिलता है । अपनी झोंपडी के निकट पानीवाला कुआ है । पर वह ब्राह्मणों का है । हरिजन औरत को उस कुए से पानी भरने का अधिकार नहीं है । उसे पास के गाँव से पानी लाना पडता है । चुनाव के समय राजा के आगमन के वक्त ग्रामीण हरिजनों की अभ्यर्थना मानकर

---

37. बाढ का पानी चन्दन के द्वीप डॉ.शंकर शेष, पृ.62

38. "Untouchability" is abolished and its practice in any form is forbidden. The enforcement of any disability arising out of 'untouchability' shall be an offence punishable in accordance with law."
The Constitution of India Part III, 17, p.6

कुए खोदने का आदेश दिया जाता है - "मंत्री, इसके गाँव में एक कुआँ खोदवा दो। यह हमें अच्छी लगती है।"[39] इस प्रसंग से तीन समस्यायें हमारे सामने आती हैं, 1, उस गाँव में छुआ छूत, पानी भरने में भी है, 2, उस गाँव के सभी हरिजनों के वोट का मूल्य एक कुआँ है, 3, राजा को यह हरिजन औरत अच्छी लगती है। इसी नाटक में हम देखते है कि हरिजन औरत के साथ पुलिस, सरकारी कर्मचारी और अंत में राजा लैंगिक-क्रिया में लगते हैं। याने एक ओर, जाति के नाम पर हरिजन औरत को ब्राह्मण के कुए से पानी भरने नहीं देता दूसरी ओर हरिजन औरत के साथ यौन-क्रिया निषिद्ध नहीं है।

उच्च वर्ग कभी भी यह नहीं चाहते कि निम्नवर्ग हरिजन आदि अपने समकक्ष बने। वे उन्हें हर प्रकार से दबाये रखकर उन पर अपना आधिपत्य स्थिर रखना चाहते हैं। इसलिए ही सरपंच गाँव में हरिजनों केलिए कुआँ खोदने नहीं देता है। सरपंच कहता है - "उनकी जमीन नहीं है गाँव में। कहाँ खोदेंगे ? फिर कुआँ खुदवा देंगे तो साले सिर पर चढने लगेंगे। बराबरी की हवस लग जाएगी।"[40] वास्तव में स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ ही साथ प्रजातंत्रोदय एवं धर्मनिरपेक्षता से भारत में ब्राह्मण-हरिजन, अमीर गरीब समस्या खतम हो गयी है। लेकिन कुछ लोग उसे बनाये रखने में ही अपनी कुशलता मानते हैं। यहाँ धरती, पानी, हवा सब पर सब का समान अधिकार चाहिए था। गान्धीजी ने ठीक ही कहा है - "समाजवाद एक सुन्दर शब्द है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, समाजवाद में समाज के सारे सदस्य बराबर होते हैं, न कोई नीचा और न कोई ऊँचा। किसी आदमी के शरीर में सिर इसलिए ऊँचा नहीं है कि

---

39. अब गरीबी हटाओ सक्सेना, पृ.34

40. वही, पृ.26

वह सब से ऊपर है और पांव के तलुवे इसलिए नीचे नहीं है कि वे ज़मीन को छूते हैं । जिस तरह मनुष्य के शरीर के सारे अंग बराबर हैं, उसी तरह समाज रूपी शरीर के सारे अंग भी बराबर हैं । यही समाजवाद है।[41]" लेकिन दौर्भाग्य की बात है कि गान्धी जी का स्वप्न अधूरा ही रह जाता है । अस्पृश्यता, जातिभेद, ऊँच-नीच के भाव, आदि भारत की प्रगति में अवरोध डाले हुए हैं । "स्वतंत्रता के मिलते ही यहाँ हिन्दू-मुसलमानों में मारकाट, लूट खसोट, हत्या, अपहरण बलात्कार आदि देश-व्यापी हो गये जिस के परिणाम स्वरूप समस्त देश में घृणा-द्वेष-बर्बरता का नग्न नृत्य होने लगा जिस से यह प्रतीत होने लगा कि इन्सान मर गया । जीवन-पर्यन्त साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले महामानव गान्धी की हत्या इसी साप्रदायिकता के कारण जनवरी 30, 1948 ई॰ को कर दी गई ।[42]" दर असल हरिकृष्ण प्रेमी का "बापा रावल" इसी साप्रदायिकता को कोसता है - "मैं ने ऐसे समाज में जन्म पाया जो मनुष्य और मनुष्य में अन्तर मानता है ।[43]" "आन का मान" में जाति-पाँति की संकीर्ण भावना पर कुठाराघात करते हुए "प्रेमी" ने "दारा" से कहलवाया है - "मनुष्य मात्र को मैं अपने जिगर का टुकडा समझूँगा, जाति-धर्म की सीमाओं को लाँघ कर हमें केवल मनुष्य बनना है । इसी आदर्श केलिए जीऊँगा और इसी केलिए मरूँगा ।[44]" जाहिर है समाज में मौजूद जातियों की सीमायें कृत्रिम है जो मनुष्य को दुर्बल बनाती है, मनुष्यता को टुकडा टुकडा कर देती है ।

---

41. साबरमती का संत यशपाल जैन, पृ॰97
42. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - विचार तत्व अवधेशचन्द्र गुप्त, पृ॰164
43. प्रकाश स्तंभ हरिकृष्ण प्रेमी, पृ॰108
44. आन का मान प्रेमी, पृ॰66

मुँह में राम, बगल में छुरी

आज कल भक्ति या धार्मिकता धन और नाम कमाने का एक उपकरण बन गया है। स्वतंत्र-भारत में धार्मिक खोखलापन चारों ओर दर्शनीय है। आम जनता की अज्ञता का लाभ उठाने केलिए राजनैतिक नेता और धर्म के नेताओं की गलबाही हो रही है। उनके बारे में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने, शर्मा जी और बेनीमाधव के वार्तालाप से इस जलते सत्य की ओर इशारा किया है कि धर्म के नेताओं के वेष में चलनेवाले भेडिये मेमने के चमडे पहने हुए हैं। शर्माजी यों कहता है - "सुन्दर भोजन, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर स्त्री पर, धन, कीर्ति, यश, दुनिया इन सब चीज़ों पर समाज के मुखिया कहते बहुत हैं ... करते कुछ नहीं, या सडक पर जिसे पाप समझते हैं, कमरे में उसी की उपासना करते हैं। अपने भीतर एक बार देखो तो मालूम होगा। हम जिस सफाई के साथ अपने पुण्य का विज्ञापन देते हैं, अगर इसी सफाई के साथ, अपने पाप का विज्ञापन देते, मुझे पूरा विश्वास है, हम लोगों की नैतिक दशा आज की स्थिति से कहीं अच्छी होती।[45]" धर्म के अगुआ लोग अपने भाषण से समाज में प्रभाव डालते तो हैं, पर अपने कर्म से अक्सर दुष्ट निकलते हैं। कथनी और करनी में बहुत अन्तर रहते हैं।

पुराने ज़माने से ही धर्म को समाज में प्रमुख स्थान है। इस कारण धार्मिक पुरोहितों और पादरियों का समूह में आदरणीय स्थान है। अपने अनुयायियों से समर्थन मिलने के कारण इन में बहुत अधिक घमण्ड करते हैं। इसलिए वे पुरोहित समाज के निम्न स्तर के लोगों की उपेक्षा करते हैं और धनवान का पक्षधर बनते भी हैं। धनवान, अत्याचारी

45. मुक्ति का रहस्य लक्ष्मीनारायणमिश्र, पृ.61

होने पर भी धर्म के द्वारा पोषित होना स्वाभाविक है । अवधेश चन्द्रगुप्त ने सत्य ही कहा है - "धर्म के ठेकेदारों द्वारा मनुष्य का शोषण कर धनसंग्रह करना तथा ऐसे संग्रहीत धन का कुछ प्रतिशत मन्दिर और धर्मशाला निर्माण आदि धार्मिक कार्यों पर व्यय करना तथा शेष धन का भोग विलास के रूप में उपयोग करना आदि पूँजीवादी प्रवृत्ति और धर्म के व्यापार-व्यभिचार का यथार्थ चित्रण प्रसादजी ने अपनी नाट्य कृति में किया है क्योंकि धर्म की आड में व्यभिचार और व्यापार करना सब से बडा सामाजिक पाप है ।"[46] धर्म के नाम पर एक और आदर पानेवाले और दूसरी ओर अन्याय करते फिरनेवाले धर्म के अगुओं से दूर रहने केलिए बेबिल में ऐसा परामर्श मिलता है - "···· शास्त्रियों से चौकस रहो, जो लम्बे वस्त्र पहने हुए फिरना, और बाजार में नमस्कार, और आराधनालयों में मुख्य मुख्य आसन और जेवनारों में मुख्य-मुख्य स्थान भी चाहते हैं । वे विधवाओं के घरों को खा जाते हैं, और दिखलाने केलिए बडी देर तक प्रार्थना करते रहते हैं, ये अधिक दण्ड पा एंगे ।"[47]

भीष्म साहनी ने "हानूश" में पादरी द्वारा घडी निर्माण केलिए हानूश को वज़ीफा देने की बात व्यक्त की है । दस साल तक वे आर्थिक सहायता करते रहे । घडी निर्माण पूर्ण न हो जाने के कारण पादरी ने वजीफा बन्द कर दिया क्योंकि अपना धन व्यर्थ खर्च करना वे नहीं चाहते थे । आगे भी वज़ीफा मिलने के विचार से पादरी के पास गये हानूश को पादरी "शैतान" बुलाता हुआ कहता है - "घडी बनाना इन्सान का काम नहीं, शैतान का काम है । घडी बनाने की कोशिश करना ही खुदा की तौहीन करना है । भगवान ने सूरज बनाया है, चाँद बनाया है, अगर उन्हें घडी बनाना मंज़ूर होता तो क्या वह घडी

46· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - विचार तत्व अवधेश चन्द्र गुप्त, पृ·162

47· मरकुस 12 38-40 {धर्मशास्त्र - नया नियम, पृ·68}

नहीं बना सकते थे ? [48] ।" यहाँ हम देखते हैं कि ईसाई पादरी हानूश को "शैतान" पुकारता है जो धर्मशास्त्र के ही विरुद्ध है । यीशु के उपदेशों में ऐसा सिखाया गया है - "जो कोई अपने भाई पर क्रोध करेगा, वह कचहरी में दण्ड के योग्य होगा और जो कोई अपने भाई को "निकम्मा" कहेगा वह महासभा में दण्ड के योग्य होगा, और जो कोई "अरे मूर्ख", वह नरक की आग के दण्ड के योग्य होगा ।" [49] धर्म प्रचारक के वेष में हानूश के देश में रहे पादरी जिस परमेश्वर के नाम नाम के प्रतिनिधि है, उन्हीं के ही उपदेशों का तिरस्कार करते हुए, मनुष्य का तिरस्कार करते हुए, भाई का तिरस्कार करते हुए देशवासियों के और शासक के आदर पाते रहते हैं ।

भीष्म साहनी ने धर्म के नाम पर शोषण के मुँह में पडी स्त्री का नग्न चित्रण "माधवी" में दिखाया है । महाराजा ययाति की दान प्रियता ने अपनी पुत्री "माधवी" को अनेक युवकों के साथ धर्म के नाम पर व्यभिचार कराया । मुनिकुमार गालव से गुरु दक्षिणा के रूप में आठ सौ अश्वमेधी घोडे गुरु विश्वामित्र ने माँगी । गालव ने दानी राजा ययाति के पास अपनी बात कही तो ययाती ने उसे अपनी पुत्री "माधवी" को दिया । गालव और माधवी अयोध्या नरेश हर्यश्च के पास पहुँचे । वहाँ माधवी ने एक वर्ष रह कर हर्यश्च केलिए एक पुत्र को जन्म दिया । दो सौ घोडे वहाँ से मिले । फिर गालव और माधवी काशी नरेश दिवोदास के पास और बाद में

---

48. हानूश भीष्म साहनी, पृ.42

49. "... Any one who is angry with his brother will be subject to judgment. Again, any one who says to his brother, 'Raca', is answerable to the sanhedrin. But any one who says 'you fool' will be in dangr of the fire of hell."
Holy Bible, p.1090.

ाज उशीनर के पास पहुँचे । एक एक वर्ष दोनों राजाओं के साथ
र माधवी से एक-एक पुत्र उत्पन्न हुए । इस प्रकार चार सौ घोडे
मले । फिर माधवी गालव को ऋणमुक्त कराने केलिए विश्वामित्र
श्रम में एक वर्ष रहती है । तीन राजाओं से छ: सौ घोडे पाने
माधवी ने तीन पुत्रों को जन्म दिया और चौथे के आश्रम में
ही । शिथिल माधवी को गालव स्वीकार करता भी नहीं ।
हम देखते हैं कि पिता का यश फैल गया, गालव ऋणमुक्त हुआ,
राजाओं ने एक-एक चक्रवर्ती पुत्र पाये ।

अयोध्या के राजा माधवी के लक्षणों की जाँच करता है ।
ीं राजा को जन्म देने की माधवी की क्षमता राजसभा में अंकित
है - "जिस युवति की पीठ सीधी हो, कपोल तथा नेत्रों के
ऊँचे हो, स्तनयुगल तथा नितम्ब ऊपर को उठे हो, कमर पतली
केश, दन्त, हाथ, पैर की ऊँगलियाँ कोमल हो, कण्ठस्वर गंभीर हो,
गहरी हो, स्वभाव स्थिर और तालू, जीभ तथा होंठ लाल हो,
चक्रवर्ती राजा को जन्म देने की क्षमता होगी ।" माधवी के शरीर
रनेवाले मनुष्यत्वहीन अन्यायों के सहती हुई वह गालव से पूछती है
क्या हो रहा है गालव ? तुम मुझे कहाँ ले आये हो ? मेरे साथ
जन्म का वैर चुकाने आये हो ? मैं ने कौन-सा ऐसा पाप किया
जिस का यह फल मुझे मिल रहा है ?"[50] "माधवी" में अपने धर्म से
लत पिता का, पुत्र लाभ के मोह में एक स्त्री को एक-एक वर्ष साथ
व्यभिचार करनेवाले तीन राजाओं का, गुरुदक्षिणा चुकाने केलिए
, युवति के साथ
ाले मुनिकुमार का अन्यायपूर्ण हृदयहीन व्यवहार नाटककार ने व्यक्त
है । इनराजा, महाराजा, मुनि, गुरु के देश में धर्म कैसे पनपेगा ?

माधवी भीष्मसाहनी, पृ.32

इतना होते हुए भी साधारण जनता के मन में धर्म के प्रति एक प्रकार की रुचि रहती है । जनता की अन्ध भक्ति का लाभ उठाकर विलासमय जीवन बितानेवाले तथा सारे नैतिक मूल्यों को पैरों तले रौंदनेवाले जालिम और फरेबी धार्मिक नेता आज धर्मक्षेत्र में इकट्ठे हुए हैं ।

धर्म के नाम पर धर्मान्धता करना अज्ञता के द्वारा होता है । महाप्रभु के नाम पर देवदासी के रूप में युवतियों के समर्पित करने की प्रथा कई अनैतिक कार्यों केलिए कारण बनते हैं । एक ओर ऐसी युवतियों के प्रति अभिभावकों द्वारा अन्याय होता है तो दूसरी ओर मंदिरों के कई युवकों द्वारा कामो त्तेजित होकर व्यभिचार केलिए प्रोत्साहित करना है । लक्ष्मीकान्त वर्मा ने "तिन्दुवुलम" द्वारा इस की पुष्टि की है । नाटक का देवव्रत एक धर्मान्ध पिता है जिस ने अपनी बेटी पद्मावती को देवदासी के रूप में दीक्षित किया है । देवदासी के रूप में अपनी पुत्री को सौंपने के बारे में पिता का विचार ऐसा है - "मैं ने केवल महाप्रभु की सेवा की है, संगीत और स्वरों को मैं ने मनुष्य को नहीं सुनाया है, मैं ने अपना सब कुछ उसी एक महाप्रभु को अर्पित कर दिया है । मेरे पास कुछ नहीं है । यह पद्मावती भी मेरी नहीं है, महाप्रभु की दासी है । मैं स्वयं अपना नहीं हूं, केवल प्रभु का हूं ।"[51]

मेमने के वेश में भेड़िये -

धर्म के नेता के रूप में विराजनेवाला है आचार्य सत्यदर्शन । अपने मन्दिर में नृत्य करनेवाली देवदासियों के साथ गुप्तरूप में यौन-सम्पर्क करनेवाले के रूप में सत्य दर्शन दर्शाया गया है । देवदासी राधा के साथ सत्य दर्शन के अवैध सम्बन्ध से जनित पुत्री है विपुला जिसे भी देवदासी बनायी गयी है । सत्यदर्शन अन्धा हो जाता है तो पश्चाताप के साथ उस का कथन इसका प्रमाण है - "महाप्रभु के

---

51. तिन्दुवुलम लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.23

मन्दिर में रहने पर भी मैं देवता के अस्तित्व को नहीं समझ पाया।"[52]

धर्म की नींव ईश्वर पर केन्द्रित रहना परमावश्यक है। लेकिन अक्सर ऐसा देखा जाता है कि ईश्वर के नाम पर निकलनेवाले कपट भक्त मंदिरों में अपनी राय चलाने लगते हैं। ईश्वर मनुष्य की भलाई करनेवाले होते हैं। लेकिन भक्त के ढोंगी हो जाने पर समाज केलिए हानिकारिक निकलना स्वाभाविक है। इसलिए ही सत्यदर्शन मार्ग के भक्तों के ऊपर से रथ चक्र आगे बढाने की अनुमति देता है और अपने दुश्मनों की मृत्यु की चाह करता है "वह क्यों लहरों में डूब नहीं जाता।"[53] धर्म के प्रवर्तकों को दुश्मनी सोचना या करना नहीं चाहिए। पर यहाँ हम देखते हैं कि आँखों की ज्योति नष्ट होने से पहले ही सत्यदर्शन की आत्मा का दीप बुझ गया था।

गेरुए वस्त्र पहनना, गले में रुद्राक्ष-माला डालना, दाढी बढाना आदि दूसरों से आदर पाने केलिए काफी हैं। भोले-भाले भक्त लोग इनके बहकाव में बहुत जल्दी आते हैं। पाप नाशक और शान्ति-दाता के नाम पर घरों में पधारनेवाले स्वामी महेश्वरानन्द का चित्रण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने किया है। रहने को महल, सैर को कार वाला स्वामी गरीबों से हवन केलिए चन्दा वसूल करता है। सत्यव्रत स्वामी के विलासमय जीवन और यज्ञ-हवन की आलोचना करते हुए कहता है "मेरा मन धन के दुरुपयोग से चिन्तित है। जितने का आप घी और अन्न जला दोगे, उतने में स्कूल और अस्पताल खुल सकते हैं।"[54] ग्रामीणों की अन्धभक्ति का लाभ उठाकर विलासमय जीवन बितानेवाले कपट वेषी भक्त आज सर्वत्र दर्शनीय हैं।

---

52. तिन्दुवुलम लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.92
53. वही, पृ.30
54 लडाई सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ.56

धार्मिक पुरोधा भक्तों को अपने जाल में फंसाता है। उन भक्तों के मस्तिष्क को धो डालने में वे सफल निकलते भी हैं। भीष्मसाहिनी ने "माधवी" नाटक में राजज्योतिषियों द्वारा "माधवी" की अपूर्व सिद्धियों के बारे में प्रवचन उदाहरण के रूप में बताया है - "माधवी के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले बालक चक्रवर्ती राजा बनेंगे, साथ ही माधवी एक अनुष्ठान के द्वारा चिर कौमार्य भी प्राप्त कर सकती है।"[55]

लडकियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध बौद्ध मठों में भिक्षुणी के रूप में माता-पिता की इच्छा के अनुसार भेज देने की कई घटनायें होती हैं। जब वे लडकियाँ युवतियाँ बनती हैं तब उनके मन में दूसरी युवतियों की जैसी कामनायें उदित होना और शादी करने केलिए परिश्रम करना या घुट घुट कर अपने यौवन को कोसती हुई या किसी पुरुष के पीछे मठों से भाग जाने की घटनायें अक्सर हुआ करती हैं। लक्ष्मीनारायणलाल ने "दर्पन" के द्वारा ऐसी घटनायें सूचित की है। "पूर्वी" अपनी बहिन के बारे में, आत्मकथा को दूसरा रूप देकर कहती है "जब वह तीन साल की थी, तभी हमारे परिवार के गुरू ने उस की जन्म पत्री बनायी गुरु महाराज ने बताया लड़की घर परिवार में रखने योग्य नहीं है। इसे बौद्धमठ में दे दिया जाना चाहिए, नहीं तो इस से पूरे परिवार का अमंगल होगा। इस प्रकार वह दर्पन पाँच वर्ष की अवस्था में बौद्ध मठ में दान कर दी गई।"[56] किसी रेल यात्रा के बीच मिले युवक हरिपदम के साथ युवति बुद्धभिक्षुणी दर्पन, वेष और नाम बदल कर शादी केलिए तैयार होकर आयी है शादी निश्चय का समाचार हरिपदम के पिताजी अखबार से ही समझते हैं। इस पर पिताजी कहते हैं -"एक अनजान लड़की रेल की यात्रा में मिल गई। ज़रा-सी प्रेम की बातें हो गई। बस उससे शादी तय![57]

55· माधवी : भीष्म साहनी, पृ·22

56· दर्पन लक्ष्मीनारायणलाल, पृ·33

57· वही, पृ·10

सात्विक जीवन बिताने केलिए स्वयं तैयार होनेवाले और दूसरों के हित की पूर्ति केलिए सात्विक जीवन केलिए थोपे जानेवालों में बहुत अन्तर है । कामवासना मनुष्य की सहजवृत्ति है । उसे काबू में करके संयमित जीवन बिताना सबों से आसान नहीं है । कुछ ऐसे लोग होते हैं जो संयमी होकर सात्विक जीवन केलिए तैयार होते हैं । लेकिन दूसरों के द्वारा सात्विक जीवन केलिए, तापसी जीवन केलिए मज़बूर होनेवाले कभी असली जिन्दगी जी नहीं सकते हैं । जानकी वल्लभ शास्त्री ने "पाषाणी" में राजकुमारी अहल्या के विचलित यौवन का चित्र खींचा है । अहल्या के बचपन में ही, माता-पिता की वादा पूर्ति केलिए, बूढे गौतम के साथ वह ब्याही जाती है । अहल्या के माँ-बाप निस्सन्तान थे । उन्होंने ऋषि गौतम से मनौती करके वरदान के रूप में अहल्या पायी थी । लेकिन एक शर्त पर ही मुनि ने वरदान दिया था कि पहली सन्तान उन्हें सौंप देनी थी । इस प्रकार अहल्या की शादी बूढे से हुई ।

आश्रम की शांति और संयमन से अहल्या ऊब गई स्वप्न में उस की मुलाकात इन्द्र से हुई । जागकर अहल्या पति के पास जाती है । मुर्गे की बाँग सुनकर स्नान-तपन केलिए निकले पति से उसने अनुरोध किया :-

"डर रही मैं किन्तु अपने आप से ।
मत अकेले छोड तुम जाओ कहीं,
करो सन्ध्या, साम या गाओ यहीं ।"[58]

पर-पुरुष इन्द्र के रूप-सौन्दर्य में अटक गया अहल्या का मन स्वप्न-दृश्य भूल नहीं सकता । अपने जीवन को निरर्थक मानकर वह यों दुखती है -

"मैं असफल ही तो हूँ, पर इस जीवन को क्या करूँ ?

---

58. पाषाणी जानकी वल्लभ शास्त्री, पृ.94

ज्ञान न पाया, मिली न माया, मर मर कर फिर क्या करूँ?[59]

गौतम की कमज़ोरियों से अवगत अहल्या अपने पति से कहती है -

"मैं युवति, तुम जर्जरित, इस जलते से सत्य को,

धर्मज्ञान तप बुझा न पाये, जला न पाए तथ्य को।"[60]

पत्नी की विवशता से परिचित मुनि मूर्छित हो गया। उसके मुँह से सहसा निकला - "पाषाणी" "पाषाणी"।

पति के द्वारा पर पुरुष चाही पत्नी को "पाषाणी" शब्द से पुकारते ही सांसारिक मोह जाल में फंसी अहल्या की नारी चीखती है -

नारी हूँ, यह है बात प्रथम
नारी हूँ, स्वीकृत घात चरम
अन्तर्द्वन्द्व में जले मुझे
जीवन की तृष्णा कहानी हूँ।
कैसे कहते पाषाणी हूँ?"[61]

सन्तान-प्राप्ति के मोह में पड़कर अहल्या के माता-पिता ने जो वादा किया था वह अहल्या के जीवन का शाप बन गया। तपोवन तो बिल्कुल शान्त है। बूढ़ा पति भी ठंडे राख के समान है। लेकिन अहल्या के शरीर से प्रवहित रक्त गरम-गरम है। उस प्रशान्त तपोवन में उस का मन बिल्कुल अशान्त है। निराशा पूर्ण उस का मन अपने वश में नहीं है।

पर-पुरुष के पीछे जाने केलिए इच्छुक विवाहित नारी का सर्वनाश होना ही चाहिए ऐसा हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं। लेकिन यहाँ एक सत्य अवशेषित है - अहल्या ने पर-पुरुष-प्राप्ति क्यों चाही?

---

59. पाषाणी - जानकी वल्लभशास्त्री, पृ.100

60. वही, पृ.100

61. वही, पृ.101

कारण, क्या वह बूढा नहीं है ? अपने बुढापे में भी ऋषि की लालसाओं ने अहल्या को "पाषाणी" बनायी है । यहाँ धर्म का प्रतिपुरुष, बूढे गौतम को और संयम सीखना अनिवार्य है । धर्म के नाम पर बूढे पुरोहितों, ऋषियों के हाथ, युवतियों को सौंप देनेवाले माता-पिता के अन्धविश्वास भी सराहनीय नहीं है ।

पुरानी धारणाओं के अनुसार रोग, महामारी, गरीबी, भूकंप आदि देवी-देवताओं के कोप के कारण समझे जाते थे । इस धारणा से कपट-भक्त साधारण लोगों को बहका करते थे । जीविका चलाने के मार्ग के रूप में धर्म का दुरुपयोग भी किया करते थे । वृन्दवनलाल वर्मा ने "खिलौने की खोज" के पुत्तूलाल को इस प्रकार के कपट-भक्त के रूप में चित्रित किया है । बाजे बजने पर व पूजा शुरू होने पर पुत्तूलाल के सिर पर देवता आते हैं । लोगों के प्रश्नों के समाधान के रूप में पुत्तूलाल के देवता बोलते रहते हैं । ताल गाँव के लोगों की अन्ध भक्ति का लाभ उठाते पुत्तूलाल और मित्र उन के नेता भी बन चुके थे । कुओं में दवाई डालने केलिए आये सेनीटरी इंस्पक्टर और सरकार के नौकर को शिवरानन्द, पुत्तूलाल और ग्रामीण अनुयायी मिलकर रोकते हुए कहते हैं - "तुम लोग आ गये धर्म में विघ्न डालने ! कुओं में दवाई नहीं गिर सकेगी इस समय; कुओं में दवाई डालने से खाँसी ज्वर की बीमारी फैलेगी ।"[62]

धर्म की आड में सामान्य जनता पर शासन चलाने की तंत्र-रचना आदि काल से ही राजाओं के द्वारा चलती आ रही है । निरंकुश शासक अपनी सत्ता बनाये रखने केलिए कल्की अवतार रूपी भविष्य सुख की काल्पनिक आशा दिलाकर जनहृदयों में प्रलोभन और आकर्षण जगाते हैं । शासक, जनता को अज्ञानी, अन्धविश्वासी और परंपरा से भयभीत बनाकर प्रश्नहीन करा रहे हैं । कल्की नगर के निरंकुश शासक है अकुलक्षेम । उस नगर में "प्रश्न करना महापाप है ।"

---

62. खिलौने की खोज वृन्दावनलाल वर्मा, पृ. 68
63. कल्की लक्ष्मीनारायणलाल, पृ. 9

लेकिन राजा के पुत्र में बचपन से भी प्रश्न करने की आदत हुई तो पिता ने उसे वहाँ से दूर भेजा । जनता को प्रश्नहीन करने केलिए वहाँ शवसाधना शुरू हुई । जनता ने ऐसा विश्वास किया - "एक सहस्र शव साधना पूरे होते ही नगर में कल्की अवतार होगा । जैसे ही कल्की अवतार नगर में आएगा यह सारा देश धन-धान्य से भर जाएगा, रोग अंधकार सब मिट जाएगा, वह धरती पर सत युग लायेगा ।"[64] हेरूप को कुछ समय केलिए अवधूत एक तांत्रिक की सहायता से अपने मनोनुकूल बनाने में सफल हो गया । हेरूप के अभिषेक केलिए आये हुए तांत्रिक ने तारा के कुमार यौवन का भार गगन तुला पर तोल कर यह घोषित किया कि वह अपवित्र है - "तेरी आँखों में अंजन है, तेरी त्रिबली में समीर है । तू ने ध्वज तोडा है, तू ने सम्बीज फोडा है ।"[65] तांत्रिक ने फिर तारा को गो आसन पर स्थिर करके उसकी पीठ पर बैठकर उसे पवित्र किया ।

तंत्र-साधना, शव-साधना आदि पुराने तंत्र थे । लेकिन वही आज का प्रजातंत्र है । शव-साधना की पूर्णता कब रहेगी ? " जब औंधे पडे हुए शव का मुख, उस की पीठ पर लदे हुए साधक की ओर घू जाएगा, और जब वह जीवित मनुष्य की भाँति उससे बातें करेगा । क्या यह आज के राजनीतिक परिवेश में पड़े हुए मनुष्य केलिए सच नहीं है ?"[66]

धर्म, पार्टी की बपौती ??

राज-नीति और धर्म दोनों की गलबाहें देश में झगडा उत्पन्न करती है । स्वतंत्र-भारत में ईश्वर और धर्म को किसी पार्टी की बपोत्ती के रूप में स्वीकारी आ गई है । स्वतंत्रता-पूर्व ब्रिटीश-शासन काल में कुछ लोगों ने समझा कि ईश्वर अँग्रेज़ों के साथ है । स्वतंत्रता पाने के बाद उन्हीं लोगों ने यह धारणा फैलाई कि शासक वर्ग

---

64. कल्की - लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.9-10
65. वही, पृ.28
66. वही, पृ.9

के साथ है ईश्वर । ईश्वर के नाम पर इस प्रकार शासकों का शोषण चलता रहा । "बकरी" में देवी के नाम पर वोट पाने का तंत्र दिखाया गया है । ग्रामीण लोगों को बहकाकर कर्मवीर चुनाव जीतने केलिए सिपाही से ऐसा प्रचार कराता है - "अपना फैसला हम ने बता दिया । यदि यह नहीं हुआ तो खैर नहीं, पर हमें देवी प्यारी है । उसका हुक्म, हुक्म है । यदि वह कोई सज़ा कहेगी तो वह भी हमें देनी होगी। जो बदमाशी करेगा उसे परलोक भी भेजा जा सकता है । उस की कृपा से हम आदमी को ठीक करना जानते हैं । पर हम अपनी मर्जी से कुछ नहीं करेंगे । सब देवी के आदेश से होगा । हम जल्दी नहीं करना चाहते । अभी समय । खूब सोच लो ।"[67] राजनैतिक चुनाव में धार्मिक परिवेश देने की प्रथा भारत में कई सालों से चलती है । आज की राजनीति धर्म का आश्रय लेकर ही खेल रही है । इस पर धर्मान्धता को पनपने का अवसर मिल रहा है । "अवधेश चन्द्र गुप्त" का कथन इस प्रसंग में सच प्रतीत होता है - "अब धर्म पारलौकिक सुख-साध्य का माध्यम न होकर पृथ्वी पर प्राप्त स्वार्थ सिद्धि केलिए काम में आनेवाला अस्त्र मात्र बन कर रह गया है ।"[68]

आजकल धर्म के अगुए राजनैतिक दल के नेताओं के मित्र और सहचर बन रहे हैं । सन्देह की ज़रूरत नहीं कि राजनीति से सम्बन्ध लेकर धर्मप्रचारक और भक्त बन रहे हैं । चुनाव के समय वोट मिलने केलिए राजनैतिक नेता धर्म के अगुओं को कौडी पर मोल लेते हैं । "राम की लडाई" के पात्र सरजू, ममखरा, विमला, रमई आदियों को चुनाव सम्बन्धी बहुत रहस्य कहने को हैं । चुनाव की पिछली रात झोले में रुपए के साथ आनेवाले, भावन का नाम रटते हुए आनेवाले पंडित, और

---

67. बकरी सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ.45

68. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक-विचार तत्त्व, पृ.165

"राम" के वेष में नाटक करते हुए आनेवाले इस प्रकार कई लोग चुनाव के समय गाँव-गाँव घूमते हैं । ममखरा से रमई का कथन इस का उदाहरण है - "आइए बनिये राम ! आइए, लीला करने का मतलब ही यही है कि कोई भी राम बन सकता है । राम का अवतार त्रेतायुग में हुआ था, यह तो कथा है, पर सच्चाई यह है कि राम का अवतार आज भी होता है । जो चाहे वह राम हो सकता है ।"[69] वर्तमान चुनावी क्षेत्रों में "रथों" पर अवतार पुरुषों के वेष में नेताओं की यात्राएँ देखने का भाग्य भारतीय ग्रामवासियों को मिल रहा है । नाटक जीवन का अंग बन गया है ।

वर्तमान समाज में धर्म का स्थान अधर्म ने और नीति का स्थान अनीति ने ले लिया है जिस के फलस्वरूप हम अनेक प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं । नाटककारों ने अंधभक्ति का तिरस्कार करते हुए, यथार्थ धर्म को दिखाने का परिश्रम किया भी है । लक्ष्मीनारायण लाल ने "सूखा सरोवर" में सरोवर के शुष्क होने का कारण बताया है -

"मैं धर्म राज हूँ इस नगरी का
तुम सब धीरे-धीरे धर्मच्युत हो गये,
राजा से तर्क करने लगे तुम
राजा को व्यक्ति मानने लगे तुम
ईश्वर पर शंका करने लगे तुम ।
दान-पुण्य, लोकाचार, धर्माचार
सब को छोडते गये तुम
जो कुछ धर्म था, धर्म जनित कर्म था,
सबसे, सब को, सब तरह -
तोडते गये तुम ।

---

69. राम की लडाई लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.51-52

सबको आडम्बर कहा
सब को अन्धज्ञान कहा
ज्ञानी तुम बन गये
तभी धर्म ने सरोवर को सोख लिया ।"[70]

धर्म-सम्बन्धी भेदभावों के कारण ही स्वामी विवेकानन्द ने भारत को "पागलखाना" घोषित किया था । यहाँ के धर्म के इतिहास को परखने से ऐसा कहने को हम बाध्य हो जाते हैं कि विवेक शून्य धर्म-प्रवर्तन सदियों से यहाँ कायम रहे हैं । भाई-भाई धर्म के नाम पर झगडने के कारण हमारी हालत पिछडी हुई है । अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए धार्मिक अगुए लोगों को आपस में सिर तुडवाने को आह्वान करते हैं तो एक युवा पीढी इस के विरुद्ध चिन्तित हैं । "तिन्दुवुलम" का "नचिकेता" ऐसे युवकों का प्रतिनिधि है । आचार्य सत्यदर्शन प्रतिष्ठापन के दिन नृत्य के सम्बन्ध में तर्क करता हुआ अपना दुश्मन तिन्दुवुलम को वहाँ से निकाल देता है तो नचिकेता अधर्म के प्रतिआवाज़ उठानेवाले साहसी युवक के रूप में कहता है - "यदि तुम ने तिन्दुवुलम के साथ अन्याय किया तो स्वयं भगवान भी तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे ।"[71]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों के अध्ययन से यह पता चलता है कि धर्मान्धता के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली नई पीढी जागरित हुई है । विविध धर्मों के प्रति झगडे के स्थान पर समभावना रखनेवालों में हरिकृष्ण प्रेमी के "सापों की सृष्टि" की बीगम महरू, "आन का मान" की मेहरुन्निसा, "उद्धार" का सुजानसिंह, भीष्मसाहनी के "कबिरा खडा बज़ार में" का कबीर, अश्क के "अलग-अलग रास्ते" का पूरन, शंकर शेष के "बाढ का पानी चन्दन के द्वीप का ठाकुर आदि के स्वर गूँज रहे है ।

---

70. सूखा सरोवर : लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.
71. तिन्दुवुलम लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.58

अस्पृश्यता के पाश में जकडे हुए युवकों में - शंकर शेष के "एक और द्रोणाचार्य" का एकलव्य, उदयशंकर भट्ट के "गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण" का एकलव्य, माथुर के "कोणार्क" का धर्मपद, "पहला राजा" का "कवष", "प्रेमी जी" के "सांपों की सृष्टि" का काफूर, "सक्सेना" के "अब गरीबी हटाओ" के ग्रामीण हरिजन, "बकरी" के ग्रामीण जन, "लडाई" का "सत्यव्रत", आदि आते हैं, जिन की प्रगति रोकने में समाज के उन्नत धर्मवाले सदा जागरूक थे। धर्म और भक्ति के नाम पर शोषण भी हुआ करता था और अब भी ऐसा देखा जाता है। अन्धविश्वास के नाम पर महिलाओं को कई कष्ट झेलने पडे भी थे। "भीष्म साहनी" के "माधवी" की माधवी, लक्ष्मीकान्त वर्मा के "तिन्दुवुलम" की पद्मावती "लक्ष्मीनारायणलाल" के "दर्पन" की पूर्वी, "कलंकी" की तारा, जानकी वल्लभशास्त्री के "पाषाणी" की अहल्या आदि एक न एक प्रकार से पीडित नारियां हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं वर्तमान पीढी धर्म से विमुख हैं तो उस के कारण धर्म के अगुए ही है जिन्होंने अपने कार्यकलापों से लोगों को ईश्वर से मिलाने के स्थान पर तुडवाने का ही कार्य किया है। लेकिन आशा की बात यह है कि युवा पीढी धर्मभेद, जाति-वैर आदि भूल कर एक-रसता के साथ रहने के पक्षधर हैं।

अध्याय : छः

उपसंहार

उपसंहार

व्यक्ति और समाज को प्रगति सुरक्षा और शान्ति की ओर अग्रसर करानेवाले नैतिक मूल्यों का निराकरण कोई भी नहीं कर सकता है । नैतिक मूल्यों की रिक्तता किसी भी समाज को खोखला कर देगी । क्योंकि नैतिक मूल्यों के अभाव में समाज अमानवीय राहों से होकर भटकेगा । इस प्रसंग में "डॉ.कैलाश वाजपेयी" की राय बिलकुल सार्थक लगती है - "एक बार जब मूल्यों में विघटन प्रारंभ हो जाता है तो उन का प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में पड़ने लगता है । यह प्रभाव कुछ इतना सर्वांगीण होता है कि आनेवाली पीढ़ी इन्हें संस्कार रूप में स्वतः ग्रहण करती चली जाती है[1] ।" "सच तो यह है कि वस्त्रभूषा, उपभोग उपकरणों, विलास-शैलियों और बाहरी तड़क-भड़क के आधुनिक स्वरूपों को तो उन्नत देशों से गरीब देशों में आसानी से स्थानान्तरित किया जा सकता है । किन्तु मूल्यों, मान्यताओं और आदर्शों और चारित्रिक गुणों को न तो खरीदा जा सकता है और न उधार लिया जा सकता है ।

---

1. आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता डॉ.कैलाश वाजपेयी "ज्ञानोदय", पृ.19 1963-64 सितम्बर-जून

राष्ट्र के चरित्र का निर्माण बिना साधना, तपस्या और सांस्कृतिक परिष्कार के संभव नहीं।[2]"

दो विश्वमहायुद्धोत्तर परिस्थितियों ने सारी दुनिया में मानव मूल्यों को संकट की गहरी गुफा में फेंक दिया है। इस संकट का सब से बडा कारण विज्ञान के क्षेत्र में होनेवाले नये नये आविष्कार हैं जो एक ऐसी टकनीकी क्रांति का पोषण कर रहे हैं जिसकी द्रुतगति का साथ देने में मनुष्य असमर्थ है। वैज्ञानिक युग ने व्यक्ति को अर्थ की होड में लगाकर उस की सारी संवेदनशीलता, कोमलता तथा सारे मानवीय मूल्यों को तबाह कर दिया है। भौतिक उन्नति के साथ जन्म लेनेवाली आध्यात्मिक शून्यता और मूल्य हीनता धीरे धीरे मानवधाती और जीवन विरोधी मनोवृत्तियों का पोषण कर रही है।

महायुद्धोत्तर परिस्थितियों के दुष्प्रभाव से भारत भी बच न सका। स्वतंत्रता प्राप्ति के उन्माद में देश के नेताओं ने धन-पद-प्राप्ति की चाह में मूल्यों से अलग होने की प्रवृत्ति शुरू की। भारतीय साहित्यकार और बौद्धिक वर्गों ने भी नेताओं का साथ दिया। "शिव प्रसाद सिंह का कथन कितना ठीक है - "स्वतंत्रता के बाद पुरानी पीढी के बौद्धिक अपनी लडाई का भरपूर फल भोगने में लीन हो गया। जेल जाने की सर्टिफिकेटों को भुनाने का कार्य

---

2. वैज्ञानिक और औद्योगिक युग में मूल्यों का प्रश्न पूरनचन्द जोशी आलोचना, पृ.12, जनवरी-मार्च 1986

शुरू हो गया । क्या पुराने पत्रकार, क्या साहित्यकार, सभी शासन के अंग बनने चले गए । रेडियो, असेम्बली और संसद, अनेक कमीशन और कमेटियों के सदस्य बन कर पुरानी पीढी के लोग काफी सन्तुष्ट और खुशहाल बने । अपने इन्हीं कामों को उन्होंने महत्वपूर्ण मान लिया । एक ओर उनका सम्बन्ध जनता से टूट गया और दूसरी ओर वे उस आसन से भी हट गये जो साहित्यकार का असली प्राप्य होता है । यानी वे समाज और शासन के मार्गदर्शक न रहकर, सरकार के अंग बन गए । उन का नई पीढी से भी सम्बन्ध विच्छिन्न सा हो गया । इसी कारण नई पीढी को सही दिशा में अग्रसर करने के अपने उत्तरदायित्व से भी वे गिर गये[3] ।" नेताओं की ढीली, खोखली, अमानवीय, बेमूल्य जीवन-शैली को उन के अनुयायी नई पीढियों ने आँखें मूँदकर अनुकरण किया और एक मूल्यहीन पीढी का जन्म हुआ । स्वातंत्र्योत्तर भारत में औद्योगिक विकास, ज्ञान-विज्ञान की प्रगति एवं राजनीति की प्रधानता ने देश के संपूर्ण जीवन को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया । स्वतंत्रता के साथ साथ पूरे भारत वर्ष की जनता ने स्वर्णिम जीवन मूल्यों की कामना की थी । लेकिन वर्षों के बीत जाने पर जीवन के विभिन्न पडावों में से गुजरते गुजरते अपने कटु और तीखे अनुभवों से उन्होंने यह सत्य समझ लिया कि शोषण और स्वार्थ की ओट में उनकी सारी आशायें धूमिल होती जा रही है । उनकी जिन्दगी मोहभंग और आतंक की जंजीरों से जकडी गई । स्वतंत्रता के पश्चात् छा गई बेरोजगारी, महँगाई और सत्ता की भ्रष्टनीति आदि से स्वतंत्रता पूर्व देखे जनता के स्वप्न टूट गये । स्वतंत्रता के बाद नये शैक्षणिक विचारों के प्रसार से पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण के नाम पर

---

3. शताब्दी की समस्या शिवप्रसाद सिंह, आजकल, पृ.44
जनवरी 1965

भारतीय संस्कृति में संकट के क्षण उपस्थित हुए, जिस से जनता के मूल्यों में उतार-चढाव दीख पडे । यहाँ तक कि नई पीढी केलिए "भारतीय संस्कृति नाम की वस्तु अब या तो इतिहास है या समारोह ।"[4] महानगरीय सभ्यता-संस्कृति से उपजी यांत्रिक जिन्दगी ढोनेवाला मानव धीरे धीरे स्वार्थी होता गया - "उसने सुविधा तथा सुरक्षा की चादर ओढकर अपने को दूसरों की दृष्टि से छुपाने की कोशिश शुरू की उसके जीवन में मुखौटा मूल्य हो गया[5] । इस महानगरीय सभ्यता एवं यान्त्रिक जिन्दगी का अभिशाप है मानवीय रिश्तों की निर्जीवता । ऐसे विसंगत परिवेश में छटपटाते आदमी की पीडा और विवशता को संवेदनशील लेखकों ने सब से अधिक महसूस किया । सभ्यता संस्कृति में इतने बडे बदलाव से किसी भी युग का लेखक अप्रभावित नहीं रह सकता । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों ने युग की सारी विरूपताओं, विद्रूपताओं को अपने नाटकों में स्वर दिया ।

नाटककारों ने राजनैतिक क्षेत्रों में ही सबसे अधिक मूल्य विघटन को महसूस किया । डॉ॰ हेतुभरद्वाज का कथन बिलकुल सही है - "देश में जो राजनीतिक पतन हुआ है उसने नैतिकता के सभी मानक ध्वस्त कर दिये हैं[6] । अपनी प्रभुता और अधिकार जमाकर जीनेवाले सामंतवर्ग और नेता लोग आम आदमी की जिन्दगी को तंग कर देते हैं । सुशील कुमार सिंह के "सिंहासन खाली है" का राजा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के "बकरी" के तीन डाकुए नेता, अब गरीबी

---

4. संस्कृति से नया मुल्क शम्भुनाथ - नया प्रतीक, पृ॰11, अगस्त 1976
5. हिन्दी नाटक प्राक्कथन और दिशायें डॉ॰विजयकान्तधर दुबे, पृ॰65
6. परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य - डॉ॰हेतभरद्वाज, पृ॰13

हटाओ" के मुख्य मंत्री, कृषिमंत्री और सरपंच, "लडाई" के डाक्टर, रेषन इन्सपेक्टर, बृजमोहन शाह के "त्रिशंकु" का शोखबाज नेता; चन्द्र गुप्त विद्यालंकार के "न्याय की रात" का हेमन्त, लक्ष्मीनारायण लाल के "अब्दुल्ला दीवाना" का नेता, "राम की लडाई" का नेताई, "मिस्टर अभिमन्यु" का राजा, "यक्षप्रश्न" का युवक नेता सहदेव, "रक्त-कमल" का इन्द्रजीत, "ज्ञानदेव अग्निहोत्री" के "शुतुरमुर्ग" के राजा और मंत्रीगण आदि समाज के सदस्यों को एक एक प्रकार से तंग करते हुए आगे बढते हैं और ये सबके सब समकालीन राजनैतिक परिवेश के जाने पहचाने चेहरे हैं।

राजनीतिक हथकंडों को अनावृत करते हुए नाटककारों ने, जनता के प्रति सत्ता की उदासीनता दिखायी है। "राम की लडाई" के विविध पार्टी के नेता, "कल्की" के शासक वर्ग, "बकरी" के नेतागण और पुलिस, "आज नहीं तो कल" के पिछडे वर्ग के संरक्षक के रूप में आनेवाले नेता ये सब इस के उदाहरण है। नाटककारों ने उन राजनीतिज्ञों को बुरी तरह छीला है जो सत्ता के तेवरों के अनुसार रंग बदलते रहते हैं। समूह से अपने को जोडने के मूल में इन नेताओं और राजनीतिज्ञों का मकसद मात्र अपनी "करियर" को सही मायने में मोटा तगडा बनाना है न कि किसी मूल्य बोध की सृष्टि करनी है। समाज के अवसरवादी तथा दुनियादारी में कुशल कहे जानेवाले नेताओं की असली तस्वीर खींचने के प्रयास में स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने राजनैतिक मूल्यों के पतन पर ही प्रकाश डाला है।

देश की बिगडी न्याय व्यवस्था तथा उसे विकृत करनेवाले पूंजीपतियों, जमाखोरों, एवं राजनीतिक दलालों के शोषण और अन्ध स्वार्थपरता की शोचनीय हालत पर नाटककारों ने लेखनी

चलायी है । "न्याय की रात" के सदानन्द, हेमन्त, सिंहासन खाली है" के राजा एवं अनुयायी, "बकरी" के गान्धी-भक्त के रूप में गान्धी जी की बकरी के अन्वेषक और बकरी-संस्थान, बकरी-मण्डप चलाकर अन्त में "बकरी-धन" चिह्न पर चुनाव जीतकर "बकरी-भक्षक" कर्मवीर, सत्यवीर और दुर्जनसिंह, "राम की लडाई" के झोले में रुपए, पिस्तोल, हथगोला सहित चुनाव की पिछली रात घूमनेवाले नेता, "सुन्दर रस" का दुनिया के सभी लोगों को सौंदर्यवर्धक दवा बेचकर आमजनता को पिसनेवाला पण्डित राज, "कल्की" के शव साधना के द्वारा जनता को निर्वीर्य, प्रश्नहीन करनेवाले हेरूप, "शुतुरमुर्ग" के भूखे लोगों के सामने "भूख-समस्या" पर रिपोर्ट तैयार करके सुनानेवाले राजा एवं मंत्रीगण, "अग्नि शिखा का, नंगी-भूखी आम जनता को मोहित करने केलिए कौमुदी-महोत्सव और वैद्युत-दीपों से नगरी को सजाकर राज-नर्तकी का नृत्य आदि चलानेवाले राजा, "सूर्यमुख" के साधारण जनता के नंगी-भूखे रहते वक्त "वेनुरती" के पीछे पडनेवाले राजा और पुत्र, आदि आदि पात्रों के द्वारा नाटककारों ने वर्तमान भारत की शोचनीय राजनैतिक हालत का स्पष्ट चित्रण किया है ।

राजनैतिक दलों की मानव-विरोधी नीति को निर्ममतापूर्ण उघाडने के साथ साथ नाटककारों ने जनजागरण के नाद को मुखरित भी किया है ।

"न्याय की रात" की कमला और जुगल किशोर, "बकरी" का ग्रामीण युवक, "टूटते परिवेश" की दीप्ति, "अब्दुल्ला दीवाना" का चपरासी, "सूर्यमुख" के भिखारी, राम की लडाई का मसखरा, सिंहासन खाली है" की महिला, "आज नहीं तो कल" का पाँच, "यक्ष प्रश्न" का वयसवान्सलर, "अन्धा युग" का प्रहरी, "अब गरीबी

हटाओ" की हरिजन औरत, "एक कंठ विषपायी" का "सर्वहत", "कोणार्क" का धर्मपद, "एक और द्रोणाचार्य" के छात्र विमलेन्दु और कृपी, "लडाई" का सत्यव्रत, "रक्त कमल" का कमल, ये सब शोषकों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं । यहाँ यह सत्य स्पष्ट दीखता है कि समाज के सभी वर्ग - शिक्षित युवक युवतियाँ {जुगल किशोर, कमला, दीप्ति कमल} अशिक्षित युवक {बकरी का ग्रामीण युवक}, उन्नत पदाधीश {वायसचान्सलर} सरकारी दफ्तर का चपरासी, पारिवारिक जीवन बितानेवाली गृहस्वामिनी {महिला}, समाज के पिछडे वर्ग की प्रतिनिधि हरिजन औरत, मध्य वर्ग का प्रतिनिधि सत्यव्रत, कलाकार का प्रतिनिधि धर्मपद, छात्र-छात्राएँ {विमलेन्दु, कृपी} भिखारी, प्रहरी - राजनैतिक नेताओं के शोषणों से परिचित हैं और वे सब इस के विरुद्ध बोलते हैं । उन शोषित नेताओं के सामने घुटने टेक कर उन के सामने गुरुमंत्र रटने को वे तैयार नहीं है । किसी राजनीतिक नेताओं के जोशीले भाषणों ने उन्हें नहीं जगाया है बल्कि जिन्दगी के विसंगत परिवेश के कटु अनुभवों ने उन्हें जगाया है । भारत के राजनैतिक क्षेत्र में के मूल्य विघटन हुआ है उससे बचने केलिए उपर्युक्त नाटकों के पात्रों जैसे नागरिकों की हमें ज़रूरत है ।

वर्जित सामाजिक नियमों को मान्य बनाने का आग्रह लेकर लिखनेवाले लेखक समाज के प्रति अपने दायित्व को नहीं निभाता है । नारी के व्यक्तित्व की पूर्णता केलिए एक से अधिक पुरुष की आवश्यकता पर बल देनेवाली देवयानी, मनीषा, सावित्री, केशी, कंचनरूपा, जैसी नारियाँ यह सत्य भूल जाती है कि माडेन बनने के चक्कर में पडकर वे पवित्र पारिवारिक आदर्शों को गँवा देती हैं । उन्मुक्त कामवासना के चित्रण के मूल में लेखकों का मकसद पाठकों और दर्शकों को

चौंकाना है या तात्कालिक लाभ उठाना है तो उस दिशा में उन का प्रयास सराहनीय नहीं माना जा सकता है । अपनी अस्मिता केलिए प्रयत्नशील स्त्री, समाज-सम्मत सभी नैतिक मूल्यों को पैरों तले कुचल कर आत्मसुख की दौड में मस्त घूमती रहती है तो इस भ्रमण में वह अपने परिवार को भी तोडती है । डॉ. रामदरश मिश्र की राय में "यह तो मूल्यहीनता है[7] ।" "आधुनिकता" के मोह में दौडती वर्तमान पीढी नैतिक मूल्यों को भूलकर अंधेरे में टटोल रही हैं । देवेन्द्र इस्सर ने सच ही कहा है "हम एक अच्छी गली के अन्धेरे में भटक रहे हैं । हमें ज्ञात नहीं कि क्या सुन्दर है और क्या असुन्दर है । क्या शुभ है, क्या अशुभ । क्या सत्य है क्या असत्य - इसका निर्णय करने केलिए हमारे पास मूल्यों की कोई संहिता नहीं[8] ।"

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के अंतरंग विश्लेषण करने के साथ साथ कई नाटककारों की दृष्टि सामाजिक व्यवस्था में से नारी के साथ हो रहे शोषण की परतों के अनावरण में सफल रही है । "अन्धा कुआ" में पति का पाशविक व्यवहार की शिकार बन कर नारकीय जीवन बितानेवाली सूका, "मादा कैक्टस" में पति के कला सृजन केलिए मूर्त प्रेरणा और सहयोगिन न बन पाने के कारण पति द्वारा तिरस्कृत सुजाता, "रात रानी" में पति की अर्थ लिप्सा की वेदी पर अपनी सारी कोमल भावनाओं को तिलांजली देने केलिए मजबूर कुन्तल, छलावा में तीन साल तक दिन रात युवक लालू के साथ शादी स्वप्न देखकर घूमी फिरी पर दहेज के रूप में रुपए न दे पाने के कारण अविवाहित रहती बेला "अलग अलग रास्ते में दहेज देने के

---

7. खोई हुई मनुष्यता की वापसी डॉ. रामदरश मिश्र
युग स्पंदन, पृ. 7, अक्टूबर-दिसंबर 1989

8. साहित्य और आधुनिक युग बोध - देवेन्द्र इस्सर, पृ. 15

बावजूद भी पति मदन द्वारा उपेक्षित नवविवाहिता राज, "डाक्टर" में कम पढ़ी लिखी होने के कारण इंजिनीयर पति से घृणा और तिरस्कार सहती मधुलक्ष्मी, "व्यक्तिगत" में अन्य युवतियों के साथ यौन-संपर्क करनेवाले पति के कारण मानसिक संघर्ष झेलनेवाली पत्नी "वह" "वामाचार" में, दुनिया भर की स्त्रियों के साथ शारीर-संपर्क करने केलिए आजीवन भ्रमण करने वाले पाजिटीव की पत्नी, सब के सब नारी शोषण की कथा रटती हैं ।

मौजूदा व्यवस्था की कामुकता और अनैतिकता के चंगुल में फंसकर अपनी मान मर्यादा और अपने आत्मसम्मान तक खो बैठनेवाली नारियों की अन्दरूनी तकलीफ को भी नाटककारों ने उजागर किया है । "चारयारों की यार" की बिन्दिया, "बिना दीवारों के घर" की प्रिन्सिपल शोभा, पैर तले की जमीन की सलमा, तिलचट्टा की नर्स केशी, "यो अर्स फेथ फुली" की स्टेनो कंचन रूपा, "न्याय की रात" की कमला "गरीबी हटाओ" की हरिजन औरत, भीष्म साहनी की माधवी, तिन्दुवल्लम" की देवदासी युवति, रोशनी एक नदी की लड़की ये सब व्यवस्था की कामुकता में फंस कर आत्मसम्मान खो देती हैं ।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में नये मूल्यों का उदय होना ज़रूरी है । नारी तो पुरुष की दासी नहीं है और पुरुष तो नारी से तिरस्कृत भी नहीं है । दोनों का आत्मीय सम्बन्ध जन्म लेना है । एक दूसरे का पूरक और पोषक बनकर समानता का मूल्य जन्म लेना चाहिए ।

भौतिक सुखों को जीवन का सर्वोच्च मूल्य मान लेने के कारण ही हमारा जीवन दुखी हुआ है । न्याय की रात का हेमन्त, व व्यक्तिगत का "मैं", टूटते परिवेश का विवेक, पैर तले की जमीन का झुनझुनवाला, मिस्टर अभिमन्यु का कलक्टर राजन, अपनी कमाई का रिश्वतमोही वर्मा, यक्ष प्रश्न का नेता वर्मा, तिल का ताड का बनारसीदास, चिन्दियों की एक झालर का मंगल, एक और द्रोणाचार्य का आचार्य, सुन्दर रस का आयुर्वेदाचार्य पंडितराज, वसीयत के चूडामणि और धर के सदस्य, रूपया तुम्हें खा गया है का मानिकचन्द, नये हाथ का अजयप्रताप, रात रानी का जयदेव, अब्दुल्लादीवाना का युवक ये सब जीवन मूल्यों को टुच्ची समझते हुए अर्थके पीछे दौडने वाले हैं । अर्थ के पीछे दौडने से समाज में निखरती अवनतियों की तालिका देवेन्द्र इस्सर ने दी है "हिंसा, अपराध, यौन-विकार, कामोत्तेजना, परोत्पीडन, मदिरापान, नशाखोरी, नैतिक मूल्यों से विमुखता, फिल्मी-स्कैंडल, सौन्दर्यप्रतियोगिताओं और बगैर परिश्रम के एक दम धन कमाने की विधियों, स्वार्थ और अहंवाद के दृष्टिकोण को अनिवार्य समझा जा रहा है । अपरिपक्व लोग जीवन के सामान्य मूल्यों से विमुख होकर बाज़ारू संस्कृति का पोषण करते हैं।"[9] डॉ॰रामधारी सिंह दिनकरजी की उक्ति कितनी सच निकलती है "आज सभ्यता के मूल्य चालन कंचन बन गया है, सब लोग रूपयों के पीछे दौड रहे हैं क्योंकि कौडियों के मोल सब कुछ खरीदा जा सकता है। भीतर की आँखें बन्द किये लोग सुख की तलाश में बेतहाशा दौड रहे हैं।"[10]

9· साहित्य और आधुनिक युग बोध देवेन्द्र इस्सर, पृ·18

10· आधुनिक बोध रामधारी सिंह दिनकर, पृ·10 {अभिनव प्रकाश, दिल्ली}

धार्मिक क्षेत्रों में भी जनता की मूल्य निष्ठा धीरे धीरे बालू की भित्ती की भाँति ढहती जा रही है । धर्म की संकुचित गलियों में भी ऐसे लोगों की भरमार है जो सत्य का सौदा करते हैं, धर्म संप्रदाय के नाम पर वोट खरीदते हैं, रंग-भेद का साँप पालते हैं, मानव को मानव से अलग करते हैं, ईश्वर के नाम पर शपथ लेते हुए ईश्वर पर ही पहला छुरा मारते हैं । "तिन्दुवृल्म" का आचार्य सत्यदर्शन, लड़ाई का महेश्वरानन्द, जैसे लोग समाज के भोलेभाले व्यक्तियों को धोखा देकर पाप के नाश और आत्मा की शान्ति के नाम पर मनमाना अत्याचार करते हैं, साधु सन्यासी का लिबास पहनकर खूब रुपया कमाते हैं, दूसरों की खून पसीने की कमाई पर मौज उड़ाते हैं धार्मिक पाखंडों से आदमी को विवेक शून्य एवं बेजबान बना देते हैं । यह तो स्पष्ट है कि वर्तमान समाज में धर्म का स्थान अधर्म ने ले लिया है और धार्मिक संस्थाओं में अधार्मिक कार्य चल रहे हैं ।

वर्तमान समाज के विभिन्न क्षेत्रों की गतिविधियों का विश्लेषण इस सत्य की ओर तर्जनी उठाता है कि हर कहीं मूल्यों के स्वर खोखले और अर्थहीन लक्षित होते हैं । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों ने मूल्यों के प्रति इस उदासीनता को, सामाजिक सम्बन्धों की विच्छिन्नता को और व्यक्ति मन की अकुलाहट को भली भाँति महसूस किया और उसे अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी । अपने समूचे परिवेश में मूल्य मूढ़ता की यथार्थ स्थिति का अनुभव जब लेखक करते हैं तब वह उस अनुभव को झुठला नहीं सकता । "लेखक की विशिष्टता समाज के अन्दर पाये जानेवाले अन्तर्विरोध को पहचानने में और उन के कारण लोगों की जिन्दगी में पैदा होनेवाले दुख दर्द को

महसूस करने में है । उसका संवेदन इन विसंगतियों को अनुभव करता है और उन्हें सामने लाता है ।[11]" दरअसल स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों ने वर्तमान समाज की सारी विरूपताओं, विद्रूपताओं की पहचान और परख करने की भरसक कोशिश की है । इस कोशिश में वे पूर्ण रूप से सफल भी निकले हैं । प्रत्यक्षरूप में, हरेक क्षेत्र में पनपनेवाले मूल्य विघटन का चित्रण करते हुए उन्होंने जनता को मूल्यच्युति से होनेवाली भीषण विपत्तियों से अवगत कराया है और अप्रत्यक्ष रूप से मूल्यों के प्रति अपने श्रद्धा भाव को भी व्यक्त किया है । ज़ाहिर है मूल्यहीनता और सम्बन्धों की विच्छिन्नता से भरे आज के भारतीय जीवन के गहरे और तीखे अनुभवों से निर्मित स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में नाटककार विसंगतिमयी व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश का स्वर उठाते हैं, आदमी के भीतर के तलछट को ऊपर लाकर सभ्यता की गंदगी को अभिव्यक्त करते हैं, भटकी हुई मानवता को रास्ता दिखाने के साथ साथ खोई हुई इन्सानियत को वापस पाने की कोशिश करते हैं । उन का यह प्रयास बिल्कुल सराहनीय है क्योंकि "लेखक का बडा दायित्व यह है कि मनुष्य को उस की मनुष्यता वापस करा दे । मनुष्य की जो मनुष्यता कहीं कमज़ोर हो गई है, कहीं खो गई है, वह कहीं वापस हो जाय ।[12]"

----

11. विद्रोह और साहित्य सम्पादक नरेन्द्रमोहन, देवेन्द्र इस्सर, पृ.91

12. "युग स्पंदन", पृ.7 अक्टूबर-दिसंबर 1989

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची - ।

1. अंजो दीदी — उपेन्द्रनाथ अश्क
   नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982

2. अंधा कुआ — लक्ष्मीनारायण लाल
   भारती भण्डार, प्रयाग, 1956

3. अंधा युग — धर्मवीर भारती,
   किताब महल, इलाहाबाद, 1978

4. अंधी गली — उपेन्द्रनाथ अश्क
   नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1956

5. अग्नि शिखा — रामकुमार वर्मा
   राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1987

6. अपनी कमाई — राजेन्द्रकुमार शर्मा
   नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969

7. अब गरीबी हटाओ — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
   लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1981

8. अब्दुल्ला दीवाना — लक्ष्मीनारायण लाल
   राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1973

9. अलग अलग रास्ते — उपेन्द्रनाथ अश्क
   नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954

10· आज नहीं तो कल — सुशील कुमार सिंह

11· आज़ादी के बाद — विनोद रस्तोगी
कमला प्रकाशन, कानपुर, 1953

12, आधी रात — लक्ष्मीनारायण मिश्र
1957

13· आधे अधूरे — मोहन राकेश
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1971

14· आन का मान — हरिकृष्ण प्रेमी
वि·2022

15· आषाढ का एक दिन — मोहन राकेश
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1986

16· उद्धार — हरिकृष्ण प्रेमी
1956

17· एक और द्रोणाचार्य — शंकर शेष
पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1983

18· एक कंठ विष पायी — दुष्यन्त कुमार
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976

19· कबिरा खड़ा बजार में — भीष्म साहनी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1981

20· करफ्यू — लक्ष्मीनारायण लाल
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984

21. कलंकी — लक्ष्मीनारायण लाल
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969

22. कोणार्क — जगदीश चन्द्र माथुर
भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1988

23. खिलौने की खोज — वृन्दावनलाल वर्मा
मयूर प्रकाशन, झांसी, 1960

24. गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण — उदय शंकर भट्ट
भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1959

25. चार यारों की यार — सुशील कुमार सिंह
राजेश प्रकाशन, दिल्ली, 1979

26. चिन्दियों की एक झालर — अमृतराय
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969

27. चिराग की लौ — रेवती सरन शर्मा

28. छलावा — परितोष गार्गी

29. छाया — हरिकृष्ण प्रेमी

30. टूटते परिवेश — विष्णु प्रभाकर
भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, 1974

31. ठहरी हुई जिन्दगी — लक्ष्मीकान्त वर्मा
अनिल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980

32. डाक्टर — विष्णु प्रभाकर
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1963

33. तिन्दुवुलम — लक्ष्मीकान्त वर्मा

34. तिल का ताड — शंकरशेष
किताब घर, नई दिल्ली, 1990

35. तिल चट्टा — मुद्रा राक्षस
संभावना प्रकाशन, हापुड, 1973

36. तीसरा हाथी — रमेश बक्षी
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1975

37. त्रिशंकु — बृजमोहनशाह
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1982

38. दर्पन — लक्ष्मी नारायण लाल
पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी,
दिल्ली, 1984

39. देवयानी का कहना है — रमेश बक्षी,
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1972

40. नया रूप — पृथ्वीनाथ शर्मा
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1962

41. नया समाज — उदयशंकर भट्ट

42. नये हाथ — विनोद रस्तोगी
आत्माराम एण्ड कम्पनी, दिल्ली,
1967

43. न्याय की रात — चन्द्रगुप्तविद्यालंकार
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1958

44. पहला राजा — जगदीश चन्द्र माथुर
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972

45. पाषाणी — जानकीवल्लभशास्त्री
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967

46. पैर तले की ज़मीन — मोहन राकेश
राजपाल एन्ड सन्स, दिल्ली, 1975

47. प्रकाश स्तंभ — हरिकृष्णप्रेमी

48. फंदी — शंकर शेष
पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1982

49. बकरी — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1974

50. बाढ़ का पानी चन्दन के द्वीप - डॉ. शंकर शेष

51. बिना दीवारों के घर — मन्नूभण्डारी
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1975

52. ममता — हरिकृष्ण प्रेमी
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1962

53. मादा कैक्टस — लक्ष्मीनारायणलाल
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1959

54. माधवी — भीष्म साहनी

55. मिस्टर अभिमन्यु — लक्ष्मीनारायणलाल
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1971

56. मुक्ति का रहस्य — लक्ष्मीनारायण मिश्र
हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1983

57. मेरे नाटक — भगवती चरण वर्मा
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972

58. यक्ष प्रश्न — लक्ष्मी नारायणलाल
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1981

59. योअर्स फेथ फुली — मुद्राराक्षस
राजेश प्रकाशन, दिल्ली, 1975

60. रक्त कमल — लक्ष्मीनारायण लाल
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1962

61. राजयोग — लक्ष्मीनारायण मिश्र
1982

62. रात रानी — लक्ष्मीनारायण लाल
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1962

63. राम की लडाई — लक्ष्मी नारायण लाल
अम्बर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988

64. रुपया तुम्हे खा गया — भगवतीचरण वर्मा,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972

65. रोशनी एक नदी है, — लक्ष्मीकान्त वर्मा
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1974

66. लड़ाई — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
1979

67. वसीयत — भगवती चरण वर्मा
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1978

68. वामाचार — रमेश बक्षी
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1977

69. वितस्ता की लहरें — लक्ष्मीनारायण मिश्र
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985

70. व्यक्तिगत — लक्ष्मीनारायण लाल
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1975

71. शुतुरमुर्ग — ज्ञानदेव अग्निहोत्री
1968

72. संरक्षक — हरिकृष्ण प्रेमी

73. संस्कार ध्वज — लक्ष्मीनारायणलाल
श्रीराम मेहरा एण्ड सन्स, आगरा, 1976

74. सन्तोला — मुद्राराक्षस

75. सांपों की सृष्टि — हरिकृष्ण प्रेमी
बंसल एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1966

76. सिंहासन खाली है — सुशीलकुमार सिंह
लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1974

77. सुन्दर-रस — लक्ष्मीनारायण लाल
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1962

78. सूखा सरोवर — लक्ष्मी नारायणलाल
भारतीय ज्ञानपीठ,काशी, 1960

79. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक
सुरेन्द्र वर्मा
राधाकृष्ण प्रकाशन, 1975

80. सूर्य मुख — लक्ष्मीनारायण लाल
नाशनल पब्लिशिंग हाउ,दिल्ली,1968

81. हानूश — भीष्म साहनी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1977

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची - 2

1. अलबरूनी का भारत — श्री रजनीकान्त शर्मा
आदर्श हिन्दी पुस्तकालय,इलाहाबाद,
1967

2. आजकल का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव - दशरथ ओझा
राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली,1984

3. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य - डॉ.हुकुमचन्द

4. आधुनिक नाटक का मसीहा मोहन राकेश - डॉ॰गोविन्द चातक
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1973

5. आधुनिक निबन्धावली विद्या निवास मिश्र
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1976

6. आधुनिक हिन्दी निबन्ध भुवनेश्वरी चरण सक्सेना
प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 1990

7. आधुनिक हिन्दी नाटक - एक यात्रा दशक - नरनारायणराय
भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, 1979

8. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973

9. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच - डॉ॰लक्ष्मीनारायणलाल,
साहित्य भवन प्रा॰लि॰ इलाहाबाद, 1973

10. आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना - डॉ॰वीणा गौतम
संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1984

11. कृतिकार लक्ष्मीनारायणलाल- रघुवंश
लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1974

12. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास -
डॉ॰लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1973

13· धर्म तुलनात्मक दृष्टि में- डॉ·राधाकृष्णन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1969

14· धर्मशास्त्र बाइबिल समिति, बांगलूर,

15· धर्मशास्त्रों का समाज दर्शन-डॉ·गीतारानी अग्रवाल,

16· नई कविता की प्रबन्ध चेतना - महावीर सिंह चौहान

17· नई कहानी की भूमिका कमलेश्वर

18· नाटककार लक्ष्मी नारायण लाल की नाट्य साधना
नरनारायण राय
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1979

19· नाट्य परिवेश कन्हैयालाल नन्दन

20· पत्राचार पाठ्यक्रम

21· परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य - डॉ·हेतुभरद्वाज
पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1984

22· भारतीय चिन्तन परम्परा- के·दामोदरन

23· प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक - शिल्पपरक अध्ययन
टी·एन· विश्वम्भरन
आर्य बुक डिपो, दिल्ली, 1985

24· बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक - डॉ·ओमप्रकाश
सारस्वत
मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, 1984

25· भारत ज्ञान कोश 1969-70 - अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार
हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 1969

26· मार्क्सवाद और राम राज्य - श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज
गीता प्रेस, गोरखपुर, सं·2013

27· मानवमूल्य और साहित्य धर्म वीर भारती
ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1960

28· मानव समाज राहुल सांकृत्यायन
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
1986

29· मोहन राकेश का साहित्य - समग्र मूल्यांकन
डॉ· शेरश्चन्द्र चुलकीमठ

30· लेखक और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता - सं·डॉ·महीप सिंह
शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978

31· संस्कृति का दार्शनिक विवेचन - डॉ· देवराज
प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग,
उत्तर प्रदेश, 1957

32· समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - जयदेव तनेजा
तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1978

33· समकालीन हिन्दी नाटक - चेतना के आयाम - सरला गुप्ता-
भूपेन्द्र, 1987

34· समकालीन हिन्दी नाटककार - गिरीश रस्तोगी, 1982

35· साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध
डॉ·नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी, 1985

36· साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना
डॉ·जितेन्द्र वत्स
साहित्य रत्नाकर, कानपुर, 1989

37· साबरमती का सन्त — यशपाल जैन
हिन्दी पाकेट बुक्स प्रा·लि·दिल्ली,
1969

38· साहित्य और आधुनिक युग बोध - देवेन्द्र इस्सर
जय कृष्ण अग्रवाल, अजमेर, 1973

39· सुखी परिवार — पादरी मोतीलाल
दी गुड न्यूज़ ब्राडकास्टिंग
सोसाइटी, दिल्ली, 1978

40· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - डॉ·रामजन्म शर्मा
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
1985

41· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - विचार तत्व -
डॉ· अवधेश चन्द्र गुप्त
नीरज बुक सेन्टर, दिल्ली, 1984

42· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में -
श्रीमती रीता कुमार
विभु प्रकाशन, साहिबाबाद, 1980

43· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य - गांधीवाद - डॉ·कु·शैलबाला
हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, 1985

44, हिन्दी नाटक के प्रमुख हस्ताक्षर - डॉ॰ रामकुमार गुप्त
अमर प्रकाशक, मथुरा, 1980

45. हिन्दी नाटक कोश दशरथ ओझा
नेषमल पब्लिषिंग हाउस, दिल्ली, 1975

46. हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत - शशिप्रभाशास्त्री
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

47. हिन्दी नाटक और रंगमंच पहचान और परख
इन्द्रनाथ मदान
लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1975

48. हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायणलाल की रंगयात्रा -
डॉ॰ चन्द्रशेखर
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1982

49. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास - डॉ॰सोमनाथ गुप्त
हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1958

50. हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1 -

51. हिन्दी नाटकों में नैतिक चेतना का विकास - डॉ॰रामाश्रय
"रत्नेश"
विद्या विहार, कानपुर ।

ENCYCLOPEDIA

No.	Name of Book	Author/Publisher/Year
1.	Collins Concise Encyclopedia	Oxford and IBH Publishing Company, New Delhi 1977
2.	Encyclopedia Americana Vol.27	International Edition
3.	Encyclopedia Britanica 14th Edn. Vol.8	William Benton Publisher, Chicago, London
4.	Encyclopedia Britanica 14th Edn. Vol. 14	-do-
5.	Encyclopedia Britanica Vol.15	-do-
6.	Encyclopedia Britanica Vol.22	-do-
7.	Encyclopaedia of Indian events and dates	S.B. Bhattacharje: Sterling Publishers Pvt. Ltd. 1987 New Delhi
8.	Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol.8	James Hastings; New York Charles Scribner's Sons, Edinburg, T & T Clark 1922
9.	-do- Vol.12	-do-
10.	Everyman's Encyclopaedia Vol.5	J.M. DENT & Sons Ltd. London 1967
11.	Harver World Encyclopedia Vol.12	Harver Educational Services Inc. New York 1973
12.	-do- Vol.21	-do-
13.	Illustrated World Encyclopedia Vol.8	_.M.C. Woodbury - New York 1971.
14.	-do- Vol.11	-do-
15.	Johnson's Universal Cyclopaedia, Vol.5	A. J. Johnson & Co. M.T. Brown, Devanport, New York
16.	Modern Reference Encyclopedia Vol.7	American Book, Strafford Press, New York 1969
17.	New Master Pictorial Encyclopedia Vol.5	Books, Inc. New York 1955
18	-do- Vol.6	-do-

No.	Name of Book	Author/Publisher/Year
19.	New Standard Encyclopedia Vol.5	Standard Educational Corpn., Chicago
20.	-do- Vol.7	-do-
21.	The Americana Encyclopedia Vol.19	Scientific American Compiling Dept. New York 1911
22.	The Columbia Encyclopedia Vol.2	Columbia University Press New York - 1965
23.	-do- Vol.5	-do-
24.	The Encyclopedia Americana Vol.10	Americana Corporation, International Headquarters New York, 1974
25.	The Encyclopaedia Britanica Vol.15	The Encyclopaedia Britanica Co. Ltd. London, 1929
26.	The New Caxton Encyclopedia Vol.1	The Caxton Publishing Company Ltd., London 1977
27.	-do- Vol.7	-do-
28.	The New Encylopaedia Britanica Vol.4	The University of Chicago 1985
29.	The New Encyclopedia of the World.	Prof. Emrys Jones, Octopus Books Ltd., Nigeria, 1977
30.	The Universal Standard Encyclopedia Vol.15	Standard Reference Works, Publishing Co. Inc. New York, 1957
31.	The World Book Encyclopedia Vol.6	Field Enterprises Educational Corporation, Chicago, 1977
32.	-do- Vol.19	-do- 1970

REFERENCE BOOKS - 4

No.	Name of Book	Author/Publisher/Year
33.	A Short History of Educational Ideas	S. J. Curtis - University Tutorial Press Ltd., London 1958
34.	A Christian Method of Moral Judgment	J. Philip Wogaman - The Westminister Press Philadelphia, 1976
35.	An Encyclopedia of American Politics	Edwin Valentine Mitchell Doubleday and Company Inc New York - 1946
36.	Building a Character	Stanislavski - Theatre Arts Books, New York - 1949
37.	Christian Morals Today:	John A.T. Robinson - The Westminster Press, Philadelphia 1964
38.	Complete works of Shakespeare	Spring Books, London.
39.	Culture and Anarchy	Mathew Arnold - The MaCmillan Company, New York - 1925
40.	Customs and Cultures	Eugene A. Nida - William Carey Library, California - 1982
41.	Educational Psychology and Children	K. Lovell - University of London Press, London 1958
42.	History of the Freedom Movement in India	Tarachand - Publication Division, Govt. of India 1972
43.	Holy Bible New International Verson	East Brunswick, [illegible] York 1978
44.	Holy Bible	University Printing House, Cambridge, Great Britain
45.	100 Great Events that changed the World	Asian Publishing House, Bombay - 1966
46.	100 Great Modern Lives	Asian Publishing House, Bombay - 1968
47.	Indian Government and Politics	Dr. A.S. Narang - Gitanjali Publishing House, New Delhi - 1989
48.	King Henry Fourth	Shakespeare - Spring Books London
49.	Les Miserable	Victor Hugo - 1959

No.	Name of Book	Author/Publisher/Year
50.	Macbeth	Shakespeare - House of Knowledge - Trichur - 1969
51.	Merry Wives of Windsor	Shakespeare - Spring Books, London
52.	Miracle or Menance?	Robert Walgate, Panos Publication Ltd., London - 1990
53.	Moral Man and Immoral Society	Reinhold Niebuhr
54.	Nehru an Autobiography	The Bodley Head Ltd., London 1962.
55.	Psychopathia Sexualis	Dr. Richard Von Krafft Ebing - Printed in U.S.A. 1965
56.	Simons Hand Book India	A. Simon George - International Advertisers and Publishers - Madras 1966
57.	Six Existentialist Thinkers	H.J. Blackham, Broadway House, Carter Lane, London 1965
58.	Social Change in India	B. Kuppuswamy - Vikas Publishing House, New Delhi 1989
59.	Society and Religion:	Edited by Richard W. Taylor - The C.L.S. Madras 1976
60.	Sri Aurobindo	K.R. Srinivasa Iyengar - Sri Aurobindo International Centre of Education, Pondicherry, 1985
61.	Sri Aurobindo's 'Savithri'	A.B. Purani - Sri Aurobindo Ashram Trust, Pondicherry 1986
62.	Studies on Gandhi	Edited by Dr. V. T. Patil - Sterling Publishers Pvt. Ltd. New Delhi - 1985
63.	Tempest	Shakespeare
64.	The Amplified Old Testament	Zondervan Publishing House Michigan - 1962
65.	The Art of Counselling	Rollo May - Abingdon Cokes-bury Press - New York
66.	The Bible - Revised Standard Edition	W.M. Collins Sons & Co. Ltd. U.S.A. 1952

No.	Name of Book	Author/Publisher/Year
67.	The Book:	Tyndale House Publishers Inc. Illinois 1984
68.	The Christian Doctrine of Salvation	Sigfrid Estborn -
69.	The Constitution of India	
70.	The foundations of Indian Culture	Sri Aurobindo - Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry 1968.
71.	The Bible - Standard Edition	Thomas Nelson & Sons, New York 1901
72.	The International Dictionary of Thoughts - Compiled	John P. Bradley, J.G. Ferguson Publishing Co. Chicago 1969.
73.	The Joy of working	Denis Waitley and Reni L.Witt 1987
74.	The Position of Women in Hindu Civilization	Dr. A.S. Altekar, Motilal Benarsidas, Delhi - 1962
75.	The Problem of Untouchability in India	Mahatma Gandhi - Shyam Lal Saurabh Kuti Benares City 1932
76.	The Sexually Responsive Woman	Dr. Phyllis, 1966
77.	The Thompson Chain Reference Bible	B.B. Kirkbride Bible Co. Inc. U.S.A. 1964
78.	The Thought of Karal Mark	M. C. Lellan - The MaCmillan Press Ltd., London - 1971
79.	The Times of India Directory and Year Book	The Times of India Press, Bombay - 1968
80.	Traditional Societies and Technological Change	George A. Foster, Harper and Row Publishers, New York 1973.
81.	Our Democracy at Work	Warren, Prentice-Hall, Inc. Englewood Clifs N.J. 1967
82.	Wit and Wisdom of Nehru	N.B. Sen, New Book Society of India, New Delhi - 1960
83.	Young People Ask	Watch Tower Bible Society of Penosylvania - 1989

संदर्भ ग्रंथ सूची - 5

1. ईशादि नौ उपनिषद् व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं.2029

2. उपनिषद्
3. कामसूत्रम् श्रीदेवदत्त शास्त्री (व्याख्याकार) चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी 1964

4. भगवद्गीता
5. भागवत् पुराण
6. महाभारत - सबलसिंह चौहान कृत
7. मनुस्मृति मातृभूमि प्रिंटिंग एण्ड पब्लीशिंग कम्पनी, कोषिक्कोट, 1988
8. रामायण
9. श्रीमन्महाभारत् गीता प्रेस, गोरखपुर

संदर्भ ग्रंथ सूची - 6

1. अंग्रेज़ी हिन्दी कोश डॉ.हरदेव बाहरी
2. अमरकोश साहित्य प्रवर्तक सहकरणसंघम्, कोट्टयम 1959

3. हिन्दी मलयालम कोश - अभयदेव नाषनल बुकस्टाल, कोट्टयम, 1969
4. दि कन्सैस ओक्सफोर्ड डिक्शनरी - यूनिवर्सिटी प्रेस, ओक्सफोर्ड, 1958

5· अंग्रेज़ी - अंग्रेज़ी-मलयालम कोश - एन·सी· पिल्लै,
नलन्दा पब्लिषिंग हौस,
तिरुवनन्तपुरम, 1968

6· लोंगमन आक्टीव स्टडी डिक्षणरी - लोंगमन ग्रूप इंगलैंड, 1986

संदर्भ ग्रंथ सूची - 7

(मलयालम)

अब्रहाम मल्पान्टे नवीकरणम् - डॉ·एम·एम·तोमस
देव शास्त्र साहित्य प्रसिद्धीकरण
समिति, तिरुवल्ला,केरल,1978

मन:शास्त्र निघण्टु - पी·ए·जी·नायर
समस्या बुक्स, तिरुवल्ला, 1978

विश्व विज्ञान कोश भाग -	1	नाषणल बुक स्टाल,कोट्टयम,1970
	2	1970
	3	1971
	4	1971
	5	1971
	6	1971
	7	1972
	8·	1972
	9	1972
	10	1972

मलयालम विश्वविज्ञान कोश भाग - 4 स्टेट इन्स्टिट्यूट,तिरुवनन्तपुरम
1980

मनोरमा इयर बुक - मलयाल मनोरमा कोट्टयम, 1962,1982,1984
1986,1988

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची - 8

पत्र-पत्रिकाएँ

1· अतएव अंक 3, जनवरी-मार्च 1988
2· आजकल - मार्च 1989
3· आजकल - नवम्बर 1982
4· आजकल - मई 1979
5· आजकल - जनवरी 1965
6· आलोचना - जनवरी-मार्च 1986
7· आलोचना - जुलाई-सितंबर 1968
8· आलोचना - जनवरी-मार्च 1968
9· कुरुक्षेत्र - अक्टूबर 1990
10· कुरुक्षेत्र - जून 1990
11· ज्योत्सना - अक्टूबर 1990
12· ज्ञानोदय - सितंबर-जून 1963-"64
13· नई धारा - फरवरी-मार्च 1980
14· नई धारा - जून 1972
15· नई धारा - जनवरी-फरवरी 1969
16· नई धारा - मार्च 1969
17· नई धारा - अप्रेल 1968
18· नई धारा - मई 1968
19· नई धारा - अगस्त 1968
20· नई धारा - दिसंबर-जनवरी 1972-"73
21· नई धारा - सितंबर-अक्टूबर 1975
22· नया प्रतीक - जनवरी 1976
23· नया प्रतीक - मई 1976

24. नया प्रतीक - अगस्त 1976

25. नया प्रतीक - दिसंबर 1976

26. परिशोध अंक 7, 1978

27. पहल - जनवरी-जून 1990

28. माध्यम - फरवरी 1965

29. युगस्पंदन - अक्टूबर-दिसंबर 1989

30. वातायन - फरवरी 1967

31. संचेतना - दिसंबर 1990

32. समीक्षा - मई-अगस्त 1975

33. सरस्वती - जनवरी 1973

34. Documentation on Higher Education - Jan. - Dec. 1989

35. Govt. of Kerala Economic Review - State Planning Board Trivandrum 1989

36. The Illustrated Weekly of India - December 1990

37. The Week - February 17, 1991

38. Time - July 23, 1990